





# इट्जालिक्यासंग्रहः

तव।

ि क्टला भग सात्र + कामरत्नम् + दत्ताचेगतस्त्रम् + यदक्तः द्रीपिका + मिद्रसागाज्ञनक्षत्रपृद्रम् । ]

वरि कार्याम वि. यः समाध्यास्ट

वास जीवानन्टविद्यासाग्रभट्टाचाव्यात्मजाभ्यां

विकारकास्या प्रतिसम्बनः प्रकाशितस्य ।

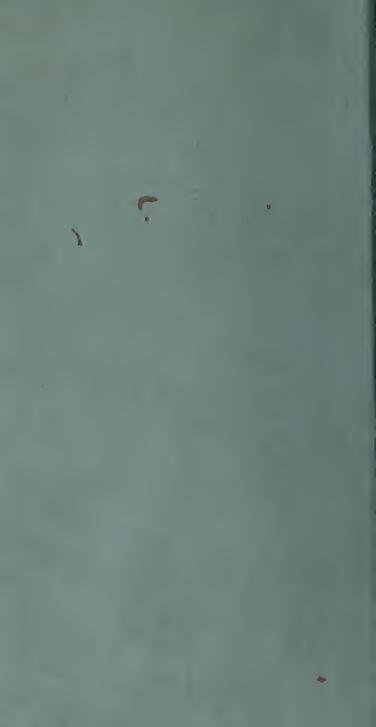
F # F B 4 G B 1

कलिकाता वातार्थ्याम्

वाचम्पत्ययन्त्र

||द्रत

. .



# दुन्द्रजालविद्यासंग्रहः।

तव

[ इन्द्रजालशास्त्रम् + कामरत्नम् + दत्ताचेयतन्त्रम् + षट्कमी-दीपिका + सिद्दनागार्जुनकचपुटम् । ]

पिखतकुलपति वि, ए, उपाधिधारि-

# श्रोमज्जीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्थ्यात्मजाभ्यां

पण्डित-श्रोत्राग्रवोध-विद्याभूषण-पण्डित-श्रोनित्यवोध-

विद्यारताभ्यां प्रतिसंस्कृतः प्रकाशितद्य।

हतीय संस्तरण म्।

# विवातामहानगर्याम्

वाचसात्ययन्त्रे

मुद्रित:।

इं १८१५।

JUN 27 1975

प्रकासक— र्विष्डत-स्रीद्याग्रबीध-विद्यासूषण् प्रकासका पिष्डत-स्रीनित्यबोध-विद्यारतः। प्रकार-स्रीनित्यबोध-विद्यारतः। रन०, र मानाय मजुमदार द्रीट,ह्यारिसन प्राप्तिस्थान— रोडः—पोष्ट स्रफिस। कलिकाता।

प्रिगटर—वि, वि, मुखर्जी। २ न॰, रमानाथ मजुमदार ष्ट्रीट, कलिकाता।

BF 1608 HSIS4 1915

# दुन्द्रजालविद्यासंग्रहः निघण्टुः।

少百女面32

|                                |                 | 1            |                         |     |              |
|--------------------------------|-----------------|--------------|-------------------------|-----|--------------|
| दन्द्रजाल                      | स्य ।           |              | विषया:।                 |     | पृष्ठाद्वा:। |
| या:।                           |                 | पृष्ठाद्वा:। | <b>अग्निप्रदर्शनम्</b>  | ••• | १०           |
| वितीभवनम्                      | •••             | 2            | <b>क्रविमदुग्धम्</b>    |     | १०           |
| <b>ौभवनम्</b>                  | ,               | 2            | राचर्मकी अम्            | ••• | १०           |
| रजननस्                         | •••             | ₹            | भृतादिदंशंनम्           | ••• | १०           |
| ।<br>ऽवस्थानम्                 |                 | २            | क्रीवीकरणम् ′           |     | १०           |
| कलं, तदद्रमनं, तसा             | <b>न्</b> मुतिय | 2            | दूरीकरणम्               |     | १०           |
| नर्डा <b>नम्</b>               | •••             | 2            | त्रय कालनियम:           | ••• | १० .         |
| इरीकरणम्                       | •••             | २            | श्रय पचादिनिर्णय:       | ••• | ११           |
| ारान्तरे <b>षान्तडां</b> नम्   | •••             | 2            | अय वशीकरणम्             | ••• | ११।१२        |
| <b>गाइ</b> टिप्रसादन <b>म्</b> | • • •           | ₹            | त्रयाकर्षणम्            |     | १२           |
| नाजीवत्वप्राप्त्रपाय:          | •••             | ₹            | श्रय जय:                | *** | १२           |
| श्रथ वश्याधिकार:               | ; तव—           |              | सौभाग्यम्               |     | १३           |
| इत: प्रदर्शनीकरणम्             | ***             | ₹            | अय द्रेयरादिक्रीधश्मनम् | *** | १३           |
| नतावस्यता, तद्वेदाय            |                 | e—8          | गजनिवारणम्              | *** | १३           |
| तंबशीकरणं, तद्वेदाय            | •••             | 9            | व्याघ्रनिवारणम्         | *** | १३           |
| य लिङ्गलेपाधिकारः,             | तद्वेदाय        | 2-0          | भय समानम्, तव-          | _   |              |
| य रचामन्तः                     | •••             | 3            | सवंयोगसिडि:             |     | १४           |
| ष्ट्रपसादनम्                   | •••             | ع            | मेघसमानम्               | ••• | १४           |
| <b>उवर्डनम्</b>                |                 | ع            | नौकासभनम्               | ••• | १४           |
| <b>इकरणम्</b>                  | •••             | ع            | निद्राम्तभनम्           | ••• | 28           |
| जनम्                           | •••             | ٤            | श्रस्त्रसम्भनम्         |     | १४           |
| विनदानम्                       | •••             | ટ            | गोमहिष्यादिस्तभनम्      | *** | १४           |
| तापवर्डनम्                     | •••             | દ            | <b>इ</b> डिस्तमानम्     |     | १५           |
| <b>बादनम्</b>                  | ***             | 3            | चौरगतिसभानम्            | *** | १५           |
| धोमारणम्                       | •••             | 3            | गर्भसम्                 | *** | १५           |
|                                |                 |              |                         |     |              |

| विषया: ।   |       | पृष्ठाङ्का: । | विषया: ।                     |            | पृष्ठाङ्गाः   |
|--|-------|---------------|------------------------------|------------|---------------|
| <b>ग्र</b> त्रसस्थनम्  | •••   | १५            | अय वशीकरणम्,                 | तच         |               |
| त्रय मीहनम्  |       | १५            | सर्वजनवशीकरणम्               |            | २ ५ — २       |
| र्टहरज्जनम्  | ***   | १६            | राजवशीकरणम्                  |            | ₹.            |
| मुखरञ्जनम्   | ***   | <b>१</b> €    | स्तीवशीकरणम्                 |            | <b>२८—३</b>   |
| केशल गीकरणम्   |       | 2€            | पतिवशीकरणम्                  |            | ₹             |
| विश्युक्तौक <b>रणम्</b>  | ••    | १६            | <b>अधाकर्षणम्</b>            |            | <b>३३।३</b> । |
| वाजीकरणम्  |       | € 8€          | श्रय जय: ०                   |            | ₹8—₹          |
| ज•मबन्याचिकित्सा   |       | , 80          | सौभाग्यकरणम्                 |            | ₹             |
| काकवस्थाचिकित्सा '   | •••   | ७९            | र्द्रश्वरादीनां क्रीधीपशमनम् | į          | ₹€            |
| <b>स्तवसाचिकित्सा</b>  |       | १७            | अदातु: दात्रशक्तिकरणम्       |            | ₹             |
| ंगर्भसावचिकित्सा   | •••   | १८।१९         | गजनिवारणम्                   |            | 34            |
| ग्रष्तगभंचिकित्सा  | •••   | २०            | व्यान्ननिवारणम्              | •••        | ₹             |
| सुखप्रसवयोग:   | •••   | २०            | श्रथ सत्भानम्, तव-           | <b>-</b> , |               |
| स्तनवर्षनं स्तनीत्यापनञ्च  |       | २०            | शतूणां मुखसमानम्             |            | ₹             |
| यीनिसंस्तार:   |       | २१            | नौकासमनम्                    | •••        | ₹             |
| <u>चीमशातनम्</u>   | • • • | <b>२</b> १    | निद्रास्तमानम्               |            | ३८            |
| मूबसामानम्   | •••   | 78            | <b>ग्रस्त्रसम्</b>           | •••        | 35            |
| पुरीषसाभानम्   | •••   | 78            | त्रशिसमानम्                  | •••        | ₹6            |
| Parameter State Control of the Contr | _     |               | गीमहिषादिसस्मनम्             | •••        | 80            |
|  |       |               | मनुष्यसमानम्                 |            | ४०            |
| कामरत  | स्य।  |               | सर्वशतु-दुद्धिसमानम्         | •••,       | 80            |
| वय्यादिकर्मणाम् ऋतुनि  | र्णय: | <b>२</b> २    | चौराणां गतिसस्थनम्           |            | ४१            |
| तिथिनिर्णय:  | ***   | <b>२</b> २    | गर्भससमम्                    |            | ४१            |
| माहेन्द्रादिनियम;  | •••   | २३            | गुक्रसम्                     |            | ४१            |
| ब्रङ्गुलिनिर्णय:   |       | २३            | त्रय सर्वजनमोइनम्            |            | ४२            |
| मूलिकायहणविधि:   |       | २३            | राजकुलमीहनम्                 | •••        | 8३            |
| श्रीषधविधिः, तद्यहणावि   | दकच   | २४            | र्वश्वरक्षलमीइनम्            | •••        | 8\$           |
| नित:   | •••   | २४            | दुष्टजनमीइनम्                | •••        | 8 ३           |
| खननम्  | • • • | २४            | <b>श्रुमीहनम्</b>            | •••        | ४३            |
|  |       |               |                              |            |               |

| वया: ।                  |         | पृष्ठाङ्का:। | विषया: ।                      |         | पृष्ठाङ्गः।             |
|-------------------------|---------|--------------|-------------------------------|---------|-------------------------|
| । <b>हेष</b> णम्        |         | 88           | ग्ट <b>इ</b> कोट्टारकनिवारणम् | •••     | ५०                      |
| अथ रञ्जनम्, तद-         | Product |              | नष्टपुषायाः पुष्पकरणम्        |         | ५०                      |
| हरञ्जनम्                |         | 88           | गर्भपातनम्                    |         | yo.                     |
| रौरदौर्गस्यहरप्रलेप:    | •••     | 88           | त्रामगर्भपातनम्               | * * *   | भूद                     |
| वादिदौरीस्यइरयीगः       | •••     | 88           | अतिरजीनिवारणम्                |         | पूट—पूट                 |
| न्धिचयनाश्रनयीगः        | •••     | 88           | वस्याया गर्भधारणम्            | •••     | યુદ                     |
| मैदुरीसनाश्कयीगः        | •••     | કપૂ          | अय जन्मेन स्याचिकित्सा        |         | ६०—६२                   |
| मैच्युतिनाशकयीग:        |         | 84           | काकवस्थालचर्णं तचिवि          | कसा च   | ६२                      |
| रुपमाङ्गकरणयीगः         | •••     | 84           | स्तवसालचणं तिचिकिता           | च       | €₹                      |
| मोइनगन्धयोग:            | •••     | ८५           | दुममूलचतम्                    |         | €8                      |
| खरञ्जनम् (तद्वेदाय)     | •••     | 8 धू         | गर्भरचा                       | •••     | ६५।६६                   |
| उपिड़कानाश्कयोग:        | • • •   | 8 ध्र        | सामान्यौषधम्                  | •••     | €€                      |
| वस्य नीललनाशकयीगः       | •••     | 8६           | युष्तगर्भचिकित्सा             | •••     | €0                      |
| पस्य क्रणीकर्णम्        | •••     | ४६           | म्तिकानिरीधे मुखप्रसवयं       | ोग:     | ६०१८                    |
| ास्य यूकादि-निवारणम्    | •••     | ४६           | वालानां भूतग्रहादिनिवार       | . चम्   | €⊂—00                   |
| इनप्रादिनिवारणम्        | •••     | 8.8          | विविधि:                       |         | ೨೦                      |
| ण्य ग्रक्तीकरणम्        | •••     | 8=           | सयोजातस अहितुण्डिका           | निवार्य | म् ७०                   |
| जीकरणयीगाः              | • • •   | 8८।8६        | स्त्रीणां पुष्परचा            | •••     | 90                      |
| मन्मदनमीदकः             | ***     | કદ           | दुर्भगाकरणम्                  | ***     | ०१                      |
| । गाड़ीकरणम्            | ***     | पूर          | वलहकरणम्                      | •••     | 90                      |
| द्रावणम्                | •••     | प्रश         | रचाविधि:                      | •••     | <i>§</i> e−− <i>γ</i> e |
| इस स्यूजीकरणं इड़ीव     | त्यच    | પૂર          | निद्रालुकरणम्                 | •••     | şe                      |
| विर्वन सनीत्यापनच       | •••     | प्रर         | निद्राभञ्जनम्                 | •••     | 98                      |
| (मादितैलम्              | •••     | भूव          | बत्धनमीचनम्                   | •••     | 98                      |
| नेमंस्कार:              | •••     | प्रव         | निगड़ादिभञ्जनम्               | •••     | 80                      |
| मपातनम्                 | •••     | प्रष्ठ       | ग्टहक्षेश(मूषिक-मशकादि)       | निवारण  | म् ७५                   |
| ड़ीकरणं तत् शाम्यच      | •••     | પુપુ         | चैवस गसानामुपद्रवनाश          | नं      |                         |
| स्वीक्षतिलङ्गपातीत्यापन | म्      | યુપ્         | जम्बुकादीनां तुख्बस           | नञ्च    | ७६                      |
| बन्धनं तस्य मीचनञ्च     | •••     | યુલ્         | पच्चादिभयनिवारणम्             | ***     | 00                      |

| विषया: ।                  |       | पृष्ठाङ्काः ।           | विषया: ।                      | पृष्ठाङ्काः ।    |
|---------------------------|-------|-------------------------|-------------------------------|------------------|
| श्यविडि:                  |       | ee                      | श्रद्या सञ्जननम्              | ٠٠٠ حح           |
| गीमहिषादेर्दुग्धवर्डनम्   |       | ee                      | दशमुग्डकरणम्                  | 도도               |
| उचाटनविधि:—तन्मनादिः      | कच    | 30-00                   | पत्रमुखीभवनम्                 | 도도               |
| अय विडेषणम्               |       | ⊏0                      | मयूरीभवनम्                    | ٠٠٠ حو           |
| व्याधिकरणम्               |       | E0-E2                   | मार्ज्ञा <b>रीभवनम्</b>       | ⊂€               |
| ग्र <u>चु</u> सामणम्      | •••   | <u></u> <u></u> <u></u> | स्तीरूपधारणम्                 | ⊏€               |
| <b>उन्म</b> त्तीकरणम्     | •••   | E7 57                   | नानारूपधारणविधिः              | ⊏.               |
| अथ मारणम्                 | •••   | E\$1E8                  | अग्निवत् निजमूर्त्तिप्रदर्भ   | नम् ८            |
| श्रत्रमारणम्              | •••   | <b>∠</b> 8              | मध्याक्रे तारकादर्भनम्        | ٠٠. حر           |
| श्रस्य ना श्रनम्          | •••   | द्रपू                   | <b>भ्</b> तयीजनपर्यन्तदर्भनम् | ٠ د              |
| रजनस्य वस्त्रनाशनम्       |       | <b>⊏</b> ¥              | अधीवायुनि:सारणम्              |                  |
| धीवरस्य मत्यनाश्नम्       | •••   | <b>د</b> ړ              | त्रथ काम्यसिद्धिः             | و                |
| कुम्भकारस्य भाग्डनाग्रनम् |       | ्ट ६                    | वाक्यसिद्धिः                  | ٠ و              |
| तैलिकस्य तैलनाशनम्        |       | ΣĘ́                     | गुप्तधन गुप्तप्रवेश-चौरदे     | वदानवप्रकाशनम् ८ |
| गीपानां दुखनाशनम्         |       | . ⊏€                    | धनुर्विद्या                   |                  |
| श्राकनाश्नम्              | •••   | ⊏Ę                      | धनधान्याचयकरणम्               | €                |
| वारजीविन: पर्यानाश्रनम्   |       | ⊏∉                      | <b>युतिधरकविलादिकर</b>        | णे पथ्याष्ट्रतम् |
| तन्तुवायस्य सूवनाश्नम्    | •••   | <u> </u>                | ब्राह्मीप्टतम्                |                  |
| शौग्डिकस्य मदिरानाश्न     |       | Z0                      | [कन्नरीकर <b>णम्</b>          | •••              |
| कर्मकारस लीहनाशन          |       | Z 9                     | चचुष्यं, चन्द्रीदया वर्ट      | ीच १५।०          |
| श्रय नानाकौतुकम           |       |                         | कर्णस्य बाधिय्य-क्रमि-        | नाश्रनम् '       |
| तैलकरणम्                  |       | <u> </u>                | कर्णपालीवर्डनम्               | •••              |
| तत्चणात् सफलव्रचकर        | गम्   | <u> </u>                | o दलहड़ीकरण <b>म्</b>         | •••              |
| सदा: पुष्पकरणम्           |       | =                       | च अत्याद्वारकरणम्             | •••              |
| सर्ववीजानां सद्योऽङ्गर    | जननम् | _                       | प्रनाहारकरणम्                 | •••              |
| वचकाण्डकरणम्              |       | 77                      | पादुकासाधनम्                  | , ?              |
| पादुकाकरणम्               | ***   | 2                       | प्रनाहष्टिकरणम्               | 8                |
| जली मज्जननिवारणम्         | ••    | 7                       | त्र निधिदर्भकाञ्चनम्          | १००—१            |
| जली वर्त्तिज्वालनम्       | ••    | r                       | द्र ब्रहस्यीकरणम्             | १०३—१            |
| 44 41 41 41               |       |                         |                               |                  |

## [ 1/0 ]

| वषया: ।                             | पृष्ठाङ्काः । | विषया:।              | पृष्ठाङ्गाः । |
|-------------------------------------|---------------|----------------------|---------------|
| <b>रतसञ्जीवनी</b>                   | १०६           | <b>गस्त्रसम्</b>     | १३६           |
| वयनामानि                            | १००           | ग्रस्त्रलेप:         | ₹₹9           |
| वषचिकित्सा                          | ٠٠٠ وه تــ    | सेनानीसक्सनम्        | १३७           |
| उर्पं विषलचणम्                      | १०६-१११       | <b>चैनापलायनम्</b>   | १३८           |
| वर्पविषीषधम्                        | १११११७        | गीमहिषादिसमानम्      | १३८           |
| । यिकविषनिवारणम्                    | ११७।११८       | मन्ष्यसुभानम्        | 359           |
| रूषिकवियनिवार <b>णम्</b>            | ११८           | मेघस्मानम्           | १३ट           |
| गृक्कुरविषनिवारणम्                  | ११६           | निद्रासमानम्         | १३८           |
| ाल्यभेकादिविषनिवारणम्               | 399           | नौकासभनम्            | १३६           |
| <b>रहगीधाविषनिवारणम्</b>            | ११६           | जलसभनम्              | १३६           |
| याष्ट्रादिविषनिवारणम्               | ११६           | गर्भसम्              | १३९           |
| <b>क्रीटविषनिवार</b> खम्            | १२०           | विदेषणम्             | १४०           |
| उर्व जन्तु विषानिवार सम्            | १२०           | उचाटनम्              | १४१           |
| उपविष <b>नि</b> वार <b>णम्</b>      | १२०           | सर्वजनवशीकरणम्       | १४२।१४३       |
| क्र <b>चिमविष</b> निवार् <b>णम्</b> | १२१           | स्तीवशीकरणम्         | १४४।१४५       |
| योगजविषनिवार सम्                    | १२२           | पुरुषवशीकरणम्        | १४६           |
| म <b>ल्लातकविषनिवार</b> णम्         | १२२           | राजवशीकरणम्          | १४६           |
| यचिगीसाधनम्                         | १२२—१२८       | त्राक्षणम्           | १४७           |
| रमशीधनन्                            | १२८           | वरितवग्यादिमिडियोग:  | १४५—१५०       |
| रसमारणम्                            | १२६           | इन्ट्रजालकौतुकम्     | , तव—         |
| हिङ्गुलग्रडि:                       | १३०           | मन्तः                | १५१           |
| गत्वकगुद्धिः                        | १३०।१३१       | रचामन्तः             | १५१           |
|                                     |               | <b>दृष्टिवन्धनम्</b> | १५१           |
| दत्ताव्रेयतन्त्                     | स्य।          | सपंदर्भनम्           | १५१           |
| साधारणीपदेश:                        | १३२           | व्यविदर्शनम्         | १५१           |
| मीइनम्                              | १३३।१३४       | नकुलदर्भनम्          | १५१           |
| त्रग्निसन्धनम्                      | १३५           | सर्पदर्शनभेद:        | १५२           |
| <b>वासनसम्मनम्</b>                  | १३५           | सरटदर्भनम्           | १५२           |
| बुद्धिसामनम् .                      | १३€           | तिमिरे दर्शनम्       | १५२           |
| 8                                   |               |                      |               |

| विषया: ।             |       | पृष्ठाङ्गः। | विषया:।                 |       | पृष्ठाद्वा: |
|----------------------|-------|-------------|-------------------------|-------|-------------|
| मीनजीवनम्            | ***   | १५२         | तारकादर्शनम्            | •••   | १५          |
| मार्जारीकरणम्        | •••   | १५२         | त्रवहिंदीधः             | •••   | १५।         |
| मातङ्गीकरणम्         | •••   | १५२         | श्रमारणम्               | •••   | १५६         |
| विलौइम्              | •••   | १५२         | रजतीकरणम्               | •••   | १५।         |
| तुरगीकरणम्           | ***   | १५२         | <b>आकाश्गमनम्</b>       | •••   | १५६         |
| व्रवभीकरणम्          | ***   | F-248       | दुग्धीकरणम्             | •••   | १५          |
| <b>म्</b> गीकरणम्    | ***   | ं १५३       | गुड़ीकरणम्              |       | १५६         |
| सिंहीकरणम्           |       | १५३         | राचमीकरणम्              | •••   | १५६         |
| कुकु रीकरणम्         | •••   | १५३         | विचरदर्भनम्             | •••   | १५६         |
| मयूरीकरणम्           | •••   | १५३         | गस्त्री तेजनम्          |       | १५६         |
| यहगदर्भनम्           | •••   | १५३         | मूचदीपनम्               | ***   | १५६         |
| <b>श्रद्धा</b> करणम् |       | १५३         | वशीकरणम्                | •••   | १५५         |
| पद्मीत्पादनम्        |       | १५३         | युग्ममुद्रायीग:         | ***   | १५९         |
| श्राचीत्यादनम्       |       | १५३         | वस्तुवर्डनम्            | • • • | १५५         |
| खर्डदर्भनयोग:        | * 4.* | १५४         | कलहनाश्रनम्             | • • • | १५९         |
| <b>अट</b> भ्योकरणम्  | ***   | १५४         | कलहत्रद्यीगः            |       | १५७         |
| प्रतापवर्जनम्        | ***   | १५४         | <b>क्रीवीकरण</b> म्     | •••   | १५९         |
| महेयरीकरणम्          |       | १५४         | प्रमदाकर्षथम्           | •••   | १५८         |
| ब्रह्मदर्भनयोग:      | •••   | १५४         | पुंस्ववर्षेनधीग:        |       | १५ूट        |
| पचदर्भनयीग:          | •••   | - १५४       | <b>ग्रस्थारिकीलनम्</b>  | •••   | १५८         |
| पिशाचीकरणम्          | •••   | १५५         | विञ्चविनाशनम्           |       | १५८         |
| प्रमत्तीकरणम्        | ***   | १५५         | यचिणीमन्त्रसाधनम्       |       | १५८—१६२     |
| मूर्यदर्भनम्         |       | १५५         | अय रसायनम्              |       | १६२         |
| दृष्टिबन्धयीगः       |       | १५५         | तत: परीचा               |       | १६३         |
| सद्योमारणन्          | •••   | १५५         | रौष्यकरणम्              |       | १६३         |
| सर्वनर्त्तनयीग:      |       | १५५         | सुवर्णकरणम्             |       | १६४         |
| नटनर्त्तनम्          | •••   | १५५         | <b>स्त्युकालज्ञानम्</b> |       | १६४।१६५     |
| मूबसमानम् *          | ***   | १५५         | त्रनाहार:               | •••   | १६६         |
| अग्निपदर्भनस         | ***   | १५५         | श्रत्याद्वारः           | •••   | १६७         |

| विषया:।                        |      | पृष्ठाङ्काः । | विषया: ।                        | ,          | वृष्ठाङ्गः । |
|--------------------------------|------|---------------|---------------------------------|------------|--------------|
| निधिग्रहणम्                    |      | १६७           | षट्कमंगां देवता                 |            | १८०          |
| ।<br>बच्यागर्भघारणम्           | •••  | १६=           | षट्कन्मंणां दिङ्नियम:           | •••        | १८१          |
| ्<br>स्तवसामुतजीवित्वम्        |      | १६८।१७०       | ्<br>षट्कसंगाम् ऋतुकालादि       |            | १८१          |
| कालबस्याप्रयोगः                | •••  | 202           | षट्कमंगां तिथिवारनियम           |            | १८१          |
| विवादविजयम्                    |      | १७१           | तेषां नचवनियमः                  | •••        | १८२          |
| वाजीकरणम्                      | •••  | १७२           | कालविश्यय                       | •••        | १८२          |
| स्वीद्रावणम्                   |      | १०३           | तेषाँ लेखनियम:                  | •••        | १८३          |
| वीर्धसमानम्                    |      | 808           | भृतीदंगव्यवस्था                 |            | १८३          |
| ्<br>लिङ्गवर्डनादियीगः,        | तव—  |               | दिङ्नियम:                       | •••        | १८३          |
| मुषलीपमलिङ्गकरणम्              | •••  | १०५           | वर्णभद:                         |            | १८३          |
| जामवर्डनम्<br>-                | •••  | १०५           | उख्यितसुप्तीपविष्टाद्य:         | •••        | १८७          |
| ्<br>जीवलविनाश्नम्             |      | १०५           | मन्त्राधिष्ठातृदेवता            | •••        | १८४          |
| कामिनीमी <b>इन</b> म्          |      | १०५           | ने<br>निवाणां वर्णादिसंज्ञा, तत | प्रदीगविधि | व १८४        |
| योनिसङोचनम्<br>-               | •••  | १०५           | कार्य्यविजेषे योजनपह्नवारि      |            | १८४          |
| ्<br>जोमशातनम्                 | •••  | १७६           | सन्पुटविधि:                     |            | १८६          |
| सनीखापनम्                      | •••  | १७६           | स्त्रीपुंनपुंचकमन्त्रनियम:      | •••        | १८६          |
| केश् <b>रञ्जनम्</b>            |      | १७६           | मन्त्रधर्माः                    | ***        | १८०          |
| <b>कैश्पातनम्</b>              | •••  | ees           | मुप्तादिविवेक:                  | •••        | 150          |
| भृतग्रहनिवारणम्                |      | ees           | श्रासनानि                       |            | १८०          |
| ग्रह्दोषपीड़ानिवार <b>ण</b> म् | •••  | ees           | विकटकुक्रुटासनलचणम्             | ***        | \$50         |
| सिंहादिभयनाश्रनम्              |      | 205           | षरमुद्रा:                       | • • •      | 122          |
| वृधिकभयनिवारणन्                |      | 308           | देवताध्यानिविधि:                | •••        | १८८          |
| <b>अग्निभयनिवार</b> णम्        | •••  | 308           | त्रय रचार्थम्                   |            | १८८          |
|                                |      |               | कुग्डम् ( हीनविधि: )            |            | १८र          |
| 252                            |      |               | ययीत्तरं प्रयोगीत्कर्षः         | •••        | 950          |
| षट्वामीदीपिव                   | ाया: | 1             | कुष्य । पनम्                    | •••        | १६०          |
| त्रट्क संगां मार्वकालिक लग     | Ę    | 8=0           | मालानिर्णय:                     | •••        | १८२          |
| षट्कर्माणि                     | •••  | 8=0           | जपाङ्गुलिनियम:                  | •••        | १ट२          |
| षट्कमंगां जचणम्                | •••  | 850           | जपदिङ्गियम:                     | •••        | १८३          |
|                                |      |               |                                 |            |              |

| विषया: । पृष्ठ                     | ाङाः।          | विषया: ।                  |       | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------------------|----------------|---------------------------|-------|---------------|
| जपलचणम्                            | १८३            | चग्डीध्यानम्              |       | ₹१⊆           |
| कुण्डदिङ्नियम:                     | १८३            | चण्डीपाठक्रम:             | •••   | <b>२१</b> ट   |
| शान्यादौ द्रव्यनियम:               | १८३            | त्र्य <b>स्वतिधानम्</b>   | • • • | २१८           |
| वक्रिलचणं तज्जिह्वालचण्यः          | १६५            | वास्वकप्रयोगः             | •••   | २१ट           |
| श्रियनामानि                        | १८६            | <b>म्</b> तसञ्जोवनी       | •••   | २२२           |
| होमव्यवस्था                        | ूर्ट्<br>इट्ट् | गुक्रीपासित स्तमञ्जीवनीति | वद्या | <b>२</b> २३   |
| सुक्सुवनियम:                       | (१९७           | चलुञ्जयप्रयोगः '          | •••   | <b>२</b> २३   |
| होममुद्रा:                         | १८०            | युलरीगप्रतीकार:           | •••   | <b>२</b> २४   |
| श्रय शान्तिकर्म                    | १८८            | गभंजननीपाय:               | •••   | <b>२</b> २५   |
| षचुतादौ पूनादि                     | १८८            | निगड्भञ्जनम्              | •••   | <b>२</b> २५   |
| इरिध्यानम्                         | १८८            | भय वृष्टिकरणम्            | •••   | २२५           |
| भय भायर्वणीक्तञ्चरमान्तिः          | २०१            | शीर्षादिरीगनाशार्थम् भाष  | र्वणम | न्दा: २२६     |
| तन्त्रीतज्वर्शानिः                 | २०२            | भ्रष वशीकरणम्             | •••   | २२०—२३१       |
| तुम्बुर्भरवमन्तः                   | २०२            | श्रय स्तमानम्             | •••   | २३२—२३८       |
| भय सञ्जीवनीविद्या                  | २०३            | वगलाप्रयोग:               |       | २३८—२४१       |
| स्रत्तिकाशिवलिङ्गपूजाविधिः         | २०३            | प्रकारान्तरेण स्तभानम्    | •••   | २४१—२४⊏       |
| तव लिङ्गप्रमाणम्                   | २०४            | श्रय श्राकर्षणम्          | •••   | २४८।२५०       |
| श्चिवपूजाविधानम्                   | २०५            | चय विदेषगम्               | •••   | २५१२५३        |
| <b>लिङ्गमुद्रा:</b>                | २०६            | त्रथ उचाटनम्              | •••   | २५३ २५४       |
| 'मुखवाद्यफलम्                      | २०€            | च्रष्य मारणम्             |       | २५५—२६४       |
| लिङ्गस्तवः                         | २०७            | ٠                         |       |               |
| भ्रववर्जनीयानि                     | २०८            |                           |       |               |
| श्चित्रिनिर्माख्यभोजनम्            | २०६            | सिडनागार्जुनक             | च्यु  | टम् ।         |
| इारीतीक्तनचवदीषाज्ञरशानि:          | २०१            | तत्वाणां नामानि           |       | २६५           |
| <b>इ</b> । रीतीकञ्चरहरणविसम्बः     | <b>२१३</b>     | साध्यप्रयोगा:             | •••   | २६५           |
| पुचलकविसर्जनम्                     | <b>२</b> १३    | कूर्मंचक्रन्              |       | र६६           |
| गगीताञ्चरहरणवलि:                   | २१४            | जपसालाभेदा:               | •••   | २६८           |
| वाराही मायातन्त्रोत्त चण्डीपाठफलम् | <b>२१</b> ५    | जपसमयनियम:                | • • • | र€ट           |
|                                    |                |                           |       | 0.00          |

दाचिथात्यमतेन चर्छीपाठक्रमः २१० जपामनस्थानानि

२६ट

| वया: ।                  |       | पृष्ठाङ्काः । | विषया:।                         |       | इष्ठाङ्गः:।         |
|-------------------------|-------|---------------|---------------------------------|-------|---------------------|
| सनाम्यानध्यानादय:       | •••   | २७०           | श्रय पादाञ्जनम्                 | •••   | ₹€१                 |
| यहीमादिभेदा:            | •••   | २०१           | षय लेपाञ्जनम्                   | •••   | ₹₹१                 |
| वीक्तीपायान्तराणि       | • • • | २७२           | भय मावाञ्चनम्                   |       | ३€२                 |
| विशीकरणप्रकरणम्         | •••   | २०४           | यविणीसाधनव्यवस्या               | •••   | ₹€₹                 |
| जवश्यप्रकर्णम्          |       | २८१           | यज्ञातनिधानस्य यहणम्            |       | ₹8₹€                |
| बादिजय:                 | •••   | रूद३          | त्रय पुटायकरणम्                 | • • • | इहट३७४              |
| ःदमनप्रशीग:             |       | रव्           | पादुकामृश्विनग                  | • • • | 304—50E             |
| वस्यप्रकर्णम्           | •••   | २८४           | गुटिकासाधनम्                    | •••   | きると                 |
| ्ट्राव <b>ण</b> म्      |       | २८०           | च्तसञ्जीवनीविद्या 🎺             |       | ३७८।३८०             |
| 1वशीकरणम्               | ***   | २८३           | कालव चनम्                       |       | ₹=१                 |
| 'कर्षणप्रकरणम्          | •••   | २८६           | <b>मृ</b> युलच् <b>यज्ञानम्</b> | •••   | ३ = २ — ३ = ४       |
| भनप्रकरणम्              | •••   | २१८           | त्रय कौतककलापाः                 |       | <b>ક</b> ⊏8         |
| <b>नम्मनम्</b>          |       | ₹०५           | भीमवद्गीजनम्                    | •••   | ₹⊏8                 |
| वस्तमानम                |       | ₹००           | चुित्यपामानिरोधादि              | •••   | इंट्राइंट€          |
| ापाचपूजा                | •••   | ₹१₹           | जगड <b>गीकरण</b> म्             |       | 62E                 |
| इनप्रकर्याम्            | •••   | ₹१४           | पतिवशीकरणम्                     | •••   | €≈इ                 |
| <b>ाटनम्</b>            | ***   | ३१६           | प्रम्तिकृद्यीग:                 |       | ξ⊂o                 |
| रणम्                    | •••   | ३२१           | जय <b>करण</b> म्                | • • • | <i>e</i> ⊃ <i>§</i> |
| विषम्                   | •••   | ३२५           | चौरवाधाशननम्                    | •••   | 02€                 |
| <b>धिजननम्</b>          | •••   | ३२६           | परमैन्यटर्पनाशः                 |       | €25                 |
| दौभांग्यकरणादि          | 8     | १२८३३१        | वीरमैन्यपनायनम्                 | •••   | 9≂0                 |
| <b>डीकरणम्</b>          | •••   | ३३२           | जली स्वली गमनम्                 | • • • | ©⊒\$                |
| बस्यनम्                 | •••   | ३३३           | भ्व, जयकरणम                     | •••   | \$ C C              |
| क्रिंगनिवार्णम्         | •••   | ३₹४           | <u>व्याघाटिवाधानाग्रनम्</u>     | • • • | इंदद                |
| तुकप्रकरणम्             | ₹     | ३५३३८ ं       | षतिमोहत्रदञ्जनम्                | •••   | ₹CC                 |
| जालविद्यासाध <b>नम्</b> | ३     | 3€\$80        | वक्टादिकरगम्                    | •••   | इटट                 |
| : रणीमाधनम्             | ₹     | 8ट— ईर्तेते   | ज्वर्भतादिशमन <b>म्</b>         | ***   | ३८१                 |
| । नम्                   | ***   | ¥४€           | चतुर्विचिवयगाश्रनम्             |       | इटर                 |
| ्राराञ्चनम्             | •••   | ३६०           | पुतसञ्जननम्                     | ***   | ३८१                 |
|                         |       |               |                                 |       |                     |

### [ 11/0 ]

| विषया:।         |     | पृष्ठाङ्का:। | विषया: ।                 |     | पृष्ठाङ्ग |
|-----------------|-----|--------------|--------------------------|-----|-----------|
| <b>उ</b> चाटनम् | ••• | ३८९          | वीर्यधारणम्              | ••• | ₹         |
| विवादजय:        | ••• | ३८९          | <b>भ्</b> तयीजनगामिलम्   | ••• | ₹         |
| निधिदर्शनम्     | ••• | ३८१          | पुरुषस्थापि नारीलम्      | *** | ₹         |
| विषादिनाशनम्    | ••• | ३८९          | यस्त्रापस्त्रारनाश्नयीगः | ••• | ₹         |
| पश्वादिवशीकरणम् | ••• | ३८१          | त्रदृश्यता               | ••• | 3         |
| पलितलनाश्रनयोगः | ••• | ३८९          | खेचरलिंखिः               | ••• | ₹         |

# इन्द्रजालिबयासंग्रहः।



( सिडख छन । )

अयातः संप्रवच्यामि चेन्द्रजालमतुत्तमम्। व्याधिदारिद्राहरणं जरामृत्यविनाशनम्॥१॥ इन्द्रस्य यो न जानाति जालेग्रं रुद्रभाषितम्। नियहानुग्रहे तस्य का श्रितः परमेखरि । ॥ २ ॥ न तेषां जायते सिंडिगीं वे चे वे ग्रेडिंग वा। दन्द्रजालं न जानाति स क्रुडः किं करिष्यति ?॥३॥ न जीवति वरारोहे ! संसारे दु:खसागरे। इन्द्रजालं न जानाति कुतः सीख्यं भवेत् ततः ॥ ४ ॥ कीतृहलं कुतस्तेषां कुतः कामा वरानने !। संसारसागरे घोरे कामलुब्धाय मानवाः। रुट्रकर्म न हि तेषां कुतः सीख्यं विधीयते ?॥ ५॥ यथा नदीनदाः सर्वे सागरे समुपागताः। तया सर्वाणि शास्त्राणि इन्द्रजालस्थितानि च ॥ ६ ॥ तप्तानाञ्च यया भानुः शीतलानां यया शशी। गम्भीराणां यथा सिन्धुर्जालेन्द्रञ्च तथा प्रिये !॥ ७॥ तया किं वहनोत्तेन वर्णनेन पुनः पुनः १। जालेन्द्रस्य समं शास्तं न भृतं न भविष्यति॥ ८॥ त्रयातः संप्रवच्यासि स्रोषधीनां विधिं वरे ।। येन विज्ञानमात्रेण सर्वसिंडिर्भविष्यति॥ ८॥

महाकालस्य वीजानि प्रस्थमेकं समाहरेत्। धात्रीरसेन देवेशि ! सप्त वारान् विभावयेत्॥ गुटिका कर्त्तव्या, तां गुटिकां मुखे निच्चिप्य पारावती भवति॥ १०॥

श्रयातः संप्रवच्यामि शृणु त्वं मम वन्नभे !।

क्रागस्य शोषं मंग्रह्य क्रण्यस्तिकां पूरियत्वा पुनः धुस्तूरवोजानि वापयेत्, लाले तानि पुष्पितानि भवन्ति, तदा यस्योपरि निच्चिपेत् स क्रागो भवति ॥ ११ ॥

मयूर शोर्षमादाय क्षण्णचतुर्दश्यां सृत्तिकां पूरयेत्, शण-वीजानि वापयेत्, यदा फिलतानि पुष्पितानि भवन्ति, तदा शणवीजानि शोवायां बन्धयेत्। मयूरो भवति॥ १२॥

क्षणचतुर्देश्यां मयूरशीर्षमादाय क्षणास्तिकायां पूरयेत्, कार्पासवीजानि वापयेत्; यदा फलितानि पुष्पितानि भवन्ति, तदा पुष्पफले संग्रह्म समस्तं पेषयित्वा श्रङ्गं विलिप्य पानीय-मध्ये प्रविश्य तथा जले तिष्ठति यथा स्थले ॥ १३ ॥

क्षण्यकाकशीषेमादाय काकमाचीवीजानि वापयेत्, यदा फिलतानि पुष्पितानि भवन्ति, तदा तत् फलं संग्रह्म मुखेपिचिप्य-काको भवति, काक इव गच्छिति मह्याम् उद्गीर्णे मोचः॥ १४॥

पारावतशीर्षमादाय क्षणासृत्तिकां पूरियत्वा तिसवीजानि वापयेत्, चौरोदकेन सिञ्चनीयं, यदा पुष्पितानि भवन्ति, तदा मुखे संस्थाप्य अन्तर्हितो भवति॥ १५॥

तेषां फलानां चूर्णं क्रत्वा तेन चूर्णेन यं स्पृश्ति, स किङ्करो भवति, सर्वस्वं ददाति ॥ १६ ॥

तानि तिलानि संग्रह्म नेत्राञ्चनेन सह पिट्टा कपिला-दुग्धेन गुटिकां कारयेत्। सप्तराचं पाचयेत्, तां गुटिकां मुखे निच्चिप्य अन्तर्हितो भवति, देवैरपि न दृश्यते मनुष्याणां का कथा। उद्गीर्णेन पुरुषो भवति। जीवेदर्षयतं स्त्रियः सर्वे जनाय वथ्या भवन्ति॥ १०॥

ग्रध्रियः समादाय क्षण्चतुर्देश्यां क्षण्मस्तिकायां निचि-पेत्, लग्ननवीजानि वापयेत्; यदा फलं पुष्पं भवति, तदा पुष्पानचत्रे पुष्पं ग्रहीत्वा श्रञ्जनेन सह कपिलाष्ट्रतेन कज्जलं पातयेत्, चचुरञ्जनीयं, तावत्योजनशृतं प्रश्चति मेदिनीं, दिवा नचत्राख्यपि पर्श्यति । लाभस्तस्य—यत् किञ्चित् कर्त्तुमिच्छति तत् करोति न संग्रयः ॥ १८॥

अन्ये च सर्वे जीवाः एवम् उद्गगर्दभमहिष्यादि-लघुत्रह-जीवाः। यत् यत् वीजं यस्य शिरिस वापयेत्; यदा पुष्पितं फलितं भवति, तदा यस्य वीजानि सुखे निच्चिप्यन्ते स जीवो भवति नात्र सन्देहः॥ १८॥

सर्वेषां साधारणमन्तः।

श्रीं क्रीं क्रें ऐं लं लंश्रीं भी खाहा। एकादणाचरी मनुरस्य, पुरश्वरणं लचज्यः। दणांशहोमः ष्टतेन, तर्पणं मार्जनं ब्राह्मणभोजनादिकं कारियत्वा सिडिर्भवित ॥ २०॥

### अय वश्याधिकारः।

मातुलुङ्गस्य मूलन्तु धुस्तूरवीजकेन च।

पलाण्डुपुष्पमादाय सूच्मचूर्णन्तु कारयेत्॥

योऽस्य गन्धं समाघाति स च स्नेहेन पश्चिति।

दुन्दुभिं पटहांसैव ग्रङ्कांसैव तु लेपयेत्॥

एष भूतीपस्रष्टानां कुमारीणां ग्रहेषु च।

भूपतेः सेव्यमानानां तथापत्यापजीविनाम्।

न चाग्निर्देद्यते वेश्म यत्रैष सोऽगदो भवेत्॥ २१॥

पव मलः।—ग्रीं रक्तचामुण्डे ग्रमुकं मे वग्रमानय ज्ञीं ज्ञीं

हं फट्। प्रमुतं जन्नव्यम्॥ २२॥

श्रीं नमोऽस्तु श्रादित्याय किलि किलि चिलि धूमं लिहि यि चिणि मोदते हि शाकिनि श्रनिदुदु शूलपाणि खाहा। वर्णाः ४०। शिलाक्षिति मले।—श्रों नमो गुहावासिन्ये गुहपति गुहिले मनोजवो श्रों एं श्रों विज्वे नमः। शिलायाः कृतिः करिलिखिता खिदरानलसन्तप्तिलङ्गा यतो नवयोषितोऽपि श्राकषणम्। वर्णाः २६। श्रों नमः कपाल्कद्राय सर्वलोकव्यश्रह्माय श्रनाथायाप्रतिहतवलवीय्यपराक्रमप्रभवाय हा हा हे हे पच पच मारय मारय कपट कपट काट सर्प कमेकिर श्रमुकं मे वश्मानय खाहा। श्रमुत्वनपाइश्लोकरीति॥ २३॥ श्रम्यक्षारः। पारावतस्य हृद्यं च जुर्जिह्ना च श्लोणतम्। श्रम्यक्षारः। पारावतस्य हृद्यं च जुर्जिह्ना च श्लोणतम्।

तव मलः। न्यों नय नय महारिणि नमो देखे खाहा।

एकविंग्रितवारान् परिजप्य सिंडिर्भवित् ॥ २४ ॥

श्रवप्रकारः। कपालं मानुषं ग्रह्म कनकस्य फलानि च।

कपूरं मधुसंयुक्तं निष्टप्य तिलकेन च॥

नारी वा पुक्षोऽनेन वस्थो भवित नित्यग्रः।

एष कापालिको योगो विश्वष्टस्य ग्रुभो मतः॥ २५॥

### पुरुषवशीकरणम्।

कर्पूरं बालुकं लाचा रजसा सप्तभावितम्।
रितकाले भगं लिप्य पितदीसो भविष्यति ॥ २६ ॥
अन्यप्रकारः। नरजिह्वां समुदृत्यः स्व्यस्य प्रिन्तु कारयेत्।
जलेन च सुशीतेन दापयेत् तिह्वच्याः ॥
पाने फले च पुष्पे च भच्ये भीज्ये च दापयेत्।
प्रजापितकुलोङ्गृता यदि साचादक्रस्तती।
साऽभिषक्तं प्रियं याति नान्यं पुरुषिमच्छिति॥ २०॥

बन्यकारः। कनकञ्चाष्यपामार्गं सुरसा गौरसर्षपाः। तिलतैलेन पिष्टाऽपि योनिलेपः प्रशस्यते॥ विकासन्यः।—ग्रींनमः शय्यार्येद्रि विद्रि यामिनि श्रमुकं

भव मनः।—श्रों नमः शय्याये दिरि विदिरि यामिनि श्रमुकं मे वशमानय स्वाहा॥ २८॥

भव्यम्बारः। इरितालं समग्राने क्वर्णचतुर्दश्यां चिम्ना कुष्ठ-विमित्रं ग्राह्मम्, श्रवश्यं वशी भवेत् स नरः ॥ २८ ॥ भव्यम्बारः। ऋतुनवृत्तीचनतालाललाटास्थित्राणसाधितं तैलम्। सक्तलमनुजेन्द्रललनावशङ्करं भेकरालये पुष्ये॥

नरतैलं प्रेताम्बरवर्त्तिकं काला रात्री प्रज्वाल्याकं वृचस्कान्धे कज्जलं काला चत्तुषी ग्रभ्यञ्जयेत्; यं पर्याति स वश्यो भवति॥ ३०॥

भविष्रकारः । कर्णदन्तमलं लाला स्वदेष्ठाचि मलत्रयम् । नासिकोद्भवरक्षञ्च चूर्णमेतद्दलायुतम् ॥ एतत् सर्वे समुदृत्य गुटिकां कारयेद्वुधः । पानभोजनके देया वशीकरणमुत्तमम् ३१॥

भन्यप्रकारः । काकजिह्वा वचा कुष्ठम् श्रात्मनो रुधिरं स्त्रियाः । तद्भावितास मिल्लिष्ठा तगरं गौरसर्षपाः ॥ श्रिविनर्माच्यसंयुक्तं समभागानि कारयेत् । भोज्ये पानिऽयवा देयाः स्त्रीणान्तु वश्रकारकाः ॥ नित्यं पुरुषिमच्छन्तो सृतमृष्यनुगच्छति ॥ ३२ ॥

भन्मकारः। क्रयासर्पमध्यङ्गुलप्रमाणं शिरिट्हित्वास्यास्यं सर्षपादिभिः पूरियत्वा क्रायाग्रष्ट्यं शोषयेत्। प्रतः सर्षपान् प्राइयित्वा तानि यस्मै दीयन्ते स वश्यो भवति ॥ ३३ ॥

श्रव्यक्षारः । पूगीफलं निर्गिलित्वा श्रपानमार्गे निर्गतं ग्रह्म धुस्तूररसान्तरितं कत्वा सप्त दिनानि पूजयेत् । पुनः कुङ्गम-चन्दनैरिधभाव्य यस्मै दीयते स वश्यो भवति ॥ ३४ ॥ अयप्रकारः । दर्दुरयुग्सं ग्टहोत्वा तहूमेन हि दाइयेत् । तद्भस्म-सहपानेन वश्यक्तत् परमो मतः ॥ ३५ ॥

अन्यप्रकारः । श्रजगन्धस्य प्रताणि वचाकुष्ठेन भावयेत् । स्मधानभस्मसंयुक्तं चूर्णञ्चेत्त्वषु दुर्लभम् । श्रनेनैव तु चूर्णन जोटयेत् त्रिश्च पादपम् ॥ पुष्पितं फलितं दृष्टा चूर्णं वृचाहिलग्नयेत् । तत्चणात् फलते वृचो नरनारोष्ठ्रका कथा ॥ ३६ ॥

बन्यप्रकारः । जिह्वामूले सप्तरात्रं सैन्धवेनापि मित्रितम् । ददाति यस्य पानेषु सोऽपि वस्योभवेत् चणात् ॥३०॥

अन्यप्रकारः। गोपित्तं सैन्धवञ्चेव हस्तीफलमेव च । लेपमेतत् प्रयोक्तव्यं नरनारीवग्रङ्करम् ॥ ३८ ॥

अव्यविकारः । बलासूलं चूर्णियित्वा रक्तरेतःसमन्वितम् । दद्यात् पानेन प्रमदां चिप्रमेव वर्षा नयेत् ॥ पुत्रादिञ्च धनं त्यक्ता दासीवत् वर्त्तते सदा । यत्र वा नीयते तत्र पद्यात् स्वमति विक्वला ॥ ३८ ॥

त्रवप्रकारः। वल्लीकसृत्तिकया प्रतिकृतिं क्रत्वा चीरेण स्नाप्याऽऽच्येन विभाज्य तस्य लवणाचुतिमेकविंग्रतिवारं जुचुयात्, तिरावेण वश्यो भवति, सप्तरावेणायवा। देवीच्च गान्धारीं यिचणीं ग्रुकस्यापि पत्नीं वश्मानयति॥ ४०॥

भव्यप्रकारः । उद्गातुः पत्तिणो मलमात्मनो रुधिरान्वितम् । स्त्रीपंसयोः प्रदातव्यं वशीकरणमुत्तमम् ॥

भव मनः।—तिश्र्लिने तिनेताय हिलि हिलि स्वाहा। वर्णाः १४। सप्तजप्तन सिद्धिः॥ ४१॥

भृत्यप्रकारः। क्षण्णपच्चचतुर्दश्यां स्टतभस्म तु ग्राह्ययेत्। स्त्रीणाञ्च सूर्प्ति दातव्यं विद्यया परिजप्तया॥ दह्यते मुह्यते नारी पच्यते ग्रुष्यतेऽिष च। श्रङ्गानि चैव भज्यन्ते यदि तं न समाविशेत्॥ भव मनः।—श्रीं नमश्वामुण्डे श्मशानवासिनि स्त्राहा। वर्णाः १४। मतराविण प्रेरकः॥ ४२॥

अन्यप्रकारः । खेतार्कः रोचनायुक्तम् ग्रात्ममूत्रेण पेषयेत् । ललाटे तिलकं कत्वा नैलोक्यं चोभयेत् चणात् । टिटिमात्रेण तेनैव सर्वो भक्ति किङ्करः ॥ ४३ ॥ अन्यप्रकारः । खेतार्कः चन्दनेनैव रसयेत् संह लेपयेत् । दीयते कस्यचिद्वापि पथाद्दासो भविष्यति ॥ ४४ ॥

### अय पतिवशीकरणम्।

मधुकं सह तैलेन सार्षपेण तु पेषयेत्। तेनैव पाणिमभ्यच्य भर्ता सा सहिता खपेत्। संवत्ते मैयुनीभावे पतिर्दासो भविष्यति॥ ४५॥

#### अन्यस ।

मनः शिला कुङ्गमसषेपाय तथाच कुष्ठं सहदेवदारः ।
रक्तञ्च रक्तं पिलतेन सार्वे प्रपेषयेत् स्त्यतरं महान्तम् ॥४६॥
प्रसातपूर्वाभिमुखोऽपि भूत्वा संस्मृत्य लच्चोञ्चरुकेण पूज्य ।
ततः प्रकुर्यात् तिलकं ललाटे वामाच हस्ताचतुरङ्गुलोभिः ॥
पुंदृष्टमात्रेण भवेत् सकान्तादासातिदासय किमत्र चित्रम् ॥४९॥

## अथ लिङ्गलेपाधिकारः।

हहतीफलमूलानि पिप्पली मरिचानि च। तया रोचनया सार्ड लिङ्गलेपोत्तमो मतः॥ ४८॥ निःशेषस्त्रीजगत्तर्षं नामा स्त्रीहृदयाङ्ग्रम्। मोहनं शस्त्रमेतिह मदनस्य स्मृतं वुषैः॥ ४८॥ अयम । कुष्ठञ्च धातकीपुष्यं मिरचानि वचा तथा।

श्रेनेन लिङ्गमालिप्य क्वत्स्नां ग्यामां वशं नयेत्॥

तासां चित्तहरोऽप्येषा स्तमप्यनुगच्छिति।

विवशा भिक्तभावेन पश्चातु सर्वे प्रयच्छिति॥ ५०॥

भगवा पञ्चरक्तानि संग्रह्म ग्रभानि च यथेच्छ या। सर्वाणि समभागानि प्रियङ्गञ्चापि तत्समम्। नागरं दशभागेन खीपः कान्तावग्रङ्करम्,॥ ५१॥

भवा । देवदारुवचाकुर्ष चतुर्थं विष्क्षभेषजम् ।

प्रस्तवीजरमैर्युक्तं गौरी खामावशङ्करम् ॥ ५२ ॥

षयप्रकारः । हरिद्रा ब्रह्मतीसूलं भद्रमुस्तं तयीत्पलम् । क्वप्णं विड़ङ्गं वैरञ्ज समभागानि कारयेत् । लिङ्गलेपोत्तमो द्येष रक्तवज्ञीवशङ्करः ॥ ५३ ॥

भव्यप्रकारः। हरिद्रा पिप्पलीमूलं पद्मं सधुक्तमेव च।

एतानि समभागानि नवनीतेन पेषयेत्।

लिङ्गलेपोत्तमी द्येष गौरोप्रीताय शाङ्गरः॥

कौशिकशोणितलेपात् सेचनाद्वा पृष्टं भवेज्ञिङ्गम्।

तद्वशं तेजस्तम्भमयःकीलकसदृशं भवेच ॥ ५४॥

वीर्थसमानम्। कीशिकं रुधिरं ग्रह्म गोमूत्रेण च पेषयेत्।

वीर्यां हि स्तभायेतित्यं प्रहरार्डं न संग्रयः॥ ५५॥ सर्वसाधारणमन्तः।—ग्रीं एं झीं झीं श्रीं फट्स्वाहा। श्रनेन मन्त्रेण सर्वयोगानभिमन्त्रप्रसिद्धिः॥५३॥

इति श्रीसिड्ख छे तन्त्रसारे इन्द्रजालतन्त्रम्।

इंश्वर उवाच । इन्द्रजालं विना रत्तां न करोतीति निश्चितम् । रत्तामन्त्रं महामन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ श्रव मन्तः।—श्रीं नमो नारायणाय विश्वभाराय इन्द्रजालकीतु-

कानि दर्शय दर्शय सिडिं कुरु कुरु खाहा। अदीत्रशतजानेन सिडिः!

#### श्रय रचामन्तः।

श्री नमः परब्रह्मपरमात्मने मम श्रीरे पाहि पाहि कुरु कुरु ॥ इंडियमादनम् । उलूकस्य कपालेन प्टतेनाहतकज्ञलम् । तेन नेवाञ्चनं कृत्वा राव्वी पठित पुस्तकम् ॥ १ ॥

तन नवाञ्चन क्रत्वा रावा पठात पुस्तकम्॥ १॥
वनवर्डनम्। श्रद्धोसवीजनित्तिप्ते गुरुवारे मुखे गर्ज ।
सन्त्वेण सिञ्चयित्रत्यं यावदीजफलं ह वै॥
विलीहेवेष्टितं क्रत्वा एकवीजं मुखे स्थितम्।
सत्तसातङ्गवीर्यस्तु वायुतुत्व्यपराक्रमः॥
दश हीम दिषट् ताम्वं षोड़शं रुप्यभागकम्।
एवं मंख्या विलीही च ज्ञातव्या सर्वकर्मणि॥ २॥

विकरणम्। यानि कानि च वीजानि जङ्गमं स्थलमेव च। श्रङ्गोलवीजनिचिप्ते मुखे भूमितले ध्रुवम्॥ तदीजं मुखमध्यस्यं तिलोहैर्वेष्टितं कुरू। तदूषो हि भवेनास्यों नान्यया ग्रङ्करोदितम्॥ ३॥

फलनम्। यानि कानि च वीजानि श्रङ्गोलतेलमेलनात्। सफलो जायते द्वचः सिडियोगसुदाहृतम्॥ ४॥

जीवनदानम्। श्रवमुखे विन्दुसात्नं तत्तीलं निचिपेट् यदि। एक्यामं भवेज्जीवी नान्यया शङ्करोदितम्॥ ५॥ 🗽

प्रतापवर्डनम् । शियुवीजस्थितं तैलं पारावतपुरीषकम् । वराइस्थ वसायुक्तं ग्यङीत्वा च समं समम् ॥ ः गर्दभस्य वसायुक्तं हरितालं मनःशिला । एभिस्तु तिलकं कृत्वा यथा लङ्केखरी नृपः ॥ ६ ॥

ब्कादनम् । उलूविष्ठां ग्रहीत्वा तु एरग्डतैलपेषणात् । यस्याङ्गे निचिपेदिन्दुं स चिप्तो जायते ध्रुवम् ॥ ७ ॥

स्यो मारणम्। सर्पदन्तं ग्रहोत्वा तु क्रष्णवृश्विककण्टकम्। क्रकलारत्तुसंयुत्तं स्चाचूर्णन्तु कारयेत्।

यस्याङ्गे निचिपेचूणं सद्यो याति यमालयम्॥ ८॥ अग्निप्रदर्भनम् । सिन्द्ररं गन्धकं तालं समं पिञ्चा मनःशिलाम् । तिव्विप्तवस्तं शिरिस अग्निवह्यते ध्रुवम् ॥ ८ ॥ क्रविमदुग्धन्। अर्काचीरं वटचीरं चीरं डुम्बरसम्भवम्। ग्रहीला पात्रके लिप्ते जलपूर्णं करोति च। दुग्धं सञ्जायते तत्र महाकौतुककौतुकम् ॥ १०॥ राच धकरणम्। श्रद्धोलते लुलिप्ताङ्गो दृश्यते राचस (क्रति:। पलायन्ते नराः सर्वे पशुपचिगजा ह्याः ॥ ११ ॥ भूतादिदर्भनम्। अङ्गोलस्य तु तैलीन दीपं प्रज्वालयेत्ररः। रात्री पर्यात भूतानि खेचराणि महीतले ॥ १२ ॥ क्रीवीकरणम्। वृधे वा शनिवारे वा क्रकलां परिग्रद्य च। श्रुक्त्र्यते यत्र क्षक्तां तत्र निचिपेत्॥ नपुंसकं भवेत् सत्यं नान्यया गङ्करोदितम्। निखनेइमिमध्येषु उड्ते च पुनः सुखी॥ १३॥ रूरीकरणम्। गन्धकं हरितालञ्च गोमूत्रञ्च विषं तथा। सूच्मच्र्णमयं क्रत्वा किञ्चिद्वि विनिचिपेत्।

विम्नाः सर्वे पलायन्ते यथा युडेषु कातराः ॥ १४ ॥ इति दत्तावेयतन्त्रे दृश्वरदत्ताचेयमंबादे इन्द्रजालकौतुकदर्शनं नाम एकादशः पटलः ।

#### त्रय काल:।

वश्याकर्षणकमाणि वसन्ते योजयेत् प्रिये!।
ग्रीमे विदेषणं कुर्य्यात् प्राष्ट्रिष स्तमानं तथा॥
ग्रिशिरे मारणचैव ग्रान्तिकं ग्ररिद स्मृतम्।
हेमन्ते पौर्णमास्याञ्च ऋतुकर्माविग्रारदः॥१॥
वसन्तयैव पूर्वाह्रे ग्रीमो मध्याङ्ग उच्यते।
वर्षा ज्ञेया पराह्रे तु प्रदोषे ग्रिशिरः स्मृतः।
श्रईरावे च हमन्तः ग्ररं तत्यरं स्मृतम्॥२॥

यय पचादिनिर्णय:।

क्षणपचे मारणादि ग्रक्षपचे च वर्डनम्।

हादग्यां मारणं कम्मं एकादग्यां तथैव च॥

हतीयां नवमीचैव वग्याकषेच्च कारयेत्।

स्तभनच्च चतुर्दग्यां चतुर्थां प्रतिपद्यपि॥

हितीयां पष्ठीमष्टग्यां कारयेत् ग्रान्तिकम्मं च॥३॥

ग्राम्बनीम्गमूलाय पुष्पा पुनर्वमुस्तया।

वग्याकपंचं कर्त्तव्यं कारयेच्च सदा वुधः॥

च्येष्ठा च उत्तराषाढ़ा ग्रनुराधा च रोहिणी।

कारयेन्मारणं ग्रान्तिं स्तभनं विजयं तथा।

विधिमन्त्रसमायुक्तमीषधं सफलं भवेत्॥॥॥

अय वशीकरणम्।

सिन्दूरमाचिककपोतमलानि पिष्टा
लिङ्गं विलिप्य रमते तरुणीं नवीढ़ाम्।
प्रान्तिं न याति पुरुषो मनसाऽपि नूनं
दासीभवेदिति मनोइरिद्यमूर्त्तिः॥ ५॥
पुष्ये रुद्रजटामूलं मुखस्यं कारयेद्द्यः।
ताम्बूलादौ प्रदातव्यं वश्या भवति निश्चितम्।
तयैव पाटलीमूलं ताम्बूलेन तु वश्यक्तत्॥ ६॥
नागपुष्यं प्रियङ्गुञ्च तगरं पद्मकेशरम्।
जटामांसी समं नीत्वा चूर्णयेत् मन्व्यवित्तमः।
स्वाङ्गं धूपयते तेन भजते कामवत् स्वियः॥
श्रीं मूली मूली महामूली सवं संचीभय भयेभ्य उपद्रविभ्यः

खाहा। धूपमन्तः॥ ७॥

पानीयस्याञ्जलीन् सप्त दत्त्वा विद्यामिसां जपेत्। सालङ्कारां नवां कन्यां सभते माससाव्रतः॥ बन ननः।—श्री विश्वावसुनीमगन्धर्वः कन्यानामधिपतिः।
सुरूपां सालङ्कारां देहि मे नमस्तस्मै विश्वावसवे खाहा।
कन्याग्रहे शालकाष्ठं चिपेदेकादशाङ्गुलम्।
स्रिचे च पूर्वेफल्गुखां यस्तां कन्यां प्रयच्छति॥ ८॥
अध सर्वजनवशीकरणमः।

शिला च रोचनामूलं वारिणा तिलके कते।
हिष्टमात्रे वश्रं यश्ति नारी वा पुरुषीःशिप वा॥
स्वर्णन वेष्टनं केंत्वा तेनैव तिलके कते।
सभाषणेन सर्वेषां त्रैलोकां वश्रमानयेत्॥ ८॥

श्रीं क्लीं ऐं च्रीं भीगपदा भैरवी मातङ्गी तैलोक्यं वशमानय खाहा। श्रीषधीपरि सहस्रजपं कुर्यात्; पुनः सप्तवारजपेन तिलकं कारयेत्, श्रनुसमीऽपि वश्यो भवति।

इति कालनाथविरचिते इन्द्रजाले प्रथमीऽध्याय:।

# त्रयाकर्षणम्।

श्रों च्लीं चामुण्डे ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल खाहा। श्रनेन मन्त्रेण स्त्रियं दृष्टा जपं कुर्यात्, तत्च्णात् पृष्ठतः समागच्छिति। पूर्वमेवायुतजपेन सिंडिः॥ १०॥

श्रश्लेषायां समादाय श्रज्जुनस्य च ब्रध्नकम्। श्रजामृत्रेण सम्पिष्य स्त्रीणां श्रिरिस दापयेत्। पुरुषस्य पश्चनां वा चिपेदाकर्षणं भवेत्॥ ११॥

चय जय:।

गोजिह्ना शिखिमूलं वा मुखे शिरिस मंखिता। कुरुते सर्ववादेषु जयं पुष्ये समुद्रृते ॥ १२ ॥ सार्गशोषेपीर्णमास्यां शिखिमूलं समुद्रित्। बाह्नी शिरिस वा धार्थं विवादे विजयो भवेत्॥ १३॥

गिरिकणीं सभीं गुञ्जां छेतवणीं समाहरेत्। चन्दनेनान्वितञ्जैव तिलक्षेन जयी नरः॥ १४॥ कनकार्कवटा विक्विद्रमः पञ्चमस्तया। तिलकं कुरुते यस्तु पश्येत् तं पञ्चधा रिपुः ॥ १५ ॥ बार्द्रीयां वटवन्दाकं ग्टहीत्वा धारयेत् करे। संग्रामे जयमाप्रोति जयां सात्वा जयी भवेत्॥ षय मनः। - श्रीं नमो महाबलपराक्रम-समस्तविद्याविगारद

यमुकस्य भुजवलं वन्धय वन्धय, दृष्टिं स्तन्धय स्तन्धय, यङ्गानि ब्नय ध्नय, पातय पातय महीतले हीं ॥ १६ ॥ गैभाग्यम्। पुष्योद्दतं सितार्कस्य सूलं वामेतरे भुजे।

> बह्वा सीभाग्यमाप्नोति दुर्भगापि न संशय:॥ १७॥ रत्तं चितार्कमूलन्तु सोमग्रस्ते समुड्तम्। चौद्रै: पिष्टा वटीं कुर्यात् तिलकं ग्रभमङ्गना ॥ १८ ॥ भय ई खरादिकां धशमनम्।

श्री शान्ते प्रशान्ते सर्वेक्रोधोपशमनि खाहा। अनेन ान्वेण वि:सप्तधा जपेन मुखं मार्जयेत्। ततः क्रोधीपशमनं ावति॥ १८॥

निवारणम्। खेतापराजितासूलं इस्तस्यं वारयेद्गजम्।

मूलं विश्रुच्या वत्तस्यं गजवन्धकरं भवेत ॥ २०॥ षित्रारणम् । मुख्यं वहतीमूलं इस्तस्यं व्याघ्रभीतिजित् ।

क्रीं क्रीं स्त्रीं स्त्रों स्त्रों स्त्रों स्त्राहा। दयष्टाचरमनेण नीष्ट्र पिठला पित्; तदा मुखं न चालयति गनुमश्काः।

मूलं क्रण्यचतुर्द्यां ग्राइयेब्राङ्गलीभवम्। इस्तस्यं व्याघ्रभौतादिभयऋत् परिकौर्त्तितम् ॥ २१ ॥

द्रति इन्द्रजालतन्ते हतीय उपदेश:।

### अय स्तमानम्।

खेतगुक्जोत्यितं मूलं मुखस्यं दृष्टतुण्डजित्।
श्री क्लीं रच रच चामुण्डे तुरु तुरु श्रमुकं मे वशमानय
वशमानय स्वाहा श्रयं चामुख्यामनः।

मर्वयोगमितिः। पुष्यार्के मधुवन्दाकं ग्टहीत्वा प्रचिपेद्बुधः।

सभामध्ये च सर्वेषां मुखस्तभः प्रजायते ॥ १ ॥

मधनमा । इष्टकद्वयंसम्पुटमध्ये मेघसंख्यतचतुरसं विलिख्य उद्याने खापयेत्, तदा मेघान् स्तभायति । मनः।—श्री मेघान् स्तभाय स्तभाय स्ताहा ॥ २ ॥

नौकासमनम्। भरखां चीरकाष्ठस्य कीलं पञ्चाङ्गुलं चिपेत्। नीकामध्ये तदा नीका-स्तमानं जायते भ्रुवम्॥ ३॥

निद्रासभानम्। मूलं वृह्तया मधुकं पिष्टा नस्यं समाचरेत्।

निद्रास्तभनमेति मूलदेवेन भाषितम् ॥ ४ ॥

श्रम्भवनम् । किप्यस्य च वन्दाकं कित्तिकायां समाहरेत् ।

वक्कसंस्थन्तु देवस्य शस्त्रस्तमानकं परम् ॥ ५ ॥

करे सुदर्शनामूल-वन्धनात् स्तभनं तथा ॥

अव मलः ।—श्री श्रही कुभाकर्ण महाराच् स निक्रागर्भसभूत परसैन्यस्तभान महाभय रणरुद्र श्राज्ञापय स्वाहा। अष्टीचर सहस्रवात सिंडिः॥ ६॥

> ग्रहीत्वा ग्रमनचत्रे श्रपामार्गस्य मूलकम्। लेपमात्रे ग्ररीराणां सर्वग्रस्तनिवारणम्॥०॥ पुष्पार्को खेतगुङ्गाया मूलमुडृत्य धारयेतु। हस्ते काण्डभयं नास्ति संग्रामे च संदाचन॥ ८॥

त्रव गोमहिष्यादिसमानन्। उष्ट्रस्यास्य चतुर्दिचु निखनेद्गूतले ध्रुवम् । गां मेषीं महिषीं वाजीं स्तम्ययेत् करिणीमपि ॥ ८ ॥ पृद्धिसम्बन्धः स्ट्रहराजमपामार्गः सिद्धार्थं सहदेविकाम् । श्रोलं वचाञ्च खेतार्कः ध्रुवमेतान् समाहरेत् ॥ सौहपात्रे विनिद्धिप्य दिदिनान्ते समुद्धरेत् । तिस्तकोः सर्वभूतानां वृद्धिस्तभानकत् परम् ॥ श्रो नमो भगवते विख्वामित्राय नमः, सर्वमुखीभ्यां विश्वा-मित्र श्रागच्छ श्रागच्छ स्वाहा । उक्तवीगसायं मनः ॥ १०॥

श्रय चौरगतिसमानम्।

भव मनः। — श्रीं ब्रह्मविशिनि शिवे रर्ज्य स्वाहा। श्रनेन मन्त्रेण सप्त पाशान् ग्टहीत्वा त्रीणि कट्यां बह्वा श्रपरान् मुष्टिभ्यां धारयेत्॥ ११॥

षय गर्भसम्बनम्।

ग्राह्मं क्रणाचतुर्देश्यां धुस्तूरस्य तु मूलकम्।
कट्यां बड्डा रमेत् कान्तां न गर्भं धारयेत् कचित्॥
मुक्तेन लभते गर्भं पुरा नागार्ज्जुनोदितम्।
तन्मूलचूर्णं योनिस्थं न गर्भं सम्भवेत् कचित्॥ १२॥
सिडार्थमूलं शिरिस बड्डा कान्तां रमेत् तु याम्।
न गर्भं धारयेत् सा स्त्री मुक्तेन लभते पुनः॥ १३॥
षय ग्रकस्ममन्।

नीलीमूलं स्मशानस्थं कळां वड्डा तु वीर्य्यप्टक् ॥ रक्तापामार्गमूलन्तु सोमवारे निमन्त्रयेत्। भौमे प्रातः समुदृत्य कळां वड्डा तु वीर्यप्टक्॥ १४॥

## अथ मोहनम्।

शृङ्गीवचानलदसर्जरसं समानं कत्वा तृटिं मलयजञ्च षड़ेकिमिश्रम् । यो धूपयेन्निजग्टहं वसनं शरीरं तस्यापि दास इव मोहमुपैति लोकः ॥ १५ ॥ सङ्गराजः केशराजो लज्जा च सहदेविका।

एभिस्तु तिनकं कत्वा तैनोक्यं मोहयेवरः॥

"श्री श्रं श्रां इं ईं उं कं ऋं ऋं फट्।"

श्रनेनैव तु मन्त्रेण कत्वा तास्वूनभावनम्।

साध्यस्य मुखनिचित्रे मोहमायाति तत्चणात्॥

"श्री भी ची भी मोहय" इस मन्त्रं वारत्रयं जपेत्। मोह-माम्नोति मानवः॥ १६॥

दं इर जनम्। का इस्वापचं लोध्रच ग्रज्जुनस्य च पुष्पकम्।

पिष्टा गात्रोद्दर्तनाच कायदुर्गन्यनामनम् ॥ १० ॥ एलामटीपत्रकचन्दनानि तोयाऽभया मिम्र्घनामयानि । ससीरभोऽयं सुरराजयोग्यः ख्यातः सुगन्धो नरमोह्योग्यः ॥१८॥

त्रय मुखरञ्जनम्।

रसालजम्बूपलगर्भसारः सकर्वटो माचिकसंग्रतय । स्थितो मुखान्ते पुरुषस्य रात्री करोति पुंसां मुखवासिम्छम् ॥ चूर्णं मुराकेशरकुष्ठकानां प्रातर्दिनान्ते परिलेद्धि या स्त्री । अप्यर्डमासेन मुखस्य वासः कर्पूरतुस्थी भवति प्रकाशः ॥ १८ ॥

श्रय केश्रक्षणीकरणम्।

ली हि किष्टं जवापुष्यं पिष्टा धात्रीफलं समम्। तिदिनं लेपयेत् शीर्षं तिमासं केशरज्जनम्॥ २०॥ अध केशग्रकीकरणम्।

श्रजाचीरेण सप्ताइमन्वहं भावयेत् तिलान्। तत्तैललिप्ताः केशाः स्युः ग्रुक्ताय नाव संशयः॥ २१॥

अथ वाजीकरणम्।

श्रिष्वन्यां वटवन्दाकं चीरैः पिष्टा महाबनः । पुष्योहृतं पिवेन्मूनं खेतार्कस्य प्रयत्नतः । सप्तरात्रन्तु गोचीरैर्वृद्वोऽपि तक्णायते ॥ २२॥ चूर्णं विदार्थ्याः स्वरसेन तस्या विभावितं भास्तररश्मिजाले । मध्वाज्यसंमित्रितमेव लीढ़ेद्दश स्त्रियो गच्छिति निर्विग्रङ्गः॥२३॥

समूलपत्नां सर्पाचीं रिववारे समुद्दरेत्।
एकवर्णगवां चीरै: कन्याइस्तेन पेषयेत्॥
ऋतुकाले पिवेद्दस्या पलाईं तिह्ने दिने।
चीरशाल्यन्नमुद्गञ्च लघ्वाहारं प्रदापयेत्।
एवं सप्तदिनं कुर्यात् वस्या भवति गर्भिणी॥१॥
उद्देगं भयशोकञ्च दिवानिद्रां विवर्जयेत्।
न कर्म कारयेत् किञ्चिद्दर्जयेत् सावगाहनम्।
पितसङ्गं चरेत् सा च नात्न कार्या विचारणा॥२॥
ऋणाऽपराजितामूलं क्टागोचीरेण संपिवेत्।
ऋतुकाले समायाते भुक्ता गर्भधरा भवेत्॥३॥
गोच्चरस्य तु वीजन्तु पिवेन्तिर्गृण्डिकारसै:।
िवरात्नं सप्तरात्नं वा वस्या भवति गर्भिणी॥४॥

अय काक वस्याचिकित्सा।

श्रखगन्धीयसृलन्तु ग्राहयेत् पुष्यभास्करे । पेषयेन्महिषीर्चारैः पलार्डं भज्ञयेत् सदा । सप्ताहान्नभते गर्भं काकबन्ध्या चिरायुषम् ॥

श्रथ सतवत्साचिकित्सा।

प्राझुखी क्रित्तका-ऋचे बन्धा कर्कीटकीं हरेत्।
तत्कन्दं पेषयेत् तोयै: कर्षमात्रं सदा पिबेत्॥१॥
या वीजपूरद्रुममूलमेकं चीरेण पक्षं प्रिपवेद विमित्रम्।
ऋतौ निजं या तु पितं प्रयाति दोर्घायुषं सा तनयं प्रस्ते॥२॥
• मिल्लाष्टा मधुकं कुष्ठं तिप्पला प्रकरा बला।
मेदा पयस्या काकोली मूलबैवाखगन्धजम्॥

यजमोदा हिरदे हे हिङ्गः कटुकरोहिणी।

उत्पणं कुमुदं द्राचा काकोच्यो चन्दनहयम्॥

एतेषां काषिकौभीगैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।

प्रतावरीरमं चीरं ष्टतस्येदं चतुर्गुणम्॥

संपिविवियतं नारी नित्यं स्त्रीषु च प्रस्यते।

पुचान् जनयते नारी मिधाच्यान् प्रियदर्भनान्॥

या चैवास्थिरगर्भा 'स्थात् या नारी जनसेन्मृतम्।

याचवास्थरगर्भा 'स्यात् या नारी जनसेन्मृतम्।

याचवास्थरगर्भा 'स्यात् या च कन्याः प्रस्यते॥

योनिदोषि रजोदोषि गर्भसावि च प्रस्यति।

प्रजावर्षनमायुष्यं मर्वग्रहनिवारणम्॥

नाम्ना फलष्टत ह्येतदायुष्यं परिकीर्त्तितम्।

नोक्तञ्च लच्चणामूलं वदन्त्यत्र चिकित्सकाः॥

जीवद्रसा-प्रक्लवर्णाष्टतमत्र तु दीयति।

यरण्यगोमयेनात्र वङ्गेज्वांला प्रदीयति॥

यत्र पयस्था—चीरयुक्तं भूमिकुषाण्डम्, उत्पलं—नीलम्।

#### अय गर्भसावचिकिता।

प्रथम मासि। गोचीरै: पेषयेत् तुल्यं पद्मकेशरचन्दनम्।
पतने तत् पिबेन्नारी महागर्भः स्थिरी भवेत्॥
ग्रथवा मधुकं दारु शरहचस्य वीजकम्।
संपिष्य चीरकाकोलीं पिवेत् चीरैश्व गोभवैः॥१॥
रव " नीलोत्पलं स्रणालञ्च यष्टिः कर्कटस्र्विका।
गोचीरैश्व दितीये च पिवेत् शास्यति वेदना॥२॥

श्व " श्रीखण्डं तगरं कुष्ठं मृणालं पद्मकेशरम्।
पिवेत् शीतोदकौः पिष्टा हतीये वेदनावती॥
श्रिथवा चीरकाकोली बलाऽनन्तापयः पिवेत्॥ ३॥

- हर्षे मासि। श्रीतीत्पनं सृणानानि गोचीरकक्षेश्कम्। तुर्व्यमासे गवां चीरं पिवेत् सा वेदनापरा॥ श्रथवा सधुकं रास्नां ग्यामां ब्राह्मणयटिकाम्। श्रमन्तां पेषयित्वा तु गवां चीरै: समं पिवेत्॥ ४॥
- भूमे " पुनर्नवा च काकोली तगरं नीलमुत्पलम्।
  गोचीरं पञ्चमे मासि गर्भक्लेग्रहरं भवेत्॥
  श्रयवा बहतीयुग्मं यज्ञाङ्गं कृट्फलं त्वचः।
  गोष्टतं चीरसंयुक्तं पिवेत् पिष्टा च पञ्चमे॥ ५॥
- ६६ " सिता कामाऽऽखुमज्जा च मीततीयेन पेषयेत्।
  पष्ठे मासि गवां चीरैः पिबेत् क्लेमं निवर्त्तयेत्॥
  त्रयवा गोचुरं मियुं मधुकं प्रस्मिपर्णिकाम्।
  बलायुक्तं पिबेत् पिष्टा गोदुग्धं षष्ठमासके॥ ६॥

OĤ

- " काष्ठकं पौष्करं मूलं शृङ्गाटं नीलमुत्पलम्।
  पिष्टा च सप्तमे मासि चीरैः पोत्वा प्रशाम्यति॥
  ग्रथवा मकरद्राचां शृङ्गाटञ्च सकेशरम्।
  सृणालं प्रकरायुक्तं चीरैः पेयन्तु सप्तमे॥ ७॥
- व्हे यष्टी पद्माचार्कमुस्तं तेयरं गजिएपली । नीलोत्पलं गवां चौरै: पिबेदष्टममासके ॥ अथवा विल्वमृत्तच किपत्यं वहती यमी । द्रज्ञपाटलयोर्मूलं एभि: चौरं प्रसाधयेत् । तित्पवेदष्टमे मासि गर्भे ग्राम्यति वेदना ॥ ८ ॥
- र्म " विश्वालावीज-कक्कोलं मधुना सन्न लेपयेत्। वेदना नवमे मासि शान्तिमाप्नोति नान्यया॥ श्रयवा मधुकं प्यामा द्यनन्ता चीरकाकली। एभि: सिद्धं पिवेत् चीरं नवमे वेदनावती॥ ८॥

१०मे " यर्करा गोस्तनी द्राचा सचीद्रं नीलसुत्यलम्।
पाययेद्द्र्यमे मासि गवां चौरै: प्रयान्तये॥
प्रयवा युद्धसंसिद्धं गोचीरं द्र्यमे पिवेत्।
प्रयवा सधुकं दारु युद्धचीरेण संपिवेत्॥ १०॥
चौद्रं द्रषं चन्दनसिन्धुजातं महेन्द्रराजं पयसा सुपिष्टम्।
गर्भः चरन्तं प्रतिहन्ति योघं योगो विभुञ्जन् किल सूलदेवै:॥११
यक्षगर्भविकिता। गोचीर् यूर्करायुक्तं गर्भयुष्कप्रधान्तये।
पिवेद्दा सधुकं चूर्णः गास्थारीफलचूर्णकम्।
समांग्रं गव्यदुग्धेन गर्भिणी रोगयान्तये॥

श्रय सुखप्रसवयोग:।

खेतं पुनर्नवामूलं चूणं योनी प्रवेशयित्।
प्रस्ते तत्चणानारी गर्भे सित प्रपोड़िते॥ १॥
वासकस्य तु मूलन्तु चोत्तरस्यं समुद्धरेत्।
कट्यां बद्धा सप्तस्त्रैः सुखं नारी प्रस्यते॥ २॥
सहदेव्याय मूलं वा किटस्यं प्रस्तवे सुखम्॥ ३॥
प्रपामार्गस्य मूलन्तु ग्राह्येचतुरङ्गुलम्।
हारि प्रवेशयेद् योनी तत्चणात् सा प्रस्यते॥ ४॥

तैलं वचादाड़िमकल्कसिष्ठं सिद्धार्थजं लेपनतो नितान्तम्। नारीकुची चारुतरी सुपीनी कुर्य्यादसी योगवरः प्रदिष्टः॥१॥ श्रीपर्णिकाया रसकल्कसिष्ठं तिलोद्भवं तैलवरं प्रदिष्टम्। तूलेन वच्चोजयुगे प्रदेयं प्रयाति दृष्ठिं पतितोऽपि नार्थ्याः॥२॥

> प्रथमकुसुमकाले नस्ययोगेन पीतं सनियममसरास्यं तग्डुलाश्चो युवत्या। कुचयुगलसुपीनं क्वापि नो याति पातं किथत दति पुरैवं चक्रदत्तेन योगः॥३॥

#### भय यीनिमंस्तार:।

प्रचालयेनिम्बकषायनीरै: खिन्नाज्यक्तणागुरुगुगुलूनाम्। धूपेन योनि निश्चि धूपयित्वा नारी प्रमोदं विद्धातु भर्त्तुः॥ अव लीमशातनम्।

पनागभस्मान्विततान् चूर्णे रम्भाम्बुमियैः परिनिष्य भूयः। कन्दर्पगेहे सगनोचनानां रोमाणि रोहन्ति कदापि नैव॥

यय मृवस्तभानम् ।

श्रय मृतप्रणाशार्थं वच्यामि योगंमुत्तमम्।
श्रवगन्धां समानीय श्रव्तमन्त्रेण मन्त्रयेत्।
तोलकं सिपंषो देयं मित्रयित्वा पिवेत् सुधीः।
लिङ्गमूले कामवीजं ज्ञष्ठा च स्तम्ययेदिया।
हाचिंशत् तोलकं दुग्धं मिरचं तोलकद्वयम्।
संमित्रप्र प्रपचेद् यताद् यावत् श्रष्ट्यं समानयेत्।
ततो वै वाग्भवं ज्ञष्ठा भच्चयेत् साधकोत्तमः।
श्रनेनैव विधानेन मृत्रनाशोऽभिजायते॥ ७॥

### पुरीवस्तभनम्।

पुरीषनाशनार्थाय विड्ङं तीलकदयम्।
पिप्पलीतीलकं ग्रह्म शुग्ठीश्च तीलकत्रयम्॥
तेजपत्रस्य चीरेण मित्रयित्वा जपेन्मनुम्।
शतमष्टीत्तरं जप्ता मित्रयेद्वहुयत्नतः॥
मन्त्रं तस्य प्रवच्चामि शृणुष्वानन्दभैरव।
श्रीमीया वाग्भवश्चेव शक्तिवीजत्रयं तथा॥
शिववायुजलं पृष्वी विक्वजाया ततः परम्।
मन्त्रयित्वा पिवेदु द्रव्यं पुरीषं नाश्येदु ध्रुवम्॥

इति शिवीत्तमिन्द्रजालम्।

## कामरतम्।

यस्येष्वरस्य विमलं चरणारविन्दम संसेव्यते विवुधसिडमधुव्रतेन। निर्माण्यातकगुणाष्ट्रकवर्गपूर्णम् तं ग्रङ्गरं सकलुदुःखहरं नमामि॥१॥ कामतन्त्रमिदं चित्रं नाम सुत्रावितं मया। वश्यादि-यचिणीमन्त्रसाधनान्तं समुद्रुतम्॥ शान्तिवश्यस्तभानानि देवणोचाटनं तथा। मारणान्तानि शंसन्ति षट् कमाणि मनीषिणः ॥१॥

श्रथ वश्यादिकर्सणां ऋतुनिर्णय:।

वश्याऽऽकर्षणकर्माणि वसन्ते साधयेत् प्रिये !। ग्रीमे विदेषणं कुर्यात् प्राव्विष स्तमानं तथा ॥ २॥ शिशिरे मारणञ्जैव शान्तिकं शरदि स्मृतम्। हिमन्ते पौष्टिकं कुर्य्यात् चतुःकर्माविशारदः ॥ ३ ॥ वसन्तर्यव पूर्वाह्रे ग्रीमो मध्याक्न उच्यते। वर्षा ज्ञेयाऽपराह्ने तु प्रदोषे शिशिरः स्मृतः ॥ ४ ॥ ग्रईराबी ग्रत्काल जवा हमन्त उचते। ऋतवः कथिता ह्येते सर्वे येन क्रमेण त्॥ ५॥ तिह होना न सिध्यन्ति प्रयत्नेनापि कुर्वतः। अनन्यकरणात् ते हि भ्रुवं सिध्यन्ति नान्यया ॥ ६ ॥ अय तिथिनिर्णय:।

वशीकरणकर्माणि सप्तस्यां साधयेद्वधः। हतीयायां त्रयोदस्यां तथाऽऽकर्षणकर्मा वै॥ ७॥ उच्चाटनं दितीयायां षष्ठ्याञ्चैव प्रकारयेत्। स्तभनञ्च चतुर्दश्यां चतुर्थां प्रतिपद्यपि॥ ८॥

मोचनन्तु नवस्याञ्च तथाऽष्टस्यां प्रयोजयेत्। द्वादश्यां मारणं शस्तमेकादश्यां तथेव च॥ ८॥ पञ्चस्यां पीर्णमास्याञ्च योजयेच्छान्तिकादिकम्। सर्वविद्याप्रसिद्धार्थं तिथयः कथिताः क्रमात्॥ १०॥

अथ माहेन्द्रादिनिर्णय:।

स्तभनं मोहनश्चैव वशीकरणमृत्तमम्।
माहेन्द्रे वाक्णे चैव कर्त्तव्यमिहं सिंडिदम्॥११॥
विदेषोचाटनं विद्व-वायुयोगेन कारयेत्।
च्येष्ठा चैवोत्तराषाढ़ा श्रनुराधा च रोहिणो।
माहेन्द्रमण्डलस्या च प्रोक्तकर्मप्रसिंडिदाः॥१२॥
स्यादुत्तरपदा मूला-ऋचे शतिभषा तथा।
पूर्वभाद्रपदाऽश्लेषा ज्ञेया वाक्णमध्यगाः।
पूर्वाषाढ़ा ततः कर्मा-सिंडिदा श्रभुना स्नृताः॥१३॥
स्वातो हस्ता स्गिशरा श्राद्री चोत्तरफल्युनो।
पुष्या पुनर्वसुर्वद्विः-मण्डलस्या प्रकीर्त्तिताः॥१४॥
स्राश्चनो भरणो चित्रा धनिष्ठा श्रवणा मघा।
विश्राखा क्रत्तिका पूर्व-फल्युनो रेवतो तथा।
वायुमण्डलमध्यस्या तत्त्वक्तमप्रसिंडिदाः॥१५॥

अधाङ्गुलिनिर्णय:।

शान्तिके पौष्टिके चैव श्राभिचारिककर्माणि। तजन्यादिसमारूढ़ं कुर्याद् यत्नात् क्रमं सुधी:। तत्राङ्गुष्टसमारूढ़: सर्वकर्माश्रभे रत:॥ १६॥

अय मृलिकायहणविधि:।

विधिमन्त्रसमायुक्तमीषधं सफलं भवेत्। विधिमन्त्रविहोनन्तु काष्ठवद् भेषजं भवेत्॥ १७॥

एकान्ते तु ग्रभारखे तिष्ठत्येव यदीषधम्। कार्थ्यसिंडिर्भवेत् तेन वीर्थ्यमस्ति च तत्र वै॥ १८॥ वल्मीककूपरयात्रुतलदेवायतनसम्मानेषु। जाता विधिना विह्ताप्यीषधयः सिहिदा न खः ॥१८॥ जलजीर्णमग्निकवलित-मकालक्षमिभच्य भूतलग्रीरम्। न्यूनं तथाऽधिकतया द्रव्यमद्रव्यं जगुर्भिषजः॥ २०॥ भूतादियुक्तमभ्यादीय गिरीयां प्रातरुखितैः। याडैरपासितैर्वापि संयाद्यं सर्वमीषधम्॥ २१॥ द्रत्येवं सर्वमूलानां विधिमन्त्रश्च कथ्यते। यादी गला वचमूलं ततो वै यभिमन्त्रयेत्॥ २२॥ "श्रीं वेतालाय पिशाचाय राच्साय सरीस्पाः। त्रपसर्पन्त ते सर्वे हचादसाच्छिवाच्या"॥ २३॥ तती नितः। श्रीं नमस्तेऽस्तसभूते वसवीर्थ्यविवर्डिनि। बंलमायुच मे देहि पापाची वाहि दूरतः॥ २४॥ ततः खननम्। येन त्वां खनते ब्रह्मा येन त्वां खनते भृगुः। येन इन्द्रोऽय वरुणो येन त्वासुपचक्रमे। तेनाइं खन्यियामि मन्त्रपूर्तन पाणिना॥ मा ते पाते मा निपाति मा ते तेजोऽन्यथा भवेत्। अत्रैव तिष्ठ कल्याणि ! मम कार्य्यकरी भव ॥ श्रों क्लीं फट् खाद्या। श्रनेन मूलिकां केदयेत्॥ २५॥ दत्वेवं सर्वविद्यानां सिद्धये ऋतुनिर्णयः। कथितसात यतेन मूलिकाग्रहणादिकः॥ २६॥

इति मृलिकायइणविधि:।

# अय वशीकरणम्।

तच सर्वजनवशीकरणम्।

वर्णानामुत्तमं वर्णं मठान्तस्यं तथैव च।
श्रींकारशिरसा चापि श्रींकारशिरसं तथा॥
श्रधोभागे च रेफञ्च दत्त्वा मन्त्रं समुद्वरेत्।
निरासिषात्रभीक्वा च जप्तव्यो मन्त्र एव च॥

"श्रीं म्रीं ड्रों" श्रनेन मन्तेण—
श्रमाध्यमिप राजानं प्रतमित्रांश्व वान्धवान् ।
ये ये गोते समुत्पन्नाः पश्वी ये च सर्वतः ।
ते सर्वे वश्रतां यान्ति सहस्राईस्थ जापनात् ॥
स्मृष्ट्वा दृष्ट्वा च येऽसाध्या ग्रहोत्वा नाम तस्य वै ॥
दृत्यादिकञ्च सर्वञ्च मन्त्वं भन्त्या गुरोस्तदा ।
सिध्यन्ति सर्वेकार्याणि चान्ययाऽसिडिभाग् भवेत् ॥ १ ॥

"श्रीं नमः कटिवकटघोरक्षिणि खाहा"। श्रनेन मन्त्रेण सप्ताभिमन्त्रितं भक्तिपण्डं यस्य नाम्ना सप्ताहं खाद्यते, स भ्रवन्ति वस्यो भवित । "श्रीं वस्यमुखि राजमुखि खाहा"। श्रनेन मन्त्रेण सप्तधा मुखप्रचालनात् सर्वे वस्या भवित्त । "श्रीं राजमुखि वस्यमुखि खाहा"। वामहस्ते तैलं संस्थाप्य श्रनामिक्या विधामन्त्रा पुनर्मृलमन्त्रं विधा पठित्वा प्रातःकाले श्रयायां स्थित्वा मुखकेशादी विलेपयेत्। तदा सर्वे जना वस्या भवित्तः; व्याम्नोऽपि न खादित। "श्रीं चामुण्डे जय जय स्थभ्य स्तभ्य मोह्य मोह्य सवसन्त्वान्नमः खाहा"। श्रनेन पुष्पम् श्रभिमन्त्रा यस्मै दीयते स वस्थो भवित ॥ २॥

एकचित्तस्थितो मन्त्री मन्त्रं जघाऽयुतद्वयम्। ततः चोभयते लोकान् दर्शनादेव साधकः॥ ३॥ त्रद्राच्चवटमूलञ्च जलेन सह घर्षयेत्। विभूत्या संयुतं मन्त्रतिलकं लीकवश्यकत्॥ ४॥ पुष्ये पुनर्नवासूलं करे सप्ताभिमन्त्रितम्। बह्वा सर्वत्र पूज्यः स्थानान्त्रमन्त्रेव कथ्यते॥

"एं वतु श्रों चोभय चोभय भगवति त्वं स्वाहा"। इसं मन्तं पूर्वीक्तमयुतद्वयजपे सिद्धिः ॥ ५ ॥

श्रपामार्गस्य मूलन्तु पेषयेत् रोचनेन तु ।

ललाटे तिलकं कृत्वा वशीकुर्य्याज्जगन्त्रयम्'॥

"श्रों नमः कोदण्डशरविजालिनि मालिनि सर्वलोकवशङ्करि

स्वाहा"। इमं मन्त्रम् उत्तयीगः स्यादष्टीचरसहस्रजपे सिव्धिः ॥ ६ ॥

क्षणापचे चतुई श्यामष्टम्यां वा उपोषितः । बिलं दत्त्वा ससुबृत्य सहदेवीं सुचूर्णयेत् ॥ तास्त्रृलेन तु तचूर्णं दत्तं वश्यकरं ध्रवम् । साने लेपे च तचूर्णं योज्यं वश्यकरं भवेत् ॥ रोचना-सहदेवीभ्यां तिलकं लोकवश्यक्वत् ॥ सुखे चिष्ठा च तास्त्रृलं कथ्यां बह्वा च कामयेत् । या नारी सा भवेत् तस्या मन्त्रयोगेण कथ्यते ॥

"त्रीं नमी भगवित मातङ्गेश्वरि सर्वमुखरञ्जनि सर्वेषां महा-माये मातङ्गे जुमारिके लहलहजिह्ने सर्वलीकवशङ्करि स्वाहा"। सहसं जप्ता उक्तयोगानां सिडिः॥ ७॥

खेतापराजितामूलं चन्द्रयस्ते ससुदृतम्।
ऋखिताचो नरस्तेन वशीकुर्याज्ञगचयम्॥
तन्मूलं रोचनायुक्तं तिलकेन जगद्दशम्।
तन्मूलेन प्रदातव्यं ताम्बूलं विश्ववश्यक्षत्॥
शिलापिष्टच तन्मूलं वारिणा तिलके कते।
सन्भाषणेन सर्वेषां वशीकरणसुत्तमम्॥

खर्णेन वेष्टितं क्रत्वा तेनैव तिसकी क्रते।

हिष्टमाने वसं याति नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥ याद्यं स्रक्षचतुर्दस्यां खेतगुञ्जा-सुमूलकम् । ताम्बूलेन प्रदातव्यं सर्वलोकवशङ्करम् ॥ "श्री वक्रकिरणे सिवेरच भये मया द्यास्तं कुरु कुरु खाइ।" । उक्रशेगानां सहसन्ते सिडि: ॥ ८॥

द्वित्यादच जुर्नासानां मलं पूरी प्रदापयेत्। तत् पूर्गं खाद्यते येन यावज्जीवं वशो भवेत्॥ अनेन मिन्द्यतं कत्वा दच्वेन्दीवरमूलकम्। रोचनाभिस्ताम्यपावे सृष्ट्या नेवहया ज्ञनात्। प्रियो भवित सर्वेषां दृष्टिमाता व्यसंगयः॥ तम्बूलं मधुसंमित्रं ललाटे तिलके कते। तास्वृते वा प्रदातव्यं वशोकरणमुत्तमम्॥ तम्बूलं रज्जनास्य चिष्टा मूलं प्रयोजयेत्। तास्वृतेन तु तद्गुको भुवज्ञ वशमानयेत्॥

पिक्नलायै नमः"। अनेन मन्तेणाभिमन्त्र उत्तयीगान् साध्येत्॥ ८॥
रत्तारुश्राभयं नितं क्षण्णिचकयोरय।
निष्कास्य मधुना लिख्वा वर्त्तिकज्जलपातनम्।
तेन नेतान्त्रनं कत्वा तैलोक्यं वश्रमानयेत्॥
देवदानवसिद्धार्यं गुटिकां कारयेद् बुधः।
मुखे निन्तिप्य सर्वेषां प्रियो भवति नान्यया॥
सङ्गमूलं मुखे निष्ठा सर्वत्र पूजितो भवेत्॥
रोहिण्यां वटवन्दाकं संग्रह्य धारयेत् करे।
वस्यं करोति सकलं विश्वामिनेण भाषितम्॥ १०॥
कुद्भुमं तगरं कुष्ठं हुरितालं समं समम्।
श्रनामिकाया रत्नेन तिलकं सर्ववस्यकत्॥ ११॥

विशाकान्ता ग्रभा भङ्गी सदग्डी मूलरोचनाम्। पिष्टा तुविटकां क्रत्वा तिलकं वश्यकत् परम्॥ १२॥ पुष्योद्दतं खेतभानु-मूनमाजासमूतकैः। वटिकां कारयेत् प्राज्ञस्तिलकेन जगद्यम् ॥ १३ ॥ अजारक्तेन तन्मूलं पुष्यायां पेषयेद् बुधः। कज्जलं पातियत्वा तु चत्तुषी रञ्जयेत्ररः। वैलोकां वगतां याति दृष्टमात्रं न संगयः॥ १४॥ मूलन्तु अवणा-ऋचे पिण्डोतगरसभावम्। संग्टह्य धारयेद्दश्यं कुरुते सकलं जगत्॥ १५॥ क्षणापराजितामूलं पुष्येणोड्त्य चूर्णयेत्। गोमूत्रेण समालोडा कज्जलं कारधेद् बुधः। भ्रवमितेनाञ्जनेन वशीकुर्याज्ञगत्त्रयम् ॥ १६ ॥ पुत्रजीवकवीजञ्च तिलकं रीचनायुतम्। प्रियो भवति सर्वेषां नरः क्तत्वा ललाटके ॥ १७॥ खेतापराजितामूलं तथा खेतजयाखयोः। नासाये तिलकं क्रत्वा वर्षाकुर्याज्ञगत्त्रयम्॥ १८॥ मिञ्जष्ठाञ्जष्ठकीः क्रता ललाटफलके क्रती। लोकालोकं वशयति चणमात्रेण साधकः॥ १८॥

नीरं घतञ्च मधुकञ्च कताञ्चलिय क्ष हव्यं समं निजयरीरमलेन मित्रम् । श्रालेपभचणिवधी तिलके कते वा योगान्त सर्वभुवनानि वशीकरोति ॥ २०॥ मूलं जटीतगरमेषविषाणिकानाम् पञ्चाङ्गजं निजयरीरमलं तथैव । एकीकतानि मधुना दिवसे कुजस्य
कुर्वन्ति वक्रतिलकेन वर्ण जगन्ति ॥ २१ ॥
भक्षस्य पच्युगलं ग्रुकमांसयुक्तम्
पिंघ्यादयास्त्रममलं च मलं स्वदैहम् ।
एतानि लेपविधिनाप्यय मचणादु वा
कुर्वन्ति वश्यमखिलं जगद्प्यकस्मात् ॥ २२ ॥
तालींश्रकुष्ठतगरैः परिलिप्य,वर्त्तिः
सिद्वार्थतैलसहितां दृद्पदृवस्त्राम् ।
पुंसः कपालफलके विनिपातितश्च
तेनाञ्चनेन वग्रतां किल याति लोकः ॥ २३ ॥
गोरोचनं पद्मपत्रं प्रियङ्गं रक्तचन्दनम् ।
एकीक्रत्याऽञ्जयेन्नेत्रं यं प्रश्नति वग्नी भवेत् ॥ २४ ॥

अय राजवशीकरणम्।

कुड़ुमं चन्दनच्चैव रोचनं शशिमिश्वतम् ।
गवां चीरेण तिलकं राजवश्यकरं परम् ॥ १ ॥
"श्रीं द्वीं सः श्रमुकं मे वशमानय स्वाहा" । पूर्वमैव सहस्रं जक्षा
ततीऽनेन सलेण सप्ताभिमन्तितं तिलकं कार्यम् ॥ १ ॥

चम्पकस्य तु व्यन्दाकं करे वड्डा प्रयक्षतः। सम्पूज्य भरणी-ऋचे पुष्यायां वा विधानतः। राजानं तत्चणादेव मनुष्यो वश्यतां नयेत्॥ २॥

त्रय स्तीवशीकरणम्।

पुष्ये पुष्पन्तु संग्रह्म भरखां फलकं तथा।
गाखाञ्चेव विग्राखायां हस्ते पत्रं तथैव च॥
मूले मूलं समुद्रृत्य क्षणोन्मत्तस्य तत्क्रमात्।
पिष्टा कर्पूरसंयुक्तं कुङ्कमं रोचनं समम्।
तिलकात् स्त्री वग्रं याति यदि साचादक्स्यती॥१॥

काकजङ्घा वचा कुष्ठं ग्रुक्रशोणितिमिश्रितम्। तदस्ते भोजने नार्थ्या श्मशाने रुद्यते सदा॥ "श्रीं नमो भगवते रुद्राय श्रीं चामुण्डे श्रमुकीं मे वशमानय स्वाहा"। उक्तशीगानामयमेव मन्तः॥ २॥

प्रातर्मुखन्तु प्रचात्य सप्तवाराभिमन्तितम्।
यस्य नामा पिवेत् तोयं सा स्त्री वच्चा भवेद् भ्रवम्॥
"श्री नमः चिप्रकर्मण्ण असुकीं मे वग्रमानयं स्वाहा"॥३॥
क्षणापराजितामूलं तास्वृलेन समायुतम्।
अवस्थायै स्त्रियै दखाद वस्या भवति नान्यथा॥

"श्रं ह्यूं स्वाहा"। अनेनाभिमन्त्र द्यात्॥ ४॥
साध्यसाधकनाम्ना तु क्तत्वा सप्ताभिमन्त्रितम्।
होयते कुसुमं यस्यै सा वश्या भवति ध्रुवम्॥
सुसाधितो ह्ययं मन्त्रः श्रवश्यं फलदायकः।
तस्मादेतत् प्रयक्षेन साधयेन्यन्त्रमुत्तमम्॥

श्रव मलः। —"श्रीं छूं खाहा"॥ ५॥

विशाखायान्तु वन्दाकं मङ्गल्यस्य समाहरेत्। हस्ते बड्डा तु कुरुते वश्रतां वरयोषिताम्॥ "ग्रीं पार्ते वज्जाय स्वाहा"। चनेनाभिमन्य वधीयात्॥ ६॥

क्षणीत्पलञ्च शिखिनय सुपचयुग्मम्
मूलं तथा भगवतः शितकाकजङ्घा।
यस्याः शिरोगतिमदं विहितं विचूर्णम्
दासीभवेज् भिटिति सा तर्गणे सुरूपा॥ ०॥
सब्येन पाणिकमलेन रतावसाने
थो रेतसं निजभवञ्च विलासिकायाः।
वासं विलिम्पति पदं सहसैव यस्याः
तस्येव सा भवति नात्र विकल्पभावः॥ ८॥

सिन्धूत्यमाचिककपोतमनानि पिष्टा लिक्नं विलिप्य तरुणीं रमते नवीढ़ाम्। साउन्यं न याति पुरुषं मनसाउपि नूनम् दासीभवेदिति मनोहरदिव्यमूर्त्तिः॥ ८॥ गोरोचनाणिणिरदोधितिशभुवीजैः काश्मीरचन्दनयुतैः कनकद्रवैद्य। पिष्टा ध्वेजोपरि रमत्यवनां न्वोढ़ाम् तस्याः स एव हृदये मुकुटत्वमेति॥ १०॥

पुष्ये रद्रजटामूलं मुखस्यं कारयेद् वृध: ।
सताम्बूलं प्रदातव्यं वश्या भवित निश्चितम् ॥ ११ ॥
तयैव पाटलं मूलं ताम्बूलेन तु वश्यक्कत् ॥
विपत्नभिष्टकामूलं पिष्टा गाचे तु संचिपेत् ।
यस्याः सा वशमायाति विन्दुमात्रेण तत्चणात् ॥ १२ ॥
स्वकीयं काममादाय कामदेवं स्मरेत् पुनः ।
तरुष्णा हृदये दत्तं तत्चणात् स्ती वशीभवेत् ॥

अव मनः ।—"ऐं पीं स्त्रीं क्रीं कामिपशाचिनि श्रमुकीं कामेन ग्राइय, कामेन कामरूपेण नखैर्विदारय विदारय दारय दारय, स्रेहेन बन्धय बन्धय श्रीं फट्"॥ १३॥

प्रकारानरम्। नागपुष्यं प्रियङ्गुञ्च तगरं पद्मकेशरम्। जटामांसीं समं कत्वा चूर्णयेत् मन्ववित् ततः। स्वाङ्गं धूपयते तेन भजन्ते कामवत् स्त्रियः॥

"ग्रों मूली मूली महामूली सर्वं संचीभय एभ्य उपद्रवेभ्यः स्वाहा"। इति धूपमलः॥ १॥

> पानीयस्थाञ्जलीन् सप्त दत्त्वा विद्यामिमां जपेत्। सालङ्कारां नरः क्रन्यां लभते नात्र संशयः॥

भव मनः ।—"श्री विश्वावसुनीम गन्धर्वः कन्यानामधिपतिः, सुरूपां सालङ्कारां देहि मे, नमस्तस्मै विश्वावसवे स्वाहा" ॥२॥ कन्याग्रहे शालकाष्ठं चिपेदेकादशाङ्गुलम् । ऋचे च पूर्वफल्यां तस्मै कन्यां प्रयच्छिति ॥ गोरोचनाकुङ्गमाभ्यां भूर्जे यस्याः नामाऽभिलिख्य घृतमधुः मध्ये स्थापयेत् सा वश्या भवति ॥ ७॥

<sup>७</sup> अय पतिवशीकरणम्।

खद्धरीटस्य मांसानि मधुना सह पेषयेत्। अनेन योनिलेपेन पतिर्दासी भवेद् भुवम्॥१॥ पञ्चाङ्गदाड़िमं पिष्टा खेतसर्षपसंयुतम्। योनिलेपे पतिं दासं करोत्यपि च दुर्भगा॥ कर्पूरं देवदारुञ्च सत्त्वीद्रं पूर्ववत् फलम्॥

"श्री काममालिनि पति मे वशमानय ठठ"। उत्तथीगानां सप्तामिमन्तिने सिंडिः ॥ २॥

गोरोचनामस्यपित्तं पिष्टाऽपि तिलके कते।
वामहस्तकनिष्ठायां पितर्दासो भवत्यलम्॥ ३॥
स्वर्योणितं रोचनया तिलकं पितवश्यकत्॥
चित्रकस्य तु पुष्पाणि मधुयुक्तानि कारयेत्।
यत्रेते पाने प्रदातव्यं पितवश्यकरं भवेत्॥ ४॥
सर्जपत्रञ्च मधुना योनिलेपे पितविश्यः॥
जलौकसां मुखे देयं शम्बूशङ्कादिचूर्णकम्।
तचूर्णन्तु समायद्य तास्वूलेन समायुतम्।
दातव्यं स्वामिने भोक्तं वश्यो भवित नाऽन्यया॥ ५॥

गोरोचनानलदकुङ्गमभावितायाः तस्याः सदैव कुरुते तिलकं वशिलम्। वात्यायनेन बहुधा प्रमदाजनानां सौभाग्यक्तत्यसमये प्रकटोक्तर्तौऽसौ ॥ ६ ॥ सन्भोगशेषममये निजकांममेदृम् या कामिनो स्प्रगति वामपदाम्बुजेन । तस्याः पतिः सपदि विन्दति दासभावं गोणोसुतेन कथितः किल योग्राजः ॥ ७ ॥

द्रति यौनागभट्टविरचिते कामरबे वशीकरणं नाम प्रथमीपदेश:।

# अय आकर्षणम्।

चतुर्घवर्णमाञ्चच दितीयवर्गसंस्थितम्।

कत्वा विविधहाहान्तं तदन्ते हिंदितीयकम्॥

ग्रंकारं ग्रिरमं कत्वा प्रत्यचरप्रजापनम्।

सहस्राईस्य जापेन फलं भवति ग्राग्रतम्॥

मनः।—"भां भां भां हां हां हें हें"।

मानुषासुरदेवाय सयचीरगराचसाः।

स्थावरा जङ्गभायव त्राक्तटास्ते वराङ्गने !॥१॥

हान्ते रिफं समादाय यकारन्तु विग्रेषतः।

ग्रचरं तितयं तच दिधा कत्वा प्रजापयेत्॥

भच्यं कत्वा स्वहस्तेन कत्वा मन्त्रविभावनम्।

दीयते यस्य भच्यं तत् सर्वेषां प्राणिनां ग्रुभे !।

ते सर्वे यत्र नीयन्ते तत्र गच्छत तत्वच्णात्॥

मनः ।—"हर्य हर्य"।

क्रींकारेण मन्वयेत् पाशं झंकारेणाङ्गग्रं तथा। तिपालं वामगं पाशं दिखणे ज्वलिताङ्ग्गम्। सन्ध्यायां खकरे मन्त्री ततो मन्त्रमिमं जपेत्॥ "श्रीं क्रीं रच रच चामुण्डे तुरु तुरु श्रमुकीमाकर्षय श्राकर्षय हीं"। अस्य मन्त्रस्य पूर्वमेवायुतजपे सिडि:। श्रीं चामुगडे ज्व ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वीहा"। अनेन मन्त्रेण स्त्रियं इश जपं कारयैत् तत्वणात् पृष्ठतः समागच्छति। पूर्वमेवायुतजपे सिडि:।

अञ्चेषायां समाहृत्य अर्जुनस्य तु त्रभ्नम्। अजामूत्रेण संपेष्य स्त्रीणां शिरसि दापयेत्। पुरुषस्य पश्नां वा चिपेदाकर्षणं भवेत्॥ ३॥ साध्यानामपदस्थान्तान्मृत्तिकामाहरेत् ततः। क्तकलासस्य रक्तेन प्रतिमां कारयेद् वधः॥ साध्यानामाचरं तस्यास्तद्रं तैवि लिखेइवि। मूत्रस्थाने च निखनेत् सदा तत्रैव मूत्रयेत्। श्राकर्षयेतु तां नारीं शतयोजनसंस्थिताम् ॥ ४ ॥ सूर्यावर्त्तस्य मूलन्तु पञ्चम्यां याद्वयेद् वुधः। ताम्बूलेन समं दद्यात् स्वयमायाति भचणात्॥ ५॥ रितकमेकरी याह्यी भ्रमरी यत्नती वृधै:। भिन्नी कला दहेत् ती तु चित्रकाष्ठैस्तयोः पुनः ॥ ्रवस्त्रेण बन्धयेइसा पृथकृत्पुहलीइयम्। तयोरेकामजायङ्गे दृढं बङ्गा परीचयेत्॥ यां यां याति च सा मेषी पृथक् तु रच्चयेद् बुध:। तत् भस्म शिरिस न्यस्तं चणादाकर्षयेत् स्त्रियम्। त्रपरं रचये बस्ते नो चे नायाति कामिनी॥

"त्रीं क्राण्वर्णाय स्वाहा"। इमं मन्तं पूर्वमेवायुतं

उत्तयोगेनाभिमन्त्र सिर्डिः ॥ ६ ॥

ं द्रति यीनागभद्दविरचिते कामरवे चाकर्षणं नाम दितीयीपदेश:।

ष्य जयः

इकारं स्वरसंयुक्तं उकारिण सुपूजितम्। श्रोंकारिण च सम्पूज्य श्रुन्ते फट्च नियोजयेत्॥ "श्रों इं फट्"।

जेयाग्रे यतजापेन जितो भवति नान्यया जेयनाम ऋदि न्यस्य चत्तुषा तिवमीत्य च। सुष्टा च मन्त्रजापेन तत्चणाज्जितवानसी ॥ १॥ गोजिह्वा शिखिमूली वा मुखे शिरिम संस्थिता। कुर्ते सर्ववादेषु जयं पुष्ये समुद्रुता ॥ २ ॥ मार्गेशीर्षस्य पूर्णायां शिखिमूलं समुदरित्। बाही ग्रिरिस वा धार्या विवाद विज्ञा भवेत्॥ ३॥ गिरिकणीं शमीं गुञ्जां खेतवणीं समाहरेत्। चन्दनेनान्वितं सर्वं तिलक्तेन जयी नरः॥ ४॥ कनकार्कवटौ विक्वविद्रमः पञ्चमस्तया । तिलकं क्रियते येन पश्येत् तं पञ्चधा रिपुः ॥ ५ ॥ क्षण्यसर्पकपाले तु वसामृत्तिकयान्विते। सितगुन्तां वपेत् तत्र तस्या मूलं समाहरेत्॥ क्तता च तिलकं धीरः यं पश्येत् सम्भृतं रिपुम्। खगणेभेच्यमाणच पतितच ततो भुवि ॥ ६॥ श्रीषधिः सिंहिका नाम तथा मृष्टा महारसैः। सिंही कपर्दिकामध्ये चेप्या तस्मूलसंयुता॥ पिधाय वदनं तस्याः सिक्यकेन समन्विता। तस्यां वक्कस्थितायान्तु सिंहवत् ज्ञायते नरः॥ रणे राजकुले खूते विवादे चाऽपराजित:। मदोनातो गजस्तस्य दंर्यनेन पराझ्खः॥ ७॥ व्याघीरसेन संसष्टः पारदो मूलसंयुतः। पूर्ववत् साधये द्वाघीं फल श्रेव तथाविधम् ॥ ८॥ करे सुदर्शनामूलं बड्डा राजकुले जयी। जयामूलं राजकुले मुखस्यञ्च जयप्रदम्॥ ८॥

श्राद्रीयां वटवन्दाकं हस्ते बह्वाऽपराजितः।
तह्ने चूतवन्दाकं ग्रहीत्वा धारयेत् करे।
संग्रामे जयमाप्नोति जयां स्मृत्वा जयी तथा ॥ १० ॥
केकाया नयनं वासं गुड़लोहिन वेष्टयेत्।
प्रतिचिप्य मुखे धीरः सर्ववादे जयी भवेत् ॥ ११ ॥
क्रित्तका च विशाखा च भीमवारेण संयुता।
तहिने घटितं वस्तं संग्रामे जयदायकम् ॥ १२ ॥
श्रपामार्गरसृनेव यानि, ग्रस्ताणि लिप्यते।
जयन्ति तानि संग्रामे, मूलमन्त्राभिमन्त्रितात्।
तम्णींहर्जनानमन्दः शनून् मोह्यते बह्नन् ॥ १३ ॥

यस मनः।—"श्रों नमी महाबलपराक्रम शस्त्रविद्याविशार प्रमुकस्य भुजवलं बन्धय बन्धय, दृष्टिं स्तन्भय स्तन्भय, श्रङ्गा धूनय धूनय, पातय पातय महीतले ह्रं"।

षय सीभाग्यकरणम्।

पृष्योडृतं सितार्कस्य सूलं वामितरे भुजे।
बड्डा सीभाग्यमाप्नोति स्नामिनी दुर्भगाऽपि सा॥१॥
रक्तचित्रकसूलच सोमयस्ते समुडृतम्।
चीद्रैः पिष्टा वटिं कुर्यात् तिलकं ग्रभमङ्गना॥२॥

गोरोचनाकुङ्गमाभ्यां यस्य नाम संलिख्य मधुमध्ये स्था येत्, सद्यः सीभाग्यं भवति । गोरोचनया भूर्जे यस्य नामावि लिख्य मधुमध्ये स्थापयेत्, सीभाग्यं भवति । कुङ्गमगोरं चनाऽलक्तकेन यस्य नाम संलिख्य मधुमध्ये स्थापयेत्, सीभाग् भवति ॥ ३ ॥

अध र्श्वरादीनां क्रोधीपशमनम्।

कर्एकेन तालपत्रे नामाभिलिख्य कर्दमे स्थापयेत् कुपितः प्रसन्तो भवति। गोरोचनया भूर्जे यस्य ना समालिख्य पयोमध्ये स्थापयेत्, कुपितः प्रसन्नो भवति। "श्री शान्ते प्रशान्ते सर्वे कुडोपशमिन खाडा"। श्रनेन मन्त्रेण विःसप्त-वारजप्तेन मुखं मार्जयेत्। ततः क्रोधोपशमनं भवति। प्रसादपरो भवति॥१॥

षय पदातुदीवशिताकरणम्।

गोरोचनया स्वानामिकारक्तेन भूर्जे यस्य नाम संलिख्य मधुमध्ये स्थापयेत् स श्रदाता दाता भवति ।

अथ गजनिवारणम्।

विल्वपत्रस्य चूर्णन्तु कुकुकुर्याच तत् समम्।
तिल्लिप्ताङ्गं नरं दृष्ट्वा दूरे गच्छिति कुच्चरः ॥
मूलं मर्कटवल्याच वाद्यो वहच्च मूर्डिन।
दुष्टदिन्तिहरं दूरं चित्रं मंयित जायते॥
खेतापराजितामूलं हस्तस्यं वारयेद् गजम्।
मूलं त्रिशूल्या वक्तस्यं गजवश्यकरं भवेत्॥
ध्य व्याप्तिवारणम्।

मुखस्यं वहतीमूलं हस्तस्यं व्याघ्रमीतिहृत्। "क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं"। इति पञ्चाचरमन्त्रेण लीष्ट्रं पठित्वा ज्ञिपेत्, तदा मुखं न चालयित गन्तुमण्जः।

मूलं क्षणाचतुर्द ग्यां ग्राह्येत् लाङ्गलीभवम् । हस्तस्यं व्याघ्रसिंहादि-भयहृत् परिकीत्तितम् ॥ इति शीनागभइतिर्चित कामरक्षे विजयादिव्याव्यनिवारणं नाम वृतीशीपर्दणः।

## अध स्तस्मनम्।

तन मनुषां मुखन्तभनम्।
मेघनादस्य मूलन्तु मुखस्यं तारवेष्टितम्।
परवादी भवेन्मूकोऽचवा याति दिगन्तरम्॥
खेतगुङ्गोत्यितं सूलं मुखस्यं परतुण्डजित्॥

अव मलः — "श्रों क्लीं रच चामुण्डे तुरु तुरु श्रमुकां मे वश-मानय खाद्या"। श्रयं चामुण्डामन्तः, श्रनेन उक्तयोगसिडिः ॥१॥ पुष्पार्को मधुवन्दाकां ग्रहीत्वा प्रचिपेट् वृधः। सभामध्ये च सर्वेषां मुखस्तन्थः प्रजायते ॥ २॥

त्रक्षपत्रे हरितालरसेन यस्य नामाभिलिख्य उद्यानमध्ये ईशानकोणे स्थापयेत् तस्य मुखस्तभनं भवति। शिलापठले हरिद्रया यस्य नामाभिलिख्य अधोमुखीक्तत्य स्थापयेत्, तस्यैव शतोः मुखं स्तभयति। यस्मिन् किस्तिष्य त्रिष्यो लिखित्वा यस्य नाम स्थापयेत्, तस्य मुखबन्धनं करोति। "अमुकस्य मुखं स्तभय स्तभय स्वाहा" दति विकोणमध्ये हरिद्रया यस्य नामाभिलिख्य दुमविवरे स्थापयेत्, तेन शत्नुमुखं स्तभयित ॥ ३॥ नौकालक्षनम्। भराष्यां चौरिकाष्ठस्य कीलं पञ्चाङ्गुलं चिपेत्।

नीकामध्ये तदा नीका स्तभनं जायते ध्रुवम् ॥

विद्रासभनम् । मूलं हहत्या मधुकं पिष्टा नस्यं समाहरेत् ।

विद्रास्तभनमेतिह मूलदेवेन भाषितम् ॥

ानद्रास्तभनमताह मूलदवन भाषितम्॥

श्वासभनम्। श्रङ्गशी च जटा पाठा विष्णुक्रान्ता च पाटली।

श्वेतापराजिता पुङ्का देवी च काकजिङ्क्विता॥

पुष्यर्ज्ञेण समुहृत्य वक्ते शिरिस संस्थितम्।

एकैकं वारयत्येव शस्त्रमंहरणं नृणाम्॥

बहच्च व्याघ्रभूपाल-भयं शत्तुभयं जयेत्॥१॥

जातीमूलं मुखे चिप्तं शस्त्रस्तभनमुत्तमम्।

पुङ्कायाः पाटलाया वा मुखस्यं काण्डशस्त्रहृत्॥२॥

कपित्यस्य च वन्दाकं क्रित्तकायां समाहरेत्।

वक्तसंस्थन्तु देवस्य शस्त्रस्तभकरं परम्॥३॥

कर्त सुदर्शनामूलं बह्वास्त्रस्तभनं भवेत्॥

कतिकी मस्तके नित्रे तालमूलं मुखे स्थितम्।

खर्जूरं चरणे हस्ते खड़स्तभः प्रजायते ॥
एतानि बीणि सूलानि चूर्णितानि घृतैः पिवेत् ।
ब्राहं रात्रौ ततः सर्वैर्यावज्जीवं न वध्यते ॥ ४ ॥
सर्वेषासुक्तयोगानां कुभक्षणः प्रसीदति ।
श्रायान्तं सैन्यकं ग्रस्तसमूहं स निवारयेत् ॥ ५ ॥

भव मलः।—"श्रीं श्रही कुभाकर्ण महाराच्यस निक्रधागर्भ-सम्भूत परसैन्युस्तभान भगवन् रुद्र प्राज्ञापयति स्वाहा"। मर्व-योगाणामदीचरमङ्क्षजपेन सिंडिः।

वक्री चक्री तथा वजी विश्वली मुषली तथा॥ ६॥ देइस्था समरे पुंसः सर्वायुधनिवारिणी॥ ग्रहीला ग्रभनचत्रे ग्रपामार्गस्य सूलकम्। लेपमात्रे ग्रीराणां सर्वग्रस्त्रनिवारणम्॥ ७॥ खर्ज्री मुखमध्यस्या कटिबडा च केतकी। भुजदण्डस्थितश्वार्कः सर्वग्रस्त्रनिवारणः ॥ ८॥ पुषर्चे खेतगुञ्जाया मूलमुड्ख धारयेत्। इस्ते काण्डं भयं नास्ति सङ्घामे च कदाचन ॥ ८॥ विलोइवेष्टितं कत्वा रसं वजाभ्यसंयुतम्। वक्तस्यच करस्यच सर्वायुधनिवारणम्॥ १०॥ ब्रह्मदण्डी च कीमारी ऐखरी वैचावी तथा। वाराही वैषावी \* चैन्द्री महालक्सीस्तयैव च॥ एता बीषधयो दिव्यास्तयैता मातरः स्राताः। स्मृतायैव करे बडाः सर्वेगस्त्रनिवारिकाः॥ ११॥ अग्रिलक्षनम्। जप्ता जठीं नरो देवीं तारीं महिषमर्दिनीम्। खद्राङ्गारमध्ये तु प्रविष्टोऽसी न दह्यते॥१॥

<sup>\*</sup> भव वैचावी नारसिंही।

अव मनः ।— "श्रीं मत्तकटीट इध्यवने सेकटीय मृलीयसी। श्रालिप्याग्नाय मुदीयते शनकवी के मन्दी झीं फट्। श्रीं झीं महिषवाहिनी स्तम्भय मोहय भेदय श्रग्निं स्तम्भय ठठ"। एतन्त्रन्तवस्य पूर्वभेवायतज्ञपेन सिंडिः॥ २॥

कुमारीरसकं पिष्टा लिप्तहस्तो नरी भवेत्। दीताङ्गारैस्तप्तलीहिर्मन्त्रयुक्तीर्न दह्यते॥ कर सुदर्भनामूलं बङ्घाग्निस्तभनं भवेत्॥३॥

गीमहिषादिसमानम्। उष्ट्रस्यास्यि चतुर्दिस्तु निखनेद् भूतसे भ्रुवम्। गोमेषमंहिषीवाजीः स्तन्धयेत् करिणीमपि॥

श्रय मनुष्यस्तभानम्।

गोरोचनाऽलक्तककुङ्गमेन भूर्ज संलिख्य जले धारयेत्, यस्य नाम तस्य स्तभानं भवति।

मृन्तर्यशरावे संलिख्य स्मशानभस्मनापूर्थ्य शरावसम्पुटे क्तत्वा स्मशाने निखनेत्, सद्यः स्तश्मनं भवति । गोरोचना-कुङ्गमाभ्यां यस्य नाम संलिख्य रक्तसूत्रेण संवैष्ट्य धारयेत् । ते सर्वे दुष्टाः स्तश्मीभूता भवन्ति निश्चितम् ।

श्रंथ सर्वेषा श्रवूणां बुडिसम्भनम्।
सङ्गराजोऽप्यपामार्गः सिडार्थं सहदेविका।
तुःखं तुःखं वचा खेता द्रव्यमेषां समाहरेत्॥
लोहपाचे विनिच्चिप्य दिदिनान्ते समुद्वरेत्।
तिलकौः सर्वभूतानां बुडिस्तभकारं भवेत्॥

भव मनः ।—"श्रीं नमो भगवते विखामित्राय नमः सर्वमुखीभ्यां विखामित्राय विखामित्र श्रान्नापयति । शक्त्या श्रागच्छागच्छ खाद्या" । उक्तयोगस्यायं मन्तः । श्रनेन मन्त्रेण नदीं प्रविष्टः कृताञ्जलिस्तर्पयेत् । श्रतृणां बुहिस्तभो भवति ।

### अय चौराणां गतिसभनम्।

"श्रों ब्रह्मविशिनि शिवे रच रच ठठ"। अनेन मन्त्रेण सप्त-।। शान् ग्रहीत्वा त्रीणि कव्यां बड्डा ऋपरान् मुष्टिभ्यां धारयेत्। शैराणां गतिस्तभो भवति।

त्रय गर्भसम्भनम्।

ग्राच्चं क्रपाचतुर्दश्यां धुस्त्रस्य तु व्रभ्नकम्। कव्यां बहुा, रमित् कान्तां न गर्भं धारयेत् कचित्॥ मुत्तेन लभते गभें पुरा नागार्जुनोदितम्। तन्मूलचुर्णं योनिस्यं न गर्भं सम्भवेत् क्वचित्॥ सिडायेमूलं शिरसि वड्डा कान्तं रमेत् या। न गर्भ धारयेत् सा स्त्री त्यत्वा च लभते पुनः ॥ मार्जारस्य मलं ग्रहीला अनामिकाया रक्तेन भूजें लिखिला

पुमी निखातयेत्। गर्भं स्तम्भयति।

वय ग्रजलयनम्।

दन्द्रवाक्णिकामूलं पुष्ये नगनः समुबरेत्। कटुत्रयैर्गवां चीरै: संपिष्य गोलकीकतम्॥ क्रायाग्रष्कं स्थितञ्चास्ये वीर्थस्तभाकरं परम्॥१॥ नोलीमूलं समानस्यं कट्यां वड्डा तु वीर्यपृक्। क्रणोन्मत्तवचामूलं मधुपिष्टं प्रलेपयेत्। श्रत्यर्थं रमते कान्तां स्वभावात् द्विगुणं नरः॥ २॥ मृङ्गीविषं पारदञ्च प्रत्येकन्तु दिगुञ्ज्कम्। वराटन्तु चिपेडिन्दुः खिरः स्थान्मस्तके धृते ॥ ३॥ रक्तापामार्गमूलन्तु सोमवारे निमन्तयेत्। भीमे प्रातः समुदृत्य कट्यां बड्ढा तु वीर्य्यप्टक् ॥ ४ ॥ पुनर्नवाचू णैविसेपनं वा जहाति वीर्थं न कदाचिदेव। क्षणधूर्तं महाकालं श्रानवारे निमन्त्रयेत्॥

रिववारे समादाय अदत्तारमणीक्ततैः। स्त्रैर्गुणत्रयैर्बेडं करे वामे प्रयत्नतः॥ उपविश्वासने खण्डत्रये कामत्रयं ततः। बिन्दुस्थिरत्वमाप्नोति मुक्ते चरित तत्चणात्॥५॥

दति कामरते सम्भनं नाम चतुर्थीपदेश:।

अय सर्वजनमोहनम्।

कन्यावरे सुरतिसङ्गमने नराणा-मालोकने नरपतेः क्रयविक्रयादौ। प्रज्ञाविधी सकलकर्मण कीतुके वा धूपैर्मदै: सुहृदयैर्विनियोजनीय:॥ **श्रुङ्गीवचानलदसर्जरसं समानं** क्तवा वृटिं मलयजञ्च षड्किमिश्रम्। या ध्रपयेनिजग्रहं वसनं शरीरं तस्यास्तु दास इव मो इसुपैति लोकः॥१॥ भृङ्गराजः केशराजो लज्जा च सहदेविका। एभिस्तु तिलकं कत्वा त्रैलोकां मोहयेवरः॥२॥ तिदलं कुसुमं यस्य स धुस्तूरः क्षताञ्जलिः। भृङ्गराजः सहाज्येन तिलकं मोहयेळागत्॥ ३॥ तालकं कुलटीचैव सङ्गपचसमं समम्। कृष्णोन्मत्तस्य क्षसुमं वटिकां कारयेट् वुधः ॥ ४ ॥ तेनैव तिल्वं क्वता हैलोकां मोहयेतरः। अये सप्तखरा याच्या अन्ते इंकारसंयुता:॥ चींकारशिरसं कला च्लं चन्ते फट्च विन्यसेत्।

श्रीकारिशरसं क्षता हू श्रन्त फट्च विन्यसत्।

मनः। "श्री श्रंशां दं दंं उं जं ऋं हूं फट्"।

श्रीनैव तु सन्त्रेण क्षत्वा तास्वूलभावनम्।

साध्यस्य मुखनिचित्ते मोहमायाति तत्चणात्॥

"श्रीं भीं चां भीं मोहय मोहय" इति वारतयं जपनात् मोहमाप्रोति मानवः। गोरोचनया श्रनामिकारक्तेन यस्य नामाभिलिख्य ष्टतमध्ये स्थापयेत् तं मोहयति॥ ५॥

भय राजकुलमोइनम्।

नीनोत्पनं गुगुनुञ्च क्वप्णागुरुसमं समम्। धूपयित्वा निजं देहं राज्ञः कुलविमोहनम्॥
अध ईयरकुनमोहनम्।

ग्रभामूलं तथा वीजं रक्तचन्दनसम्भवम् । चुटीवीजं समं पिष्टा वचामूलं प्रयोजयेत् । भोक्तं देयं खहस्तेन मोहमाप्रोति चेखरः ॥

षय दुष्टजनमी इनम्।

यस्य नाम रक्तद्रव्येण भूजें मंलिस्य मधुमध्ये स्थापयेत्। स दृष्टीऽपि मोहमाप्नोति।

गोरोचनया भूर्जे यस्य नामाभिलिख्य पुष्पादिषड्ङ्गेः सम्पूज्य मधुमध्ये स्थापयेत् तमितदुष्टमिप मोचयित । सर्वेमीचनम् । दुश्चिक्योद्भवचूर्णेन धूपो मोचयित तृषाम् ॥ १ ॥

गरलं धूर्त्तपञ्चाङ्गं महिषीशीणितं कणा।
शिकायां कुरुते मोहं धूपो गुगुतुसंयुतः॥ २॥
हिलसी विषधुस्तूरं शिखिविष्ठाभिरन्वितम्।
समं भागं तथा धूपः योषित्येव विनिश्चितः॥ ३॥
कुकुन्दरीसप्तमुण्डं दृश्चिकस्य तु कण्डकम्।
हिरितालसमं धूपो मोहयेत् सकलान् नरान्॥ ४॥

श्रय श्रव्भी हनम्।

श्रविः पीतिशिखा चैव खेता च गिरिकर्णिका। गोरोचनसमायोगे तिलकं शतुमोचनम्॥ ५॥ तालकोन्मत्तवीजानि पाने मिलीय दापयेत्।
तत्त्रणानोहमाम्नोति चोन्मत्तो जायते नरः।
समाचितैः सितान्भोजैः सुस्यः पानाद भवेतरः॥ ६॥
विदेवणम्। किपरोम-हिङ्गुदार्वी-खरचर्माणि चूर्णयेत्।
तत्रूर्णं मन्त्रसञ्जतं नामकर्मविदर्भितम्॥
तिसहस्रं पुनस्तेन स्निग्धयोरन्तरात्मनोः।
धूपैरतीवविदिष्टौ स्निग्धाविष भविष्यतः॥
तालपत्रे लिखेनान्तं नामकर्मविदर्भितम्।
कतप्राणप्रतिष्ठान्तं प्रजत्तं तिसहस्रकम्॥
विषालित्तं दिधा कत्वा निखनेत् सिन्धुतीरयोः।
स्निग्धयोराम्च विदेषः स्यादमिमानयोरिष॥

## यय रञ्जनम्।

तव देहरञ्जनम्।

श्रवाङ्गरागः पुरुषेण कार्यः स्त्रियाऽिष सम्भोगसुखाय गाते।
तस्मादहं गन्धविधानमादौ विलासिनः सवसुदीरयािम ॥ १ ॥
हरीतकीलोभ्रमिरिष्टपत्रं सप्तच्छदं दािड़मवल्कलञ्च।
एषोऽङ्गनायाः कियतः कवीन्द्रः प्ररीरदीर्गन्ध्यहरः प्रलेपः ॥ २ ॥
हरीतकीचन्दनसुस्तनागैरुशीरलोभ्रामयरािततुल्यैः।
स्त्रीपंसयोर्घर्मजगात्रगन्धं विनाशयत्याशु विलेपनेन ॥ ३ ॥
हरीतको श्रोफलसुस्तिचञ्चा-फलितकं पूितकरञ्जवोजम्।
कचादिदीर्गन्ध्यमपि प्रभूतं विनाशयत्याशु निदाधकाले ॥ ४ ॥

कदम्बपत्रं लोभ्रञ्च श्रजुनस्य तु पुष्पकम् ।

पिट्वा गात्रोदर्त्तनञ्च दुर्गन्धचयनाश्चनम् ॥ ५ ॥

सचन्दनोशीरकबालपत्रैः कोलाख्यमज्जाऽगुरुनागपुष्पैः ।

पिट्वा शरीरं प्रमदा इठेन चिरप्रभूतं विनिन्नन्ति गन्धम् ॥ ६ ॥

दाड़िमलञ्जधुलोभ्रपद्मैः पिष्टैः समानैः पिचुमर्दपत्नैः। ानिप्य गात्रं तरुणी निदाघे दुर्गन्धि घर्माम्बुचयं निहन्ति ॥**०॥** केशरोशीरशिरीषलोधेयुर्णीकतैरङ्गविलेपनेन। ोषे नराणां न कदापि देहे घर्मच्यतिः स्यादिति भोजराजः॥८॥ तिलसर्पपरजनीदयदूर्वागोरीचनाकुष्ठमहितै:। अजमूचतकपिष्टैक्दर्तिताङ्गमनुपमं स्थात्॥ ८॥ रीतकीतीयदतुत्स्यभागैर्घनेतरस्यापि चनुर्घभागः। दर्डभागः कथितो नखस्य तेषाच गन्धो मंदनप्रकाशः॥ १०॥ तागठीपत्रकचन्दनानि तोयात्तया शिगुघनामयानि । सीरभोऽयं सुरराजयोग्यः ख्यातः सगन्धो नरमोहयोगः ॥११॥ त्रय मुखरञ्जनम्। तालजम्बूफलगर्भसारः सकर्कटो माचिकसंयुतय । यतो मुखान्ते पुरुषस्य रात्रो करोति पुंसां मुखवासिमष्टम्॥१॥ इलगेलानखजातिशिह्नै: खर्णान्वितै: चुद्रवटी विधेया। म्बृनगर्भा दिवसे च रात्री करोति पुंसां मुखवासिम्हम् ॥२॥ एँ मुराकेशरकुष्ठकानां प्रातर्दिनान्ते परिलेढि या स्ती। यर्डमामेन मुखस्य वासः कर्पूरतुःचो भवति प्रकागः॥ ३॥ क्र गाचूर्णं मधुना प्रतेन पिकाचवीजान्वितमत्ति नित्यम्। सैकमावेण मुखं तदीयं गन्धायते केतकगन्धतुत्वम् ॥ ४ ॥

वित्त गन्धाः पिड्काः प्ररूढ़ा मामार्डमात्रेण विलासिनीनाम्॥५ कण्टकैः शाल्मलिपादपस्य चीरेण पिष्टाऽऽग्र दिनं प्रलिप्य । डप्ररोहाः पिड्कास्त्र्यहेण प्रयान्ति नाशं पुरुषस्य तन्व्याः॥६॥ न्यं वचाशैलजलोधतुत्र्यं पिष्टा लिपेत् तेन मुखं नितान्तम् । बोद्ववा या वनिताजनानां नथ्यन्ति नृनं पिड्काः क्रमेण ॥७॥

दा मस्रं घनमारकेण मुहुर्मुहुस्तेन विलिप्य वक्तम्।

<sup>\*</sup> लिपेत् इत्यापं पदम्।

सिडार्थवीजं दितयं तिलञ्ज चीरेण पिष्टा परिलिप्य वक्रुम्। सप्ताइमाचेण मुखस्य नीलीं निहन्ति क्षण्णामिति रन्तिदेवः॥

मिरचं रोचनायुक्तं सिम्पष्य मुखमालिपेत्।
तरुष्याः पिड्काः सर्वा नध्यन्ति मुखसक्तवाः ॥ ८ ॥
मातुलुङ्गजटासिपः शिला गोशक्ततो रसः।
मुखकान्तिकरो लेपः पिड्कातिलकालिजत्॥ १० ॥
मनःशिला तथा लोधः दिनिशा सर्वृपाः समाः।
वारिपिष्टो हितो लेपो वदने ध्यामिकां हरेत्॥ ११ ॥

भय केशस्य क्रणीकरणम्।

सग्गन्धधूपाम्बरभूषणाद्यं न शोभते ग्रुक्तिशरोर्ग्हाणाम्। यस्मादतो मूर्डेजरागमेवां कुर्य्यात् यथैवाञ्जनभूषणानाम्॥१

यक्कोलकोत्यितं तैलं कान्तपाषाणचूर्णकम्।
फलन्तु श्रीफलं क्षणां चूर्णियत्वा प्रयक्षतः॥
धान्यराशी विनिच्चित्य मासाई शिरिस स्थितम्।
नस्यं दिनव्यं तेन केशरञ्जनकं भवेत्॥
वर्षाई तिष्ठते क्षणां भ्रमराञ्जनसन्निभम्॥२॥
विप्तला लीहचूर्णञ्च इज्ञुसङ्गरमस्त्रथा।
क्षणासृत्तिकया साई भाग्छे मामं निरोधयेत्।
तक्षेपाद्रञ्जयेत् केशान् चतुर्मामं स्थिरं भवेत्॥३॥
लीहिकं जवापुष्यं पिष्ठा धावीफलं समम्।
विदिनं लेपयेत् शीर्षं विमामं केशरञ्जनम्॥४॥

श्रथ केशस्य यूकादिनिवारणम्।

विड्ङ्गन्धोपलकल्कयोगात् गोमूत्रसिष्ठं कटुतैलमेतत्। अभ्यङ्गयोगेन ग्रिरोक्हाणां यूकादिलिख्यप्रचयं निहन्ति॥१ गोमूत्रे तु बलामूल-लेपो यूकादिवारणः॥ पारदं घर्षयेक्नेख्यं क्वरणधुस्त्रजैर्द्रवैः। तेनैव मिश्रितेनाय खण्डवस्तं प्रसेपयेत्॥
तदस्तं वेष्टयेन्मौसौ धार्यः यामत्रयं तथा।
यूकाः पतन्ति निःशेषं मस्तकादात्र संश्यः॥
विल्बसूलं सगोसूतं सेपाद् यूकादिनाशनम्॥ २॥

चय केशस्य इन्द्रलुप्तादिनिवारणम्।

त्वाफनै: चौद्रयुतैर्विनिष्य शिरःप्रदेशे सकनेन्द्रनुप्ते । प्रनेन योगेन सदैव केशा रीहन्ति कृष्णाः कुटिलाऽतिरस्याः॥१॥ गतङ्गदन्तस्य मसीं विधाय स्रोतोष्वनं तुस्यतया सुपिष्टम् । तेपेदनेनैवमिहेन्द्रनुप्तं केशाः प्ररोहन्यपि हस्तमध्ये ॥ २॥

कुड़मं मिरचै: सार्डं पिष्टा तैलेन लेपयेत्।
दन्द्रलुप्तं निहन्त्याग्र विम्बीपुष्परमैद्रवै: ॥ ३ ॥
सुदग्धहस्तिदन्तन्तु क्रागीदृग्धं रसाञ्चनम्।
पिष्टा लेपात् प्रजायन्ते किया: करतलेष्वपि ॥ ४ ॥
जातीपुष्पदलं मूलं कृष्णगोमूत्रपेषितम्।
लेपोऽयं सप्तरात्रेण दृढं केथकरं परम् ॥ ५ ॥
भङ्गाटं तिफलां भङ्गीं नीलोत्यलमयो रजः।
स्रच्णपूर्णं समं कृत्वा पचेत् तेन चतुर्दले ॥
तत्तेपेन दृढ़ाः किया: कुटिलाः सरला श्रपि।
स्रावत् सुतप्ततां याति ततो लेपिमदं कुरु ॥ ६ ॥
भज्ञातमं कृष्णितलं कृष्टकारीफलं समम्।
पिष्टं तण्डुलतोयेन लेपोऽयं तं विनाश्येत्।
जवापुष्पेय तं हृन्यात् कृष्णगोमूत्रलेपनात्॥ ७ ॥

तिलस्य मूलं हि सगव्यचीरं समावरं गव्यष्टतेन लिप्तम्। सप्ताहमात्रेण शिरःप्रलेपात्
भवन्ति दीर्घाः प्रचुराश्च केशाः ॥ ८ ॥
शादना-तानमूलच्च मूलं पद्मसमुद्भवम् ।
श्रामदुग्धेन संपिष्टा लेपयेत् मुण्डितं शिरः ॥
तिदिनं भचयेत् तच केशवर्षनमृत्तमम् ॥ ८ ॥

श्रय केशस्य ग्रुक्तीकरणम्।

यजाचीरेण सप्ताइं भावयेदभयाफलम् ।
तैलेन सह तचूर्ण-लेपात् ग्रक्ता भवन्ति हि ॥ १ ॥
वजीचीरेण सप्ताइं तच्छेषं भावयेत् तिलान् ।
तत्तैललिप्ताः केग्राय ग्रक्ताः स्युनीत्र संग्रयः ॥ २ ॥
रोगामलकचूर्णन्तु वजीचीरेण सप्तधा ।
भावयेत् तस्य लेपेन ग्रक्ततां यान्ति सूर्वजाः ॥ ३ ॥

# श्रथ वाजीकरणम्।

बलेन नारी परितोषमिति न हीनवीर्थस्य कदापि मौस्यम्।
श्रती वलायें रितलम्पटस्य वाजीविधानं प्रथमं विदध्ये ॥ १ ॥
श्रिष्टिन्यां वटवन्दाकं चौरैः पिट्टा महावलः।
पृथ्योद्दृतं पिवेन्मूलं खेतार्कस्य प्रयत्नतः॥
सप्तरात्रन्तु गोचौरैईडीऽपि तक्षायते ॥ २ ॥

पूर्वभाद्रपदा-ऋचे विम्बीमूलं पिवेद् वुधः॥३॥
चूर्णं विदार्थाः खरसेन तस्या विभावितं भास्तरश्मिजालेः।
मध्वाज्यसंमिश्चितमेव लीद्वा दश स्त्रियो गच्छिति निर्विश्रङ्कः॥४॥
भूयो विभाव्यामलकस्य चूर्णं रसेन तस्यैव सिताज्यमिश्चम्।
सच्चीद्रमालेदि निशामुखे यो नूनं स इद्धस्तक्णलमिति॥५॥
कषप्रमाणं मधुकस्य चूर्णं चौद्राज्यसंमिश्चितमेव लोद्वा।
चौरान्नपानं रमते तु तावद् यावन्नराणामुद्रस्थमेतत्॥ ६॥

सितिपिकतक्वीजं तण्डुलाः षष्टिकानाम् ।
सवृतमधुसमितं प्रत्यन्नं योऽवलेढ़ि ॥
जठरकुद्दरमध्ये याति पाकं न यावत् ।
रमयित क्रग्रदेन्नोऽप्यङ्गनानां समूहम् ॥ ७ ॥
वृद्धशाल्मिलमूलस्य रसं श्र्वत्या पिवेत् ।
एतत्रयोगात् सप्ताहाज्जायते रेतसोऽस्वुधिः ॥ ८ ॥
लघुशाल्मिलमूलेन तालमूलीं सृचूर्णिताम् ।
सिपषा पयसा पीत्वा रती चटकवद्भवेत् ॥ ८ ॥
विदारीफलकन्दन्तु घृतेन पयसा नरः ।
उडुम्बरसमं खादेद् वृद्धोऽपि तक्षायते ॥ १० ॥
पिप्पली लवणोपेती वस्ताण्डी चीरमर्पषा ।
साधिती भच्चयेद् यस्तु स गच्छेत् प्रमदाश्रतम् ॥ ११ ॥
वस्ताम्बुसिडान् पयसि भावितानसक्तत् तिलान् ।
यः खादेत् स नरो गच्छेत् स्त्रीणां श्रतमपूर्ववत् ॥ १२ ॥

त्रीमन्मदनमीदकः।

तैलोक्यविजयापचं सवीजं ष्टतभर्जितम् ।
तिकटुतिफलाञ्चष्ठं भृष्टः सैन्यवधान्यकम् ॥ १३ ॥
ग्रिटोतालीग्रपत्रञ्च कट्फलं नागकेग्ररम् ।
ग्रजमोदां यमानीञ्च यष्टीमधुकमेव च ॥ १४ ॥
मेयीं जीरकपत्रञ्च ग्रष्टीत्वा समभागतः ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदीषधम् ॥ १५ ॥
समे श्रिलातले पिष्टा चूर्णयेदति चिक्कणम् ।
तावदेव सिता देया यावदायाति वन्यनम् ॥ १६ ॥
प्टतेन मधुना मिश्चं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ १० ॥

घृतभर्जिततिलचूर्थं मीदकीपरि विन्यसेत्।

तिसुगन्धिसमायुक्तं कर्पूरेणाधिवासितम्।
स्थापयेद् घृतभाण्डे तु श्रीमन्मदनमोदकम्॥ १८॥
भच्येत् प्रातक्ष्याय वातस्रेषामयापचम्।
प्रष्टडमग्निं कुक्ते मन्दमग्निञ्च दीपयेत्॥ १८॥
क्षशानामतिक्चाणां स्नेडनं स्थीत्यकारणम्।
कासम्नं सवेश्र्लम्नं श्रामवातिनवारणम्॥ २०॥
सर्वरोगहरं द्येतत् संग्रहग्रहणीहरम्।
एतस्य सतताभ्यासात् हडोऽपि तक्णायते॥ २१॥
बद्धाणः स्वसुखात् श्रुत्वा वासुदेवे जगत्यतौ।
एतत् कामस्य हडार्थं नारदेन प्रकाशितम्।
येन लच्चं भ्रुवं स्त्रीणां रिमे स यदुनन्दनः॥ २२॥

#### श्रय गाढ़ीकरणम्।

प्रीढ़ाङ्गनाया नवस्तिकायाः श्वयं वराङ्गं न सुखाय नृणाम्।
तस्मानरैभेषजतो विधेया गाढ़ीक्रिया मन्मथमन्दिरस्य ॥ २३ ॥
निशादयं पङ्गजकेश्वरञ्च निष्पिष्य देवद्रमतुष्यभागम्।
श्वनेन लिप्तं मदनातपत्रं प्रयाति सङ्गोचमलं युवत्याः ॥ २४ ॥
सधातकीपुष्पफलिक्रिकोण-जम्बूत्वचा साररसं घृतेन।
लिप्ता वराङ्गं मधुकेन तुष्यं व्रष्ठाऽपि कन्येव भवेत्पुरन्यो ॥ २५ ॥
पिकाचवीजेन मनोजगेचं विलिप्य योषा नियमञ्चरन्ती।
इठेन गाढ़ं लभते तदङ्गं क्षष्टो नरैरेष इठेन योगः ॥ २६ ॥
दाङ्गित्रवपत्रञ्च चरीतकीञ्च प्रचाष्य पिष्टाऽय तथा विलिम्पेत्।
वस्त्रेण नीरं परितोष्य सम्यक् तदा नवं स्यात् मदनातपत्रम्॥२७
मृणालपङ्गं पयसा सुपिष्टा दृढ़ा समङ्गा गुटिका विधेया।
यस्या वराङ्गे निह्निता चणेन कन्येव सद्यः सम्हणालयोगः ॥२८॥

मदनकघनसारै: चौद्रतुः वराङ्गम् प्रिथिलमपि च यस्याः पूरितं भूय एव। भवति कठिनमुचैः कर्कग्रं कामिनीनाम् द्रिति निगदित योगं रन्तिदेवो नरिन्द्रः॥ २८॥ ग्रम्बगन्धैर्त्तिपेक्षिङ्गं गाढ़ोकरणमुत्तमम्॥ ३०॥ ग्रम्ब स्त्रीद्रावणम्॥

यद्यप्यष्टगुणाधिको निगदितः कामोऽङ्गनानां सदा नो याति द्रवतां तथापि भिटिति स्त्री योज्जिता सङ्गमे । तस्माङ्गेषजसम्प्रयोगिविधिना संचेपतो द्रावणम् किञ्चित्पञ्चवयामि नीविजस्थां प्रद्रावणं कामिनोः ॥ ३१ ॥ सिन्दूरिचञ्चाफलमाचिकाणि तुल्यानि यस्या मदनातपत्रे । प्रलिप्य तस्यास्तु सङ्प्रसङ्गात् प्रागेव वीर्य्यञ्चतिमातनोति ॥३२॥ सय्योषजचौद्रसमन्वितन्तु लिप्तं यदि स्थात् स्मरगेङ्यन्त्रे । दुता भवेत् सा इउमेव नारो दृष्टः सदाऽयं किल योगराजः ॥३३॥ सुपक्षचिञ्चाफलघोषमूली गुडं तथा माचिकतुल्यभागम् । त्रमीभिरालिप्य पुनः सलिङ्गंवीजं करोत्याग्र नितस्विनीनाम् ॥३४॥ सटङ्गनचौद्रमङ्गेयवीजैः कपूरतुल्यैक्पलिप्य लिङ्गम् । ग्रतं नरो याति विलासिनीनां रेतः प्रपातं कुक्ते इठेन ॥ ३५॥

गोष्ठवार्त्ताक्यपामार्ग-रसेन लिङ्गलेपनात्।
तत्चणात् द्रवते नारी पद्मपचे यथा पयः॥ ३६॥
पिप्पली चन्दनच्चैव बहती पक्तितिन्तड़ी।
एतैर्लिङ्गप्रलेपेन द्रवेन्नारी न संग्रयः॥ ३०॥
जलेन लाङ्गलीमूलं पिष्टा हस्तं प्रलेपयेत्।
हस्तेन स्त्रीकरे स्षृष्टे द्रवत्यग्नी घृतं यथा॥ ३८॥
सर्वेषां द्रवयोगानां मन्त्रराजः शिवोदितः।
ग्रष्टोत्तरभतं जष्ठा तत्र योगस्य सिडये॥

प्रव मनः।—"ग्रीं नमो भगवते कृद्राय उडडामरेख्नराय द्रावय

द्रावय स्त्रीणां मदं द्रावय द्रावय स्त्राहा"॥ ३८॥

अथ लिङ्गस्थूलीकरणं हदीकरणच।

मकुष्ठमातङ्ग्बलायुतानां वचाऽखगन्धागजिपपालीनाम् । तुरङ्गग्रत्नोनवनीतयोगात् सेपेन लिङ्गं मुषलत्वमिति ॥ १ ॥

लेपं दिने दिने ह्येवं सुधीः कुर्य्यात् प्रयत्नतः । तदा लेपे क्वते लिङ्गं स्यूली भवति निश्चितम् ॥ २ ॥ सलोधकाशीशतुरङ्गगन्था-मातङ्गगन्थापरिपाटितेन ।

सलाध्रकाशाशतुरङ्गन्धान्मातङ्गन्धापारपाठतन । तैलीन वृद्धिं खलु याति लिङ्गं वराङ्गनालोकमनोहरञ्च ॥ ३॥

टङ्गनच महाराष्ट्री जम्बूगूकरतैलकम्।

सधुना सह लेपेन लिङ्गं स्थान्यवलोपसम्॥ ४॥

सिह्योनवनीतच सुषलीचूर्णसित्रितम्।

धान्यरागिस्थितं भाण्डे सप्ताहाच समुद्धरेत्॥ ५॥

तेन प्रलेपयेलिङ्गं यामैकादर्दते ध्रुवम्।

सुषलो सितला भच्या लिङ्गद्विद्धिकरो सता॥ ६॥

सांस्त्राचफलं कुष्ठं श्रुखगन्धा ग्रतावरी।

तैलपकप्रलेपेन लिङ्गस्थौत्यकरं ध्रुवम्॥ ०॥

रोह्तिस्य तु मत्यस्य पित्तान्धुलाङ्गुणैः सह।

श्रुनेन वर्द्धयेलिङ्गं वर्द्दते सुषलोपसम्॥ ८॥

क्रुणाऽपराजितासूलं पुष्ये खिरकौलकैः।

क्रुणाऽपराजितासूलं पुष्ये खिरकौलकैः।

क्रुणास्त्रैः किं बद्धा जर्द्धलिङ्गं करोति सः॥ ८॥

देवदालीरसं धात्री चीरपानात् स्थिरो भवेत्॥ १०॥

द्विवं सर्वयोगानां सन्त्रराजः ग्रिवोदितः।

श्रुनेन सन्त्रितं क्रात्वा सामैकं लेपयेत ततः॥

चव मनः । — "श्रीं नमो भगवते उड्डामरेखराय सव सव प्रसव प्रसव कुरु कुरु स्वाहा"। इड़ीकरणच विनाऽपि मन्तेण कार्यम् ॥ ११ ॥

श्रय सनवर्डनं सनीत्यानच।

मातङ्गक्ष णामय-वाजिगन्धा वचायुताः पर्य्युषितास्बुमित्राः।

ह्यारिपत्नीनवनीतयोगाः कुर्वन्ति पीनं कुचकुम्भयुग्मम् ॥१॥ तैलं वचादाड्मिकस्कसिद्धं सिद्धार्थजं लेपनतो नितान्तम् । नारीकुचौ चारुतरौ च पीनौ कुर्य्यादसौ योगवरः प्रदिष्टः ॥२॥ श्रीपर्णिकाया रसकस्कसिद्धं तिलोइवं तैलवरं प्रदिष्टम् । नुलेन वज्जोजयुगे प्रदेयं प्रयाति हृद्धं प्रतितोऽपि नार्याः ॥ ३॥

प्रथमकुसुमकाले नस्ययोगेन पीतम्
सिनयम्मयवा स्यात् तण्डुजाम्भो \* युवत्या।
कुचयुगलसुपीनं कापि नो याति पातम्
किथित इति पुरैकः चक्रदत्तेन योगः॥ ४॥
ग्रण्ठीचूर्णं दशपलं तोयैयतुर्गुणैः पचेत्।
ग्रर्डं शेषं हरेत् कायं कायार्डं तिलतैलकम्॥ ५॥
तैलशेषं पचेत् तेन नस्यं पानञ्च कारयेत्।
पतितं यौवनं स्तीणां मासादुत्तिष्ठते स्वयम्॥ ६॥

अथ खामादितैलम्।

ग्यामा निशा बला लाजा लवणं काययेत् समम्।
तोये चतुर्गुणे पाच्यं पादशेषं समाहरेत्॥
तिलतेलं कायपादं तैलाईं माहिषं घतम्।
सेहशेषं पचेत्तैलं नस्येन मासमात्रकैः।
बालास्तीव्रहनारीणां यौवनं करते दतम्॥ ७॥

बालास्त्रीहडनारीणां यीवनं कुर्तते द्रुतम् ॥ ७ ॥ इतेलं ग्रकुलस्य तेलं तथाऽऽमविष्लस्य रसं ग्रहीत्वा । ईयेटूईगहस्तकेन तदा स्तनो स्थात् पतितो न चैव ॥ ८ ॥

त्रय योनिसंस्तार:।

ालयेत्रिम्बकषायनीरैः शिलाज्यक्तणागुरुगुजूनाम् । ।न योनिं निशि भूपियत्वा नारीप्रमोदं विद्धाति भर्त्तुः ॥१॥

शालितण्डुलीदककर्षमातं वामदिचिणनासापुटाभ्यां पेयम् ।

प्रचाल्य निम्बस्य जलेन भूयस्तस्यैव कल्केन विलेपयेच । त्यजेद् युवत्यास्विरकालभूतं गन्धं वराष्ट्रस्य न संग्रयोऽत्र ॥ २ ॥ श्रय लीमपातनम् ।

पलाग्रमसान्विततालचूणैं: रमाम्बुमियै: परिलिप्य भूय:।
कन्दपैगे हे सगलोचनानां रोमाणि रोहन्ति कदापि नैव॥१॥
एकः प्रदेयो हरितालमागः पञ्च प्रदेया जलजस्य भागाः।
ब्रह्मतरोभेस्म स एव पञ्च गोक्ताय भागाः कदलीजलाद्रीः॥
समित्य सप्ताहकभावितानां कत्वा स्मरागारविलेपनञ्च।
रोमाणि सर्वाणि विलासिनीनां पुनर्न रोहन्ति कदाचिदेव॥२॥
रभाजलैः सप्तदिनं विभाव्य भस्मानि कम्बोर्मस्णानि पथात्।
तालीन युक्तानि विलेपनानि लोमानि निर्मूलयितं चमाणि॥३॥

तालकं ग्रह्मचूर्णेच मिख्यष्ठाभसा किंग्रजम्।
समभागं प्रलेपेन रोमखण्डनमुत्तमम्॥ ४॥
तालकं ग्रह्मचूर्णेन्तु पिष्टा च चारतोयकैः।
तेन लिप्ताः कचा घमें स्थिते गच्छन्ति तत्चणात्॥ ५॥
पूगवृच्य पत्रोत्थद्रवैः पिष्टाऽथ गन्धकम्।
तेन लिप्ता स्थिते धर्मे रोमखण्डनमुत्तमम्॥ ६॥
नराणां खण्डकेग्रानां कुच्छृन्दर्थांच तैलतः।
न निर्यान्ति पुनर्लेपात् तिसप्ताहे कते सित॥ ७॥
कुसुभातेलतो लिप्ता सप्तवारं तथा पुनः।
सद्योजातस्य महिषी वलस्य मलमाहरेत्॥
तिक्तप्तान् वेष्टयेद्रात्री किग्रान् वा तान् व्युपद्रवः।
प्रातस्त्रप्तोदकैः चाल्य पतन्त्यामूलमुस्यिताः॥ ८॥
पिपोलिकानां क्रण्णानां स्यूलानां भूग्यहं हरेत्।
क्रायाग्रष्टकच तच्चूर्णं सप्ताहं लेपयेत् सदा॥
लेपात् पतन्ति रोमाणि पक्तपत्रमिव दुमात्॥ ८॥

ग्रङ्कं तालं यवं गुञ्जां काञ्जिकैः पेषयेत् मदा।
लेपात् पतन्ति लोमानि पक्षपत्रमिव द्रमात्॥
लेपनात् इन्ति केशांच कटुतैलैर्मनःशिला॥ १०॥
प्रव पण्डीकरणं तत्राम्यच।

नरो मृतयते यत्र क्षणान्तु तत्र हिस्वमम्। निखन्याज्ञायते पण्ड उड्ते च पुन: सुखी ॥ १ ॥ यजामूत्रेण सम्भाव्य निशि षड्विन्दुच्णितम्। खाद्ये पाने प्रयोगिण षण्डलमाप्र्यात्ररः॥ २॥ तिलगोचुरयोश्र्णं छागदुग्धेन भावितम्। गीतलं मधुना युक्तं पिवेत् षण्डल गान्तये॥ ३॥ जनीकादम्धचूर्णन्तु नवनीतेन भचितम्। यावज्जीवं न सन्देहः पण्डलं प्राप्न्यात्ररः। धुस्त्रपुष्पभच्चेण पुनः सम्पद्यते सुखम्॥ ४॥ या गोविषाणं पतितं विघृष्य लिम्पेट्रती तस्य मनीभवास्त्रम्। रकान्तकं तत्कुरुतिऽन्यपत्नगं नोत्तिष्ठते तामपहाय तस्याम् ॥ ५॥ यत्युत्रतं चापरगोविषाणं घृष्टा पुनस्तेन विलिष्य लिङ्गम्। ययाति भूयः प्रक्ततं तदङ्गं दृष्टी नरैरेष सदा प्रयोगः ॥ ६ ॥ निशा विचूर्णं घनसारयुक्तं समीक्ततं बस्तपयोवियुक्तम्। भक्तं निपीतं कुरुते निकामं नरस्य षग्डत्विमिति प्रसिद्धम् ॥०॥ तिलस्य दण्डाविटपस्य चूर्णे प्रसाधितं बस्तपयोऽर्डमाषम्।

उयावकं ग्रर्करयान्वितञ्च पोत्वा हरेत् घराडकतामवाप्ताम् ॥ ८॥
त्रथ दुष्टस्त्रीकतलिङ्गपातीत्यानम्।

भूमिचम्पकमूलचः सगुवाकं इसमं तथा। तद्भचणाद्भवेत् सद्यो लिङ्गोत्यानं न संशयः॥१॥ रक्तगाळालिमूलन्तु शिवं दुर्गां विनायकम्। सम्पूच्य विविधेद्रेव्यैर्निमन्त्रा निश्चिसंयतः॥ प्रातस्वचं हरेत् सम्यक् ग्रष्कं कुर्याच चूर्णकम्। प्रतेन पेषितं कत्वा सैन्धवेन सदा ग्रचिः॥ प्रातभुका च किञ्चित्तु भोक्तव्यं प्रहराविध। प्रतितस्य भवेक्किङ्गस्थीत्यानं नात्र संग्रयः॥ श्रयोमयं भवेलिङ्गं कोद्रवात्रं विवर्जयेत्॥ २॥

षय भगवस्यनं तस्य मीचनश्च।

पूर्वीत्यं लाङ्गलीभूलं वामपादस्य पांग्रकम्।
एकत्र कारयेषीमान् दाह्येत् ग्रुक्तिसम्पृटे ॥
लेपनाद्मगबन्धः स्यात् तक्रैः प्रचाल्य मुच्यते ॥ १ ॥
स्मशानचेलमादाय वामपादस्य पांग्रकम्।
साध्याया बन्धयेत् तेन पोटली भगबन्धनी ॥ २ ॥
मल्लु।—"श्रीं श्रमुकीभगं बन्धयामि विस्सुरय विस्
रन्धशोणितं मया क्षतं भगबन्धनं नास्ते लोकचिकिसकः।

यदि वा यान्ति मन्तेण ये चान्ये भगमर्दकाः।
सर्वे वै विमुखा यान्ति वर्ज्यते कामुकैस्तदा।
श्री चिटि चिटि खचिटि खचिटि ठः ठः"। प्रयोगव्यस्थायं मन्तः॥३॥
एलाफलं वासरगोपचूर्णं गुप्तं चिपेद् योषिदुपस्यमार्गे।
तस्यैव लिङ्गस्य वरः प्रवेगः स्यात् तव नान्यस्य कदाचिदेव॥४॥
गव्येन दभ्ना मिथतं विधाय प्रचालयेत् तेन तदङ्गमुचैः।
भवेदराङ्गं प्रक्ततं युवत्या दत्याह कर्त्ता हरमेखलायाः॥ ५॥

वचैलाचन्दनचीरैः प्रचाल्य मर्दयेद्गगम्। यन्त्रमन्त्रादितन्त्रे यद् यत्तिश्वच्छतुणा क्ततम्। तत् तस्यैव भवेत्रित्यं सिक्षिमन्त्रः स उच्यते॥ ६॥ सप्ताभिमन्त्रितं तोयं ग्रुडं पूतं पिवेत्तु यः। तस्य ग्रुक्ततो दोषः ग्रुवेश्मनि यास्यति॥ ७॥ प्राकाग्रदेशे पिततं ग्रहीत्वा योषित्रखं दन्तमलं सिपिष्टा।
लिष्ठा ध्वजं तेन रमित् ततो यां तस्या विनागः पुरुषान्तरेण ॥८॥
निर्वान्ततीहस्य जलेन भूयः प्रचालनं कामग्रहस्य कुर्यात्।
पुनः समासादयति प्रक्षष्टं नारी तदङ्गं खलु पूर्वरूपम्॥ ८॥
मुहुर्मुहुर्या मिथितेन नारी प्रचालयेत् सप्त दिनानि तेन।
नार्यास्तदङ्गं पुनरेव भूयात् पूर्वाऽनुरूपं न हि संग्रयोऽत्र ॥१०॥

, अय ग्रहकी द्वारक निवास्यम्।

वधू टुग्टीयमूलन्तु तस्या इस्तेन वस्यनात्। ग्टहकोद्वारकं न स्याट् यावडस्ते तु बस्यनम्॥१॥

अध नष्टपुषायाः पुष्यकरणम्।

ज्योतिषाती कोमलपत्रमग्नी सप्टं जवायाः कुसुमञ्च पिष्टम्।
ग्रहाम्बुना पीतिमदं युवत्याः करोति पुष्पं स्मरमन्दिरस्य॥१॥
दूर्वादलं तग्डुलतुल्यभागं निष्पिष्य पिष्टं परिपाचितञ्च।
तद्वचित्वा वनिता प्रनष्टं पुष्पं लमेत स्ववलानुरूपम्॥२॥

लाङ्गलोसूलचूणं वाऽपासार्गस्यापि सूलकम्।
दन्द्रवाक्णिकासूलं योनिस्यं पुष्पशोधनम्॥ ३॥
पारावतपुरोषञ्च मधुना संपिवेत् ततः।
रजस्वला भवेनारो सूलदेवेन भाषितम्॥ ४॥
तिलसूलकषायन्तु ब्रह्मदण्डीय सूलकम्।
यष्टितिकदुकोन्मित्रं काययुक्तञ्च पाययेत्।
पुष्परोधे रक्तगुल्मे स्त्रोणां सद्यः प्रशस्यते॥ ५॥
कायं गुड़त्रापण्जं तिलभागी क्रतं पिवेत्।
कायं रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पे च योजयेत्॥ ६॥

चय गर्भपातनम्।

क्कते जारे चिपेद् योनी तिलतैलञ्च सैन्धवम्। द्रवते तत्चणादेव गुष्कपुष्यं स्रवत्यपि॥१॥ अय आमगर्भपातनम्।

काण्डमरण्डपत्रस्य योनावष्टाङ्गुलं चिपेत्। चतुर्मासभवो गर्भस्तत्चणात् स्रवते खलु ॥ १ ॥ देवदालीयमूलन्तु कार्षिकं तोयपिषितम्। पिवेद् गर्भवतो नारो गर्मं स्रवति तत्चणात्॥ २ ॥ निर्गुण्डोद्रवसंमित्रं चित्रमूलं मधुस्तम्। कर्षं भुक्का पतत्याग्र गर्भोरण्डाकुलोइवः॥ ३ ॥

श्रव श्रतिरजी निवारणम्।

धातीच्च पष्याच्च रसाच्चनच्च क्वत्वा विचूर्णं सजलं निपीतम्। ग्रत्यन्तरक्तोत्यितसृग्रवेगं निवारयेत् सेतुरिवाम्बुपूरम्॥१॥ श्रेलुत्वचासित्रिततण्ड्लेन विधाय पिष्टं विनियोजनीयम्। कन्दर्पगेन्ते स्गलोचनाया रक्तं निच्चत्याग्र इठेन योगः॥२॥

मूलन्तु ग्ररपुङ्घायाः पेषयेत् तग्ड्लोदकैः।
पाययेत् कर्षमात्रं तदितरक्तप्रशान्तये॥ ३॥
ग्रपामार्गस्य मूलन्तु दृढपूर्गन भच्चयेत्।
रक्तस्रावं निइन्त्याग्र सुखोभवित सुन्दरी॥ ४॥
कुग्रस्य मूलं कदलीफलं वा वलाग्रिफा वा वदरी फलं वा।
गुडुचिका तग्ड्लवारिपीता स्त्रीणामनेकं क्षिरं जयेच॥ ५॥

कुरण्टकस्य मूलानि मधुकं खेतचन्दनम्।
पिष्टा वै सममावन्तु पाययेत् तण्डुलाम्बुना।
सक्तत् पीत्वा माषयूषं प्रदरात् परिमुच्यते \* ॥ ६ ॥
चन्दनं के चीरसंयुक्तं सप्टतं पाययेद्भिषक्।
प्रकरामधुसंयुक्तमस्रक्सविनाग्रनम्॥ ७ ॥
दावी रसाञ्चनव्रषाव्दिकरातिवित्त्वभन्नातकरेष कतो मधुना कषाय:।

पोतो जयत्यतिवलं प्रदरं सशूलम पीतं सितार्णविलोहितनीलक्षणम्॥ ८॥ अशोकस्य त्वचा सिद्धं चीरं रक्तहरं पिवेत्॥ ८॥ पेटारिकायाः पत्रञ्च माषचूर्णन संयुतम्। रभादनैवेंष्टियत्वा दाह्येच प्रयत्नतः। तस्य भचणमावेण चितरक्तनिवारणम्॥१०॥ तन्मूलं तण्डुलै: पिष्टा पिष्टकं भैजीयेद् बुधः। तस्य भच्णमाचेण रक्तं विप्रकृतं हरित ॥ ११ ॥ तस्य वल्कलचूर्णन्तु भ्रष्टतर्ष्डुलच्राकम्। भच्चणादेव हृद्रतां स्त्रीणां श्रमयति ध्रुवम् ॥ १२ ॥ शतावर्थास्त मूलस्य समाहृत्य निजद्रवम् । चलारिंग्रत्मलान्येव वस्त्रपृतं समाहरित ॥ द्रवतुत्वं गवां चीरं चीरस्य दिगुणं घतम्। धातकी चीरकाकोली जीवन्ती ग्रेलोमिक्का॥ मुद्गपर्णी माषपणी महामेदा शतावरी। द्राचा परुषको यष्टी जीरकं प्रतिकार्षिकम्॥ पलाईं मधुकं पुष्पं सर्वमेकत पाचयेत्। ष्टतशेषं समुत्तार्थ शीतीभूते च निचिपेत्॥ चौद्रं पलाष्टकं नेयं ग्रग्ठीचूर्णं पलाष्टकम्। ग्रतावरोष्टतं द्येतिसता द्यपनान्वितम्॥ लेचां कर्षं शमेदाशु दु:साध्यमतिरक्तजम्। कमलां वातरोगांय अश्मरोच्च शिरोग्रहम्।। १३॥

अथ बन्याया गर्भधारणन्।

जन्मबस्या काकबस्या मृतवसा कचित् स्त्रियः। तासां पुत्रोदयार्थञ्च सम्भुना स्चितं पुरा ॥ १ ॥ षादौ जनावस्थाचिकिता।

समूलपत्नां सर्पाचीं रिववारे समुद्दर्ग्।
एकवर्णागवीचीरै: कन्याहस्तेन पेषयेत्॥
ऋतुकाले पिबेद्दस्या पलाई तिह्ने दिने।
चीरशाल्यत्रमुद्रञ्च लघ्वाहारं प्रदापयेत्॥
एवं सप्तिदनं कत्वा बस्या भवति पुचिणी।
उद्देगं भयशोकञ्च व्यायामञ्च विवर्जयेत्॥
श्रमङ्गं भयशोकञ्च दिवानिद्रां विवर्जयेत्।
न कर्मा कारयेत् किञ्चिद्दर्जयेच्छीतमातपम्॥
न तया परमां सेवां कारयेत् पूर्ववत् क्रियाम्।
पतिसङ्गाद्रभेलाभो नात्र कार्य्या विचारणा॥२॥
एकमेव तु क्ट्राच्चं सर्पाची-कर्षमातकम्।
पूर्ववच्च गवां चीरे ऋतुकाले प्रदापयेत्।
सहागणेश्र मन्त्रेण रच्चां तस्याञ्च कारयेत्॥

मन्त्रमु—"श्री ददक्महागणपते रच्चास्तं मस्तृतं देहि" ॥३॥
पत्रमेकां पत्ताशस्य गर्भिणी पयसाऽन्वितम् ।
पीत्वा तु लभते पुत्रं रूपवन्तं न संग्रयः ॥ ४ ॥
पथ्यमुक्तं यथा पूर्वं तहत् सप्तदिनाविध ।
देवदालीयमूलन्तु ग्राह्मयेत् पुष्यभास्त्ररे ॥
निष्कत्ययं पिवेत् चीरैः पूर्ववत् क्रमयोगतः ।
बन्ध्याऽपि लभते पुत्रं देयं पथ्यं यथा पुरा ॥ ५ ॥
ग्रोततोयेन सम्पष्टं ग्ररपुङ्घीयमूलकम् ।
कर्षं पीत्वा लभेद्रभें पूर्ववत् क्रमयोगतः ॥ ६ ॥
मुस्ताप्रयङ्गसोवीरं लाचाचीद्रं समं पिवेत् ।
कर्षं तर्जुलतोयेन बन्ध्या भवति पुत्रिणो ॥
पथ्यमुक्तं यथापूर्वं तहत् सप्तदिनं पिवेत् ॥ ७ ॥

समूलां सहदेवीच संग्राह्यं पुष्यभास्तरे।

हाया ग्रष्ट्रच्च तत् चूर्णं एकवर्णगवां पयः॥

पूर्ववत् पिवते नारी वस्या भवति पुत्त्रिणी॥ ८॥

पूर्ववत् पिवते नारी वस्या भवति पुत्त्रिणी॥ ८॥

पूर्वं ग्रिफां वा किल लच्चणाया ऋती निपीय त्रिदिनं पयोभिः।

हीरानुचर्यां नियमेन भुङ्क्ते पुत्तं प्रस्ते वनिता न चित्रम्॥ ८॥

पिप्पलीकेशरण्डक्ष्वेरं चुद्रोषणं गव्यष्टतेन पीतम्।

स्व्यापि पुत्रं लभते इठेन योगोत्तमोऽयं मुनिभिः प्रदिष्टः॥१०॥

पुरक्षगन्धावृतवारिसिद्धं साज्यं पयः स्नानदिने च पीत्वा।

प्राप्नीति गर्भं विषयं चरन्ती वस्याऽपि पुत्रं पुरुषप्रसङ्गात् ॥११॥

प्राप्नीत्रागीज्ञृतलच्चणाया मूलं तथा वज्जतरोश्व पिष्टा।

प्रयोक्षवर्णापयमा निपीतं स्त्रियः स्मृतं पुत्रवत्तरं मुनीन्द्रैः॥१२॥

प्रयोक्षवर्णापयमा निपीतं स्त्रियः स्मृतं पुत्रवत्तरं मुनीन्द्रैः॥१२॥

प्रयोक्षवर्णापयमा निपीतं स्त्रियः स्मृतं पुत्रवत्तरं मुनीन्द्रैः॥१२॥

ह्योद्दृतं लाच्चपमेव चूर्णं पुंसा निपिष्टं सघृतं निपीय।

क्वाणाऽपराजितामूलं बस्तचीरेण संपिवेत्।
ऋतुस्नाता विधा या तु बस्या गर्भधरा भवेत्॥ १४॥
नागकेश्वरकं चूणं नृतनं गव्यदुग्धतः।
पिवेत् सप्तदिनं दुग्धं ष्टतैभीजनमाचरेत्॥
तहती लभते गर्भं सा नारी पितसङ्गतः॥ १५॥
पुचजीवस्य पत्रैकं पिवेत् चीरैः ऋती तु या।
पितसङ्गा च सा नारी सत्यं पुचवती भवेत्॥
तस्य मूलं चैकवर्णाचीरैः पीत्वा च पुचिणी॥ १६॥
काकोत्यो लच्चणामूलं तथा षष्टिकतण्डुलम्।
नार्योकवर्णापयसा पीत्वा गर्भवती ऋती॥ १०॥
श्रिष्टिचस्य वन्दाकं ग्राइयेद् वुधः।
गोचीरैः पानमावेण वन्ध्या पुचवतो भवेत्॥ १८॥

घतलु शयनसमये पेयम् ।

तिलरमञ्जडवैकं गोकरीषाग्नियोगात् तर्णहषभमूचं प्रस्ययुक्तं विपक्तम्। ऋतुषु दिवसमध्ये सप्तवारैश्व पीतम् जनयति सुतमेतिन्निश्चतं पुष्पितेव ॥ १८ ॥ कदम्बपतं खेतञ्च व्रह्तीमूलमेव च। एतानि समभागानि अजाचीरेण पेषयेत्॥ विरावं पञ्चरावं वा पिवेदेतना ही षधम्। असिनिपीयमाभे तु गर्भो भवति निश्चितम्॥ २०॥ गोच्चरस्य तु वीजन्तु पिबेन्निर्गुख्डिकारसैः। विरावं सप्तरावं वा बन्ध्या भवति पुचिणी ॥ २१ ॥ कर्कोटवीजचूर्णन्तु एकवर्णागवां पयः। ऋतौ निपीयमाने तु बस्था भवति पुन्निणी ॥ २२ ॥ भगाख्ये चैव नच्त्रे वटहच्च स्मूलकम्। इस्ते बड्डा लभेत् पुत्रं सुन्दरं कुलवर्डनम् ॥ २३ ॥ श्राखत्यस्य तु वन्दाकं पूर्वेद्युः सुनिमन्त्रितम्। ऋतुस्नाने तु पीतं स्यादिप बन्ध्या लभेत् सुतम्॥ २४॥ एकवर्णासवलाया गीः चीरेण सुपेषितम्। भावितं वटवन्दाकं पीतं बन्ध्या सुतं लभेत्॥ २५॥

चय काकवन्धालचणम्।

पूर्वं पुत्तृवती भूत्वा पश्चान्नो स्र्यते यदि ।

काकवस्या च सा ज्ञेया चिकित्सास्याय कष्यते ॥ १ ॥

तिविक्तिया। विष्णुक्रान्तां समूलान्तु पिष्टा दुग्धेस्तु माहिषै: ।

महिषीनवनीतेन ऋतुकाले च भच्चयेत् ॥

एवं सप्तदिनं कुर्य्यात् पष्यमुक्तञ्च पूर्ववत् ।

गर्भं सा लभते नारी काकवस्या सुशोभनम् ॥ २ ॥

श्रद्धगस्थीयमूलन्तु ग्राह्येत् पुष्यभास्करे ।

योजयेक्महिषोचीरैः पलार्डं भच्येत् सदा।
सप्ताचान्नभते गर्भं काकबस्या न संग्रयः॥ ३॥
षय सतवसालचणम्।

गर्भसञ्चातमात्रेण पचानासाच वसरात्। स्वियते दिविवर्षाद्वा यस्याः सा सृतविसका ॥ तत प्रयोगः कर्त्तव्यो यया शङ्करभाषितम् ॥ १ ॥ विकिसा। मार्गशीर्घे तथा ज्येष्ठे पूर्णायां लिप्त मन्दिरे। नूतनं कलसं पूर्णं गन्धतीयेन कारयेत्॥ शाखाफलसमायुतां नवरत्समन्वितम्। सुवर्णस्विकाय्तं षट्कोणमण्डले स्थितम ॥ तनाध्ये पूजयेदेवीमेकान्तीं मनसा स्थितः। गन्धपुष्पाऽचतेईपि धूपेनेवियसंयुतैः॥ श्रचयेद्गतिभावेन मत्यमांसै: समदाकै:। ब्राह्मी माहेखरी चैव कीमारी वैयावी तथा॥ वारा ही च तथा चैन्द्री षट्पत्रेषु च मातरः। पूजयेनान्ववोजेन श्रींकारेण विधिश्वतै:॥ दिधभन्नीय पिण्डानि सप्त संख्यानि कारयेत। षट्संख्याः षट्सु पत्रेषु मात्रभ्यः कल्पयेत् पृथक् ॥ विल्वामं सप्तमं पिण्डं ग्रुचिस्याने विहः चिपेत । तैर्भृतो ग्टहमागच्छेचन्नाङ्गं यावदाचरेत्॥ कन्यकां योगिनीं वालां भोजयेत् सक्तटुम्बकै:। दिचिणां दापयेत् तासां देवतायेण चान्यया ॥ विसर्ज्य देवताञ्चाय नद्यां तत्फल्मोदकम्। सकुलं वोचयेडीमान् श्रुभेन श्रुभमादिशेत्॥ विपरीते पुनः कार्यः योगान्तर सुसिंडिट्म्। प्रतिवर्षमिदं कार्यं दीर्घजीविसतं लभेत ॥

"श्रों क्लीं फों एकान्तीदेवताये नमः"। भनेन मलेख पूजा जपर कार्यः॥ २॥

प्राद्मुखी क्रित्तका ऋचे बस्थाकर्कोटकीं हरेत्। तत्कन्दं पेषयेत् तोयैः कर्षमात्रं सदा पिवेत्॥ ऋतुकाले तु सप्ताहं दीर्घजीविस्ततं लभेत्॥ ३॥ या वीजपूरदुममूलमेकं चीरेण सिद्धं हविषा विमित्रम्। ऋतौ निपीय स्वपतिं पूर्याति दीर्घायुषं सा तनयं प्रसूते॥ ४॥

द्रुममूलघृतम्।

मिञ्जिष्ठा मधुकं द्राचा विफला गर्करा बला। मेदा पयस्या \* काकोली मृलचैवाखगन्धजम्॥ त्रजमीदा इरिद्रे दे हिङ्ग्नी कट्रोहिणी। उत्पनं 🕆 कुमुदं कुष्ठं काकोत्त्यी चन्दनद्वयम् ॥ एतेषां कार्षिकैभीगैर्घृतप्रस्यं विपाचयेत्। शतावरीरसं चौरं घताइयं चतुर्ग्णम्॥ सर्पिरेतन्नरः पीत्वा नित्यं स्त्रीषु वृषायते। पुत्तान् जनयते नारी मेधाब्यान् प्रियदर्भनान् ॥ याचैवास्थिरगर्भा स्थाद् या नारी जनयेनातम्। ऋल्पायुषं वा जनयेत् या च कन्यां प्रसूयते॥ योनिदोषे रजोदोषे गर्भसावे च शस्यते। प्रजावर्षनमायुष्यं सर्वयहनिवारणम्॥ नामा द्रुमघृतं द्येतदिष्वभ्यां परिकीर्त्तितम्। तद्युत्तं लच्चणामूलं चिपन्यव चिकित्सकाः॥ जीवद्वसैकवर्णाया घृतमत तु दीयते। श्रारखगोमयेनैव विज्ञञ्जाला प्रदीयते॥ ४॥

<sup>\*</sup> पयस्या—चौरयुक्तभूमिकुषाखः:।

<sup>+</sup> उत्पलं नीलिमिति।

त्रकस्मात् प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना। गोचीरै: पाययेत तुल्यं पद्मकेशरचन्दनम्॥ पलमानं पिवेनारी त्राहं गर्भः स्थिरी भवेत्॥१॥ श्रयवा मध्यं दार शरहच्य वीजकम।

संपिष्य चीरकाकोलीं पिवेत चीरैस्त गोभवैः॥ २॥

रये मासि । नीलोत्पलं सृणालञ्च यष्टिः कर्कटमुङ्किता । गोचीरैस्त दितीये च पीला भाम्यति वेदना ॥ ३॥ श्रवत्यवल्कलञ्चाय तिलं क्षणां गतावरी। मिज्जिष्ठासिहतं पिट्टा पिवेत् चीरैयतुर्गुणैः॥ ४॥

श्ये मासि। **स्रीखण्डच वचा कुष्ठं मृणालं पद्मकेशरम्।** पिवेत् शीतोदकं पिष्टं खतीये वेदनावती ॥ अथवा चीरकाकोलीं बलां पिट्टा पय: पिवेत्॥ ५॥

अवं मासि । नीलोत्पलं मृणालानि गोचरञ्च कशिक्तम । तुर्थमासे गवां चीरै: पिवेत् सा वेदनापरा ॥ ६ ॥ श्रयवा मधुकं रास्नां ग्यामां ब्राह्मणयष्टिकाम। अनन्तां पेषियवा च गव्यचीरेण सिम्पवेत ॥ ७॥

भम मासि। पुनर्नवाञ्च काकोलीं तगरं नीलमुत्पलम्। गोचौरं पञ्चमे मासि गर्भक्षेशहरं भवेत्॥ ८॥ श्रयवा वहतीयुग्मं यज्ञाङ्गं कट्कां वचम्। गोघतं चीरसंयुक्तं पिवेत् पिष्टा च पञ्चमे ॥ ८॥

∢हे नासि। सिता कपित्यमज्जा च शीततीयेन पेषयेत। षष्ठे मासि गवां चीरै: पिबेत् क्लेशनिव्चत्तये ॥ १०॥ अथवा गोच्रं शियं मध्यं प्रियपिषेकाम्। वलायुत्तं पिवेत् पिट्टा गोदुग्धैः पष्टमासके ॥ ११ ॥

०म मासि। कारी क्ं पीष्कारं मूलं शृङ्गाटं नील मृत्यलम्। पिष्टा च सप्तमे मासि चीरै: पीला प्रशास्यति ॥१२॥ अयवा मधुकं द्राचां शृङ्गाटच कशिक्तम्। मृणालं शर्करायुक्तं चीरैः पेयन्तु सप्तमे ॥ १३ ॥ यष्टीं पद्माख्यकं मुस्तां कप्रेक् गजिपपलीम्। प्से मासि। नीलोत्पलं गवां चौरै: पिबेदष्टममासके ॥ १४ ॥ श्रयवा विल्वसुलञ्च कपित्यं वृह्तीफलम्। दच्चपटोलयोर्मुलमिभिः चीरं प्रसाधयेत्। तत्चीरमभसा पीला गर्भे शास्यति वेदना ॥ १५॥ रमे मासि। विशालावीज-ककोलं मधुना सह लेह्येत्। वेदना नवमे मासि शान्तिमाप्नोति नान्यया ॥ १६॥ ग्रयवा सधुकं ग्यामा लनन्ता चीरकाकोली। एभि: सिद्धं पिबेत् चीरं नवमे वेदनावती ॥ १०॥ र॰म मासि। शर्करा गोस्तनीकार्यः सचौद्रं नीलमुत्पलम्। पाययेइशमे मासि गवां चीरै: प्रशान्तये ॥ १८ ॥ अथवा गुण्ठीसंसिद्धं गोचीरं दशमे पिवेत्। अथवा मधुकं दार ग्रुडचीरेण सम्पिवेत्॥ १८॥

## सामान्यीषधम्।

धान्याञ्चनं सावरयष्टिकाख्यं त्राहं निपीतं प्रमदा हिन ।
सप्ताहमातं विनियोज्य नारी स्तम्नाति गर्भं चिलतं न चित्रम् ॥१॥
चीद्रं वृषं चन्दनसिन्धुजातं महेन्द्रमाज्यं पयसा सुपिष्टम् ।
गर्भं चरन्तं प्रतिहन्ति शीघ्रं योगोऽयमुक्तः किल मूलदेवै: ॥२॥
कुलालहस्तोद्रवक्तदेमस्य बस्तीपयःचीद्रयुतस्य मात्रम् ।
गर्भच्युतिं शूलमयीं निवार्थ्य करोति गर्भं प्रकृतं हिन ॥ ३॥
कश्रिसृष्टक्षाटकजीरकाणि पयोचनैरण्डशतावरोभिः ।
सिद्धं पयः गर्करया विभिन्नं संस्थापयेहमेमुदीत्य शूलम् ॥ ४॥

कन्दं की मुदकस्य माचिकयुतं चीराज्ययुक्तं पिवेत्
सप्ताइं सितया सुपक्तमबला शीतीकतं वायुना।
गर्भसावमश्रेषकं सपवनं शोषं तिदीषं विसम्
शूलं सर्वविधं निष्ठन्ति नियमादेवञ्च तत्तत् स्मृतम्॥ ५॥
इत्रीवेराऽतिविषामुस्तैमीचिशकीः शृतं यवम्।
दयाद्वभसवे चैव प्रदर् कुच्चिसंक् ने॥ ६॥
कुवलयकन्दं सितलं पीत्वा चीरेण, मधुयुतं विनता।
मृत्तिं गुरुतरदीषेश्वलितं गभें दधत्याग्र॥ ७॥
पद्मीत्पलस्य मूलानि मधुश्चर्तरया तिलाः।
चरमाणेषु गर्भेषु गर्भस्थापनमुत्तमम्॥ ८॥
यग्भे पत्री गोचीरं श्वर्करायुक्तं श्रष्कगर्भप्रशान्तये।
पिवेद्वा मधुकं चूणं गान्धारीफलचूणकम्।
समांशं गव्यदुग्धेन गर्भिणी तत्प्रशान्तये॥ १॥

खेतं पुनर्नवासूलचूर्णं योनी प्रवेशयत्। चणात् प्रस्यते नारी गर्भणातिप्रपीडिते ॥ १ ॥ उत्तराभिमुखं याद्यं खेतगुच्चोयसूलकम्। कव्यां बड्डा विमुक्तच्च गर्भं पुत्रन्तु तत्चणात्॥ २ ॥ वासकस्य तु सूलन्तु चीत्तरस्यं समुद्ररेत्। कव्यां बड्डा सप्तस्त्रते: सुखं नारी प्रस्यते ॥ ३ ॥ उत्तरं च समालोडा खेतगुच्चाफलीयकम्।

सुखपसवमाप्रोति तत्चणानात संगयः॥ ४॥

अय म्तिकानिरीधे सुखप्रसवसाइ।

योनिं वा लेपयेत् तेन सा सुखेन प्रस्यते।
सच्देव्याय सूलन्तु कटिस्यं प्रसवेत् सुखम्॥ ५॥
अपामार्गस्य सूलन्तु ग्राइयेचतुरङ्गलम्।
नारी प्रवेशयेदु योनी तत्च्यात् सा प्रस्यते॥ ६॥

तोयेन लाङ्गलीमूलं पिष्टा योनी प्रवेशयेत्।
नाभिञ्च लेपयेत् तेन चणात् सा स्यते सुखम्॥ ७॥
गुज्जाफलार्कपुष्पञ्च तोयपूगं तथाऽर्डकम्।
पिवेदा तोयपिष्टञ्च सा सुखेन प्रस्यते॥ ८॥

पिवेद्या तथिपष्टञ्च सा सुखेन प्रस्थित ॥ ८ ॥
गुञ्जातरोर्मूलयुगं विधानादुत्यात्र्य पुष्ये च रवी निबद्दम् ।
कटीतले मूर्डनि नीलस्त्रः शीघ्रं प्रस्तिं कुरुतेऽङ्गनायाः ॥८॥
ग्रागारधूमं ग्रहवारिणा वा पीत्वाऽवला शीघ्रतरं प्रस्ति ।
ग्रलम्बुषामूलमयो निबद्धं योगद्दयं भूपतिरित्यवादीत् ॥ १० ॥
समातुलुङ्गं मधुकस्य चूर्णं मध्वाज्यिम्यं प्रमदा निपीय । \*
व्यथाविद्दीनं प्रसवं हठेन प्राप्नोति नैवाच विकल्पवृद्धः ॥ ११ ॥

दश्रमूली खतं तीयं घतसै स्वसंयुतम्। शूलातुरा पिवेदाश्र सुखं नारी प्रस्यते॥ १२॥

"श्रों मन्मय मन्मय वाहिनि लम्बोदरं मुख सुच खाहा"। चनेन मन्त्रेण जलं सुतप्तं पातुं प्रदेयं ग्रुचिना नरेण। तोयाभिपानात् खलु गर्भवत्या प्रसूयते शोघ्रतरं सुखेन॥ १३॥

श्रों कारञ्च हकारञ्च श्रांकारेण सुपूजितम्। श्रंकारं ग्रिरमं क्वता श्रन्ते नमस्त्रिमूर्त्तये॥ "श्रं श्रों हां नमस्त्रिमूर्त्तये"।

श्रनेनैव तु मन्त्रेण जप्तव्यं स्तिकाग्टहे। सुखप्रसवमाप्नोति सा पुचं लभते ध्रुवम्॥ १४॥

श्रय बालानां प्रम्तानां भृतग्रहादिनिवारणम्।

वित्वसूनं देवदार गोशृङ्गच प्रियङ्ग्कः । मार्जारस्य मनं कुष्ठं वंग्रत्वगजमूत्रकैः ॥ पिष्टा धूपो निच्चन्याग्र ग्रहभूतज्वरादिकान् ।

शाकिनीराचसाः प्रेताः पिशाचाः ब्रह्मराचसाः।

<sup>\*</sup> अव मातुलुङ्गस्य मूलं यीज्यं, न तु फलम्। पेयं काथयेदा।

एकाहिको द्याहिकय ज्यरो नम्यति तत्चणात्॥

"श्री द्रावितं तापे ठंठः खाहा"। भनेन भूपं द्यात्॥ १॥
श्रीवासं सैन्धवं कुष्ठं वचा तैलं घृतं वसा।
भूपो बालग्टहे देयो ग्रहराचसगान्तये॥ २॥
श्रिरीषनिम्बयोः पत्रं गोश्रङ्गस्य त्वचा वचा।
वंग्रत्वक् शिखिपुच्छच्च कङ्गुना च समं घृतम्।
भूपो बालग्रहान् हन्ति एतन्भन्तेण मन्त्रितः॥

"श्री दुतं सुच्च सुच्च उड्डामरेखरं श्राज्ञापयति खाहा"

धूपवयाणार्मष मन्तः॥ ३॥

पुनर्नवानिम्बपत्रसर्षपघृतैर्विरचितो धूपः। गर्भिण्या वालानां सततं रचाकरः कथितः॥ ४॥ दाड़िमस्य च वन्दाकं ज्येष्ठा-ऋचे समुद्वरेत्। दारबन्धे च बालानां सर्वग्रहनिवारणम्॥ ५॥ पुषार्की खेतगुज्जाया मृतमुद्दत्य धारयेत्। वालानां कण्ठदेशे तु डाकिनीभयनाशनम् ॥ ६ ॥ खेतापराजितापचं जयापचं हयोः रसम्। नस्यं कुर्यात् पलायन्ते डाकिनीदानवादयः॥ ७॥ सर्पत्वक शिंगपाहच-पन्नवं रजनी वचा। रसोनहिङ्गोरोमशृङ्गीमरिचमाचिकैः। घ्पः सर्वज्वरन्नोऽयं कुमाराणां ज्वरापहः॥ ८॥ रसोनहिङ्गोरोमगृङ्गोमरिचमाचिकैः। कुच्छुन्दरीमलं मांसं हरिद्रा विल्वपत्रकम्॥ दन्द्र: शिरीषपत्रञ्च धूपेन तत्रयोजितम्। निइन्ति रोदनं राची बालस्याग्र न संगय: ॥ ८ ॥ मत्यराजस्य पित्तेन मरिचं भावयेद बुधः। रविवार रीद्रग्रष्कमञ्जनात् सर्वभूतद्भत्॥ १०॥

नरसिंहस्य वीजन्तु सक्षदुचिरितं हरेत्। डाकिनीपेतभूतानि तमः सूर्योदये यथा॥

भव मनः।—"श्रीं नमी नरसिंहाय हिरण्यकिश्युवचः स्थल-विदारणाय तिभुवनव्यापकाय भूतप्रेतिपिशाचडािकनी कुली न्मूल-नाय स्तभो द्ववाय ममस्तदोषान् हर हर विसर विसर पच पच हन हन कम्पय कम्पय मथ मथ क्लीं क्लीं फ्लीं फट् फट्टः ठः एहोति क्ट्र श्राज्ञापयिति स्वाहा"। इति नरिंहिमनः। "श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं क्लः क्लांका। भनेन सर्पपमिमनिवतं लेखा रीगिणं प्रहारयेत् तदा सर्वे यहाः प्रजायने॥ ११॥

श्रयं बलिक्चते।

बालग्रहाभिभूतानां विलं यत्नेन कल्पयेत्। ग्रुचिः पक्का तु सप्ताहं मत्स्यमां मसुराफलम्॥ पुष्पधूपाचतं गन्धं दीपञ्च दिच्णादिकम्। चतुष्पथे चिपेद्रात्नी ग्रुहे नूतनखर्परे। ग्रुनी वा कुजवारे वा बालदोषोपग्रान्तये।

"भी सर्वभूतेभ्यो बलिं ग्रह्ण ग्रह्ण खाद्या"। इति बलिदानमन्तः ॥१॥

षय मधीजातमानकसाहित्ग्छिकानिवारणम्।
उडुम्बरभवं मूलं शिश्वकट्याच्च धारयेत्।
वहत्वुषाग्छचूणं वा तेनाहित्गिष्डकां जयेत्॥१॥
खेताकं मूलं संग्रह्य ग्रहस्तभे च बन्धयेत्।
पृष्याकं वा रवी वारे तेनाहित्गिष्डकां जयेत्॥२॥
चन्द्रग्रस्ते शिखीमूलं विधिवह्ययेद् बुधः।
बह्वा बालस्य जघने बालाऽहित्गिष्डकां जयेत्॥३॥

चय स्तीणां पुष्परचा।

पलाशराजादनयोः फलानि पुष्पाख्ययो शाल्मालिपादपस्य । श्राज्येन मासाईदिनं पिवन्ति स्थात्पुष्परचाद्रुतमङ्गनानाम् ॥१॥ तुषाम्बुना पावकह्त्त्रसृतं निकाय्य पोत्वा नियमं चरन्ती।
ऋतोय काले त्रिदिनं पिवन्ती रचाभवेद्दोषविनाशमिति॥२॥
फलं कदस्वस्य च माच्चिकाणि तुषाम्बुना तु त्रिदिनं पिबन्ती।
स्नानावसाने नियमेन गर्भं बन्ध्या त्ववश्यं लभते इठेन॥३॥
त्रैहायणं वा ग्रभमित्त नित्यं पलप्रमाणं वनिताऽर्द्दमासम्।
जीवन्तिकं निश्चितमेव नश्येत् बन्ध्यात्वमुक्तं कविपुङ्गवेन॥४॥
कर्षद्वयं राचसवीज़चूणं सप्ताहमात्रं स्नितशालिधान्यम्।
ऋती निषीतं सगशावकाच्या रचार्थमेतंत्रियतं प्रदिष्टम्॥५॥

भव दुर्भगावरणम्।

ज्येष्ठानचत्रे निम्बवन्दाकं यस्या श्रङ्गे दीयते सा दुर्भगा भवति॥१॥

## भय कलहकरणम्।

विशाखायां निम्बद्यचयोत्तरमूलं विवस्तो विमुखीभूयोत्-पाट्य मुखेन यस्य चाले प्रचिपेत् तस्य प्रत्यद्यं कलहो भवति । दूरीक्षते तु तन्मुले भद्रं भवति ॥ १ ॥

तन्नचते शाखोटवदरीवीजदयमेकीक्तल यस्य रहे स्यापयेत् तस्य निलं कलहो भवति ॥ २ ॥

शाखोटमृतपत्रच एकीक्तत्य यस्य ग्टहे स्थापंग्रेत् तेन कलहो जायते नात्र मंशयः॥ ३॥

> ब्रह्मदर्ष्डीं समूलाञ्च काकमाचीसमन्विताम्। जातीपुष्परसैः पिष्टा सप्तरात्रं पुनः पुनः॥ एष धूपः प्रदातव्यः शतुगोत्रस्य मध्यतः। यथागीत्रं समाघ्राति पितापुत्रैः समं कलिः॥ ४॥

त्रय सर्वानिष्टनिवारणार्थं रचाविधः।
कादिहिरवसानञ्च श्रचरं खरभूषितम्।
ईकारेणाऽपि संयोज्य श्रधोरेफत्ययान्वितम्॥

श्रीकारशिरसं कुला जप्तव्यं सिडिमिच्छता। "भ्रों क्लीं स्त्रीं स्त्रीं या के वित्तु "भ्रों क्रीं खीं चीं"॥ स्वसंयमनमन्त्रोऽयं शताईजापमात्रतः। श्रशेषारिष्टनाशः स्थादित्याह पुरसूदनः ॥ १ ॥ कपरं चपरञ्जेव ठपरं तपरन्तथा। पपरं वर्णमाक्षय ईकारेण सुप्रजितम्॥ अधोरेफसमायुक्तं चोङ्कारिशरमं तथा। "श्रों चीं खीं छीं ठीं थीं फीं चीं"। श्रदया तु महामन्तं ये जपन्ति सदा हृदि। सर्वया तस्य पंसः स्यात् सर्वारिष्टविनाशनम् ॥ हस्तेन रत्तपुष्येण यथितां मालिकां ग्रभाम। अभिमन्त्र शतेनापि ददाहेब्यै सदाऽनघे !॥ यावज्जीवं सुखं तस्य सर्वनाभी दिने दिने। न ग्रहेऽनिष्टपातः स्यान्निखित्वा स्थापने ग्रहे॥ ३॥ श्रवराणामन्यवर्णं लिखिला पञ्चधाऽनवे ।। अधोरेफसमायुक्तमोङ्गारशिरसं तथा॥ र्दकारेण च सम्पच्य अन्ते फड़चरान्वितम्। "श्रों चीं चीं चीं चीं चीं पर"। मन्त्री त्यं समरूप्य ध्यानं जापं तथैव च। सदा स्यात् तहु चैमं सहसाईस्य जापनात्॥ वैलोक्ये तलमो नास्ति नित्यं फलमवाप्रयात्। नित्यं सम्पद्यते वासः पत्रा पुत्रेण बान्धवैः॥ ज्ञातिभिः सज्जनैश्वापि शत्नुभिश्व विवर्जितः। श्रन्यजन्मसुखी प्राणी शृणु देवि ! महाफल: ॥ ४ ॥ अन्तद्यं समाग्टह्य अधोरेफसमायुतम्। श्रींकारेण युतं कत्वा श्रीङ्वारिशरसं तथा॥

"ग्रों चौं चौं"

यनेनैव तु मन्तेण ये जपन्ति महाजनाः।
ते सर्वे शान्तिमायान्ति सततं तस्य जापतः॥ ५॥
खेतार्कमूलं पृष्यार्के समुद्दृत्य विधारयेत्।
वाहुभ्यां धारणात् तस्य त्वनिष्टानि विशेषतः॥
तह्भीनेन नश्यन्ति डाकिनो प्रेतदानवाः।
तद्भीनेन नश्यन्ति डाकिनो प्रेतदानवाः।
तद्भीनेन पलायन्ते प्रेताद्या दूरत्रे। भ्रुवम्॥ ६॥
पूर्वभाद्रपदे ऋचे वन्दाकन्तु शिरोषजम्।
संग्रह्य शिरसि चिप्ते यभयं भवति भ्रवम्॥ ७॥
विश्वज्ञान्ताभवं मूलं हस्तस्यं चोरभोतिहृत्।
नरसिहस्य मन्ते तु सक्तदुचरिते हरेत्।
डाकिनोग्रहभूतानि तमः स्र्योद्ये यया॥
भूतप्रेतिपशाचादिभये स्मृत्वाऽभयो नरः।
भैरवोच्च महापूर्वी भवदेव न संश्यः॥
चक्राणि लिष्यानि॥ ८॥

अय निद्राल्करणम्।

निगड़े चौरिकायाञ्च पठेद्वारत्रयं यदि। सर्वे प्रहरिका यान्ति निद्राया वश्मीव च॥१॥

गुवाकं खादित्वा तस्याविशष्टं विवरं क्वता संप्रोतयेत्, तत्र सावयेत्। तस्य वाटिकायां य त्रायाति तस्याऽनेन निद्रा विति॥२॥

नीलोत्पलं समिरचं नागकेशरमूलकम्।

ष्टच्येत् तदञ्जयेच ज्ञिनिद्रामाप्नोत्यसंग्रयः॥ ३॥

काकजङ्गा जटा निद्रां जनयेत् शिरिस स्थिता।

मूलं वा काकमाच्याय क्षणायास्तद्गुणं स्मृतम्॥ ४॥

नरसिंहमन्त्र: पुरा कथित:।

सुनिषस्पक्षराखाञ्च ग्रय्यास्थाने खनेदय। करञ्जमूलं गिरसि बन्धनात् कुरुते तथा॥ ५॥

अथ निद्राभञ्जनम्।

कनकधूस्तूरमूलं स्ताभ्यं केतकीपुष्परजः। एतानि पिट्वा कपटवेशेन खादयेत्, तेन निद्राभञ्जनं भवति ॥१॥

श्रय बन्धनमीचनम्।

मार्गशीर्षस्य पूर्णायां शिखिमूलं समुद्रृत्। बन्धनान्मुच्यते तेन शिखावदो न संशयः॥

मन्त्र ।— "श्रीं नमः कमलिपङ्गले रुद्रहृदयाङ्गे वेताल श्रिष्यधारिणि तिष्ठ तिष्ठ सर सर सर्वान् मीह्य मोह्य भगवति शिखाजे तिमिरे महामाये खाहा"। श्रष्टीत्तरणतं जक्षा शिखाय पूर्वीक्रमीषधं वस्रवेत्, तेन सिंडि:।

लचं वर्णं कातारञ्च लिखेदस्थनमोचनम्। यनाणि लेखानि॥१।

अघ निगड़ादिभञ्जनम्।

हस्तार्के सिन्धुवारस्य मूलं चोत्तरगं हरेत्। स्पर्धनं बन्धविच्छेदं कुरुते शोघ्रमारुतः॥१॥ मांसीं रक्तोत्पलं तुल्यं क्वकलासञ्च भोजयेत्। तन्मलैर्गृटिकास्पर्शात् तदा बन्धं भिनच्यलम्॥२॥ सुपक्कामिष्टिकां क्वन्ण-वजीं ग्राह्यान्तु योगिभिः। सूच्यन्यूर्णन्तु तत् क्ववा लोहिकिष्टमयापि वा॥ स्त्रैः रज्यं दृढ़ोक्कत्य तिलतैलेन लेपिताम्। तञ्चर्णलोटिकां क्ववा महालौहं भिनच्यपि॥३॥

भव मनः।—"श्रीं नमो भगवतं स्ट्राय उड्डामरेश्वराय बहु रूपाय नानारूपधराय हम हम नृत्य नृत्य तुद तुद नाना कौतुकीन्द्रजालदर्शकाय ठः ठः स्वाहा"। भनेन सर्वधीगानिभमन्व विद्याः॥ ४॥

अत्रास्ति मन्त्रान्तरमेकं तत्रैव।—"श्री अग्निमुखी पिशाची ममुकं इन इन पच पच शोघं में वशमानय खाद्वा"। उक्तमलेण सिंडः॥ ५॥

"दं ह्ं श्रीं श्राय श्राय चिं चिटि चिटि हांलां वज्र नन्दिका हालिका"। श्रनेन मलेण श्रेतसर्पपं श्रेतश्रीड्रपणवयं वि: पठिला प्रथमदारि निचिपेत्, तेन सर्वीण दाराणि भञ्जनि ॥ ६ ॥

## श्रथ ग्रहक्षेशनिवारणम्।

तक्रिपष्टेन तालेन लेपयेत् पुत्तिकाक्तिम्।
तामाघाय ग्रहाद् यान्ति मिचिका नात्न संग्यः॥१॥
स्रोतार्कदुग्धकुल्यापं तिलचूर्णसमिन्वतम्।
स्रार्कपत्रेषु विन्यस्तं मूिकान्तकरं ग्रहे॥२॥
तालकं क्रागविगम्त्रं पलाग्डुं सह पेषयेत्।
स्रालेप्य मूिकां तेन जीवितच्च विसर्जयेत्।
तं दृष्टा च ग्रहं त्यक्का पलायन्ते हि मूिकाः॥३॥
मार्जारस्य मलं तालं पिष्टा मूिकमालिपेत्।
तमाघाय ग्रहं त्यक्का सद्यो निर्यान्ति मूिककाः॥४॥
गन्धकं हरितालच्च ब्राह्मीं विकट्कं समम्।
क्रागलीमूवतः पिष्टा लिप्तं मूषन्तु पूर्ववत्॥५॥
मघायां ब्रध्नकं चेत्रे स्थापयेन्यधुकोइवम्।
मचिका मूिकाणाच्च जायते त्रण्डवन्थनम्॥६॥
मग्रकाकर्षको दीपः सावरो गुड़तैलजः।

भव मनः।—"पूर्वे ब्रह्मणे बन्ध, पश्चिमे विष्णवे बन्ध, उत्तरे द्राय बन्ध, दिचणे यमाय बन्ध, पाताले वासुकाये बन्ध, फणा-हस्राय बन्ध, हुं"। भङ्गडायां नमः। करमणुटं कला तालवयं द्यात्। यक्तमण्यकनिवारणं भवति॥ ७॥

रोहिष खणपुष्यन्तु वर्त्तिमध्ये निवेशयेत्। तहीपदर्शनादेव चिप्रं नध्यन्ति मत्नुणाः ॥ ८॥ ममनीयस्य वृत्तस्य पत्तवाग्रेण वर्त्तिकाम । क्तत्वा दीपं प्रकुर्वीत छारकीटो विनश्यति ॥ ८ ॥ अर्कतूलामयीं वित्तं भावयेत् तारकेन च। दीपं तत्कट्तैलेन, नि:शेषा यान्ति मत्क्णाः॥ १०॥ यर्ज्नस्य फलं गुष्यं लाचा यीवासगुर्गालुम्। खेतापराजितासूलं भन्नातकविड्ङ्गकम्॥ धुपं सर्जरसोपेतं प्रदेयं ग्टहमध्यतः। सर्पाय मत्त्रणा सूषा गन्धाद् यान्ति दिशो दश ॥ ११ गुडश्रीवामभन्नात-विडङ्गित्रफलायुतम । लाचारसोऽर्कपुष्यञ्च धृपो विश्विकसर्पद्वत्॥ १२॥ मुस्त्रसिडार्यभद्गात-कपिकच्छपलं गुडम। चुणें भानुफलोपेतं दहेत् सर्जरमैः समम्॥ मत्तुणा मशकाः सर्पा मूषिका विषकीटकाः। पलायन्ते ग्टहं त्यता यथा युद्धेऽति कातराः॥ १३॥

सर्जरसकल्कमेदोऽर्जुनमूलमक्वककेतकनस्वीविषः। एतैर्धुपो रचितः कीटभुज्रमशकमित्रकादिहरः॥ १४॥

राजविद्यमलं वहं खट्टायां मत्तुणापहम्।
लाच्चासर्जरसोशीर-सर्षपाः पत्नकं पुरम्॥
भक्षातकविड्ङानि रेणुकं पुष्करं तथा।
जम्बुलो मश्रकं हन्ति धूपादा ग्टहमध्यतः॥ १५॥
षय चेवस्य श्रयानामुपद्रवनाशनं नस्कृतादीनां तुण्डवस्थनच।
बालुकाश्वेतसिद्वार्थान् प्रचिपेत् चेत्रमध्यतः।
श्रन्भाः सप्कीटास वराह्मगमूषिकाः।
मश्रकास्तत्र नो यान्ति मन्त्वविद्याप्रसादतः॥

मललु।—"श्रीनमः सुरिभ्यो बलजः जपरि परि परि मिलि स्वाहा"। "श्रीं सुरिभ्यो नमः"। इति नमस्त्रत्य इमां विद्यां प्रयोजयित्। "विद्यां प्रयोजयामीति विद्या में सिद्यते स्वाहा"। अखिलः जम्बूकानां सगाणां ग्रल्भानाम् चन्येषां प्राणिनां तुष्डवस्थनं करीति॥ १॥

> मूषजम्बूककोटानां कुरुते मुखबन्धनम्। विद्यामङ्गुग्रनायस्य मन्त्रं वा भैरवस्य च॥

मलन्। — "त्यों नमो नगरनाथाय हर हर शिलि शिलि सर्वेषां प्राणिनां तुण्डवन्धनं कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा"। बालुकादिभि: सह श्वेतसर्षपान् सप्तवारमभिमल्या चेवमध्ये चिपेत्, सर्वोपद्रवनाशी भवति ॥ २ ॥

> विद्यामङ्ग्यनायस्य मन्त्रं वा भैरवस्य च। मूषजम्बूककोटानां कुरुते तुख्डवस्थनम्॥ ३॥

> > अय पच्यादिभयनिवारणम्।

देवदासीयसिडार्थगुटिकां कारयेद् वुध:। चैत्रमध्ये तु निचिप्य सर्वपचिभयं हरेत्॥१॥

अय शस्त्र हिं:।

पूर्वाषादास्य ऋचे च वन्दां विभीतसभावाम्। ग्रस्थमध्ये चिपेत्तेन ग्रस्थहिडभीवेद् भ्रुवम्॥१॥

त्रय गीमहिष्यादेर्ग्धवर्डनम्।

"श्रीं हुङ्गारिणी प्रसव श्रीं श्रीतलम्"। अनेन टणादिकमभिमन्त्रा भीकुं द्यात् तदा बहुदुग्धं भवति॥

## श्रय उचारनम्।

मङ्गलवारे राती स्मग्रानाङ्गारं क्षण्यवस्त्रेण क्षत्वा रक्त-स्त्रेण संवेष्य यस्य ग्रहे परिचिपेत् सप्ताहाभ्यन्तरे तस्य उचाटनं भवति॥१॥ पञ्चाङ्गुलं चित्रकस्य कीलं ग्राह्यं पुनर्वसी।
. सप्ताभिमन्त्रितं गेहि खनेटुचाटनं भवेत्॥
मन्त्रसु — "श्रीं लोहितमुखे खाहा"। अस्य अष्टीत्तरसहस्रकपेन
पुरथरणम्॥ २॥

खातमी डुम्बरं की लं मिन्ततं चतुरङ्गुलम्।
तं यस्य निखने द्वेहे तस्य ची चाटनं भवेत्॥
मन्तन् ।— "श्रीं शिनि शिनि स्वाहा"॥३॥
भरण्यामङ्गुलैकंन्तु उलू कस्यास्थिकी लकम्।
सप्ताभिमन्तितं यस्य निखन्यो चाटनं भवेत्॥
मन्तन् ।— "श्रीं दह दह हल हल स्वाहा"॥४॥
काको लूकस्य पद्यांस्तु हुत्वा ह्यष्टाधिकं शतम्।
यन्नाक्या मन्त्रयोगेन समस्ती चाटनं भवेत्॥

मलसु।—"श्रीं नमी भगवते स्ट्राय हुं दंष्ट्राकरालाय श्रमुकं सपुत्रवान्धवै: सह हन हन दह दह पच पच ग्रीघ्रं उचाटय उचाटय हुं फट् स्वाहा ठ: ठ:"॥ ५॥

लेपयेत् काकि पित्तेन कीलमङ्गुलसिमातम्।
निखनेद् यस्य भवने तस्य चीचाटनं भवेत्॥
मन्त्र ।—"श्रीं च्लीं दण्डिन् दण्डिन् महादण्डिन् नमोऽस्तु
ते ठः ठः"॥ ६॥

नरास्थिकीलकं द्वारे निखन्याचतुरङ्गुलम्। अरिदारे मन्त्रयुक्तं सद्यरुचाटनं भवेत्॥

मचनु।—"श्रीं नमी भगवते रुट्राय श्रमुकं ग्रह्ण ग्रह्ण पच पच त्रासय त्रासय त्रोटय त्राटय नाग्रय नाग्रय पग्रपति-राज्ञापयति ठः ठः"॥ ७॥

> स्तस्य पुरुषस्थाय निर्मात्यं चेनमेव च। प्रेतानये समाग्रद्य यस्य गेरहे निधापयेत्।

श्रष्टस्याच चतुर्दृश्यां तयैवोचाटनं भवेत्॥ उह्तन शान्तिः॥ ८॥ श्रेतलाङ्गलिकासूलं स्थापयेद् यस्य वेश्मनि । निखन्य तु भवेत् तस्य सद्य उच्चाटनं ध्रुवम्॥ ८॥ सिडायें श्रिवनिर्माल्यं यद्गेहे निखनेद् वुधः । उच्चाटनं भवेत् तस्य उद्गते तु पुनः सुखी॥ यन्यास्यव विलेखानि॥ १०॥ '

अय उचाटनप्रकारान्तरमाह।

उचाटनिविधं वच्चे यथोक्तं श्रीमतोत्तरे । निम्वपत्रे लिखेन्नाम महिषाखपुरीषकै: । काकपचिविलेखन्या लेखनीयमनन्तरम् ॥

मन्तन्।—"ग्रीं काकतुण्डि धवलामुखि देवि ग्रमुकमुचाटय मुकमुचाटय हुं फट् स्वाहा"।

एतन्मन्तं महादिवि ! लिखिला पूर्ववस्तुभि: ।
निम्बद्वचिस्तितं सर्वं काकालयं हरेदय ॥
सम्मानविद्वमानीय धुस्तूरकाष्ठदीपितम् ।
विद्वां कला महातैलैरयवा कटुवस्तुभि: ॥
पूर्वीक्तमनुना तत्र होमयेद् विधिपूर्वकम् ।
पञ्चोपचारयोगेन सम्पूज्य धवलामुखीम् ॥
तस्माद्वस्म प्रचिपेच प्रत्नोच मिन्दरोपरि ।
उचाटनं भवेत् तस्य सपुत्रपण्यवास्यवै: ॥
धूम्ववणां महादेवीं तिनेत्रां ग्रिश्मिखराम् ।
जटाजूटसमायुक्तां व्याप्रचर्मपरिच्छदाम् ॥
क्रमाङ्गोमस्थिमालाञ्च कर्त्तृकाञ्च तथास्वुजम् ।
कोटराचीं भीमदंद्रां पातालसदृशोदरीम् ॥

एष योगविधिः खातो वीरतन्त्रे महिखरि !॥

अय विदेषणम्।

एकहस्ते काकपचमुनूकस्य तथाऽपरे।
मन्त्रियत्वा मेन्यित्वा क्षण्यस्त्रेण बन्धयेत्॥
ग्रज्जिति सजलज्जैव तर्पयेडस्तपचकैः।
एवं सप्तदिनं कुर्य्यादष्टोत्तरग्रतं जपेत्।
विदेषो जायति तत्र महाकौतुकमद्गतम्॥१॥
मार्जारमूषिकाविष्ठा साध्यपुत्तिका कता।
नीलवस्त्रेण संवेष्य मन्त्रियत्वा ग्रतेन च॥
विदेषो जायते तत्र भातरी तातपुत्रकौ।

मललु।—"श्री नमी महाभैरवाय श्मशानवासिन्यै श्रमुक मुक्तयोर्विदेषं कुरु कुरु क्रूं फट्"॥२॥

एकहस्ते काकपचमुलूकस्य तथाऽपरे।
दर्भण धारयेद् यत्नात् तिसप्ताहं जलाञ्जलिम्॥
रक्ताश्वमारपृष्यैकमन्त्रयुक्तं जलाञ्जलिम्।
नित्यं नित्यं प्रदातव्यमष्टोत्तरसहस्रकम्।
परस्परं भवेद्देषः सिडियोग उदाहृतः॥

श्रव मन्तः।—"श्रीं नमः कटीटनी प्रमोटनीकी गीरी गीरं श्रमुकस्य श्रमुकेन सह काकीलूकादिवत् कुरु कुरु स्वाहा" यन्ताणि सव लेखानि॥ ३॥

## अय व्याधीकरणम्।

"श्री त्रमुकं इन इन खाहा"। त्रनेन मन्त्रेण कट्तैला विकटुं जुद्धयात् तदा श्रव्युविधिरो भवति ॥१॥ भन्नातकरसे गुञ्जां कुर्य्यादितसुचूर्णिताम्। चिपेहात्रे भवेत् कुष्ठं सिताचीरैः पुनः सुखी ॥२॥ वानरीफललोमानि विषं भन्नातिचत्रकम्।
गुज्जायुतं चिपेन्नाचे स्यान्नूता वेदनान्विता ॥ ३ ॥
उशीरचन्दनञ्चैव प्रियङ्ग्रक्तचन्दनम्।
तगरं पेषयेत् तोयैर्लेपान्नूतादिनाश्यनम् ॥ ४ ॥
कोड़ीपयस्तैललेपात् पानाद्यै खेतकुष्ठच्चत्।
तास्वृले इन्द्रगापञ्च दत्त्वाऽऽस्ये खेतकुष्ठच्चत् ॥ ५ ॥
नीत्वा तेन यथापूर्वं भच्चा वा मोमराजिका ॥

मलला — "श्रीं नमी भगवती खट्राय उडडामरेखराय श्रमुकं रोगेण ग्रह्ल ग्रह्ल पच पच ताड़य ताड़य क्लेदय क्लेदय हूं फट् स्वाहा ठ: ठ:"। उक्षयीगानामयं मलः ॥ ६॥

चिपेन्गगिरा-ऋचे विश्वाकाष्ठस्य कीलकम्।
पञ्चाङ्गलं रिपोर्गेहे विद्धामान्यं प्रजायते॥ ७॥
सामुद्रलवणं विद्धः केवलं वा समुद्रजम्।
बन्धक्या उदरन्यस्तं सर्वमन्तःपुटे पचेत्॥ ८॥
करवीरार्द्रकाष्ठेन तमादाय सुचूर्णयेत्।
खाये पानिऽपयेद् यस्य तस्य चत्तुः प्रणस्यति॥ ८॥
उल्लेकमस्तवं ग्राह्यं लवणेन प्रपूरयेत्।
स्त्यात्रस्थन्तु सप्ताहं श्रचकाष्ठेन चालयेत्।
दृष्टिं स्तम्भियतुं तस्य मरीचाचफलं वचा॥ १०॥

मलस् — "श्रों चामुण्डे हन हन दह दह पच पच श्रमुकं ग्रह्ण स्वाहा"।

अनेन निम्वपत्रं कटुतैसेन साध्यस्य नाम ग्रहीला जुहु-यात्, म चाग्र कुज्वरेण ग्रह्मते।

श्रनेन लवणाइतिमष्टसहस्रं जुहुयात्, स शूलेन कुञ्चरेण ग्टह्यति॥११॥ तेनैव विव्यवसष्टसहस्रं जुहुयात्, स चाग्र कुञ्चरेग् ग्रह्मते॥१२॥

रक्तपुष्पं चित्रकरमेन यस्य नामाभिलिस्य भूर्जे अर्क-लितकायां स्थापयेत् म दाइज्वरेण ग्रह्मते।

व्याधीकरणयन्ताख्यव लेख्यानि ॥ १३॥

त्रय शतुभागगम्।

ग्रव्वस्वकीलमिक्षिन्यां यस्य गेहे दशाङ्गलम्। स्थापयेहीर्घयातां स्थात् तस्यापि न हि संशयः॥१॥ श्रुगालस्थास्थिकीलञ्च स्थाप्यं स्थाचतुरङ्गलम्। रिपोर्गेहे चन्द्र ऋचे दीर्घयाता च तस्य वै॥२॥

अय उनात्तीकरणम्।

तालकं धूर्तवीजञ्च घनचूर्णन्तु भच्णे।
दत्ते मत्तो भवेच्छ्चः सिताचीरैः पुनः सुखी॥१॥
तालकं लग्रनं मूर्भि चिप्तं तस्य पिशाचक्तत्।
सुरामांमोसिताचीरं भच्णात् स्थात् सुखावहम्॥२॥
मध्वाच्याभ्यां स्वर्णमाचीं लिक्षा तन्नीतकज्ञलम्।
दत्तं यस्याञ्चनं नेते उन्यत्तो वै प्रजायते॥३॥
गोष्टतं सैन्धवं तुल्यं वराहस्य च पित्तकम्।
यजाचीरेण तद्योच्यं पाननीन्मत्यनाग्रनम्॥४॥

मयूरपारावतकुक्कुटानां याद्यं पुरीषं कनकञ्च तालम्।
तम्बूर्द्वि दत्तं कुरुते पिशाचं निवर्त्तते मुख्डितमस्तकेन ॥ ५ ॥

गुड़ं करञ्जवीजञ्च घनचूणें समं समम्। फलस्थान्ते प्रदातव्यमुन्मत्तो भचणाइवित्॥ शर्कराश्रतपुष्पाभ्यां चीरपाने सुखावहम्॥ ६॥

यलाख्यव। मलसु।—"ग्रीं उन्मत्तकारिणि ठः ठः"। उन

#### अध मारणम्।

नरास्त्रिकीलकं पुष्ये ग्रह्मीयाचतुरङ्गुलम्। निखनेत्तु ग्रहे यावत् तावत् तस्य कुलच्चयः॥ "ग्रीं क्रीं फट्स्वाहा"। सहस्रजपात् सिंडिः॥१॥ "ग्रीं डंडां डिंडीं डुंडुंडें डैंडीं डींडेंडः ग्रमुकं ग्रह्म ग्रह्म हुंहंठ: ठः"। अनेन नरास्थिकीलकं सहसाभिमिक्तितं चितामध्ये

निखनेत्, स ज्यरेण नृश्वित ॥ २ ॥

श्रिनेन मन्त्रेण मनुष्यास्थिकीलकं सहस्राभिमन्त्रितं यस्य
गैहे निखनेट् यस्य नाम्ना श्रमशाने वा निखनेत्, तस्य नाशः

स्रात्॥ ३॥

"द्वीं गंगांगिंगीं गुंगूं गंगीं गोंगों गंगाः ठः ठः"। अ अनेन नरास्थिष बृहुल कील कंस इस्वाभिमन्तितं यस्य नासा ग्रहि समशाने वानिखनेत्, तस्य सर्वनाशी भवति ॥ ४ ॥

श्रखास्थिकीलमिश्वन्यां निखनेचतुरङ्गुलम्। श्रुतगिष्ठे निष्ठन्याश्र कुटुम्बं वैरिणां कुलम्॥ मन्नलु।—"हुं हुं फट् स्वाहा"। श्रनेन सप्तामिमन्तितं श्रुग्टहे निखनेत्, श्राश वैरिणां कुटुम्बकुलं चयं याति॥ ५॥

"श्री सुरेखराय खाहा"। श्रनेन मन्तेण—
सर्पास्यङ्गलमावन्तु चाश्चेषायां रिपोर्गृहे।
निखनंत् सप्तथा जप्तं मार्योद्रपुसन्तितम्॥६॥
निम्वषिट्वन्दुको ग्राह्यो विषं त्वग्वानरीफलात्।
एतकूर्णं प्रदातव्यं श्रनुग्रव्यासनादिषु।
जायन्ते स्माटकास्तावा दशाहान्मरणं भवेत्॥७॥
श्राद्रायां निम्ववन्दाकं ग्रतोः श्रयनमन्दिरे।
निखनंत् स्मियते श्रनुष्कृते च पुनः सुखो॥८॥
तथा शिरोषवन्दाकं पूर्वीक्तेनोडुना हरेत्।

श्रुतोर्गे हे स्थापयित्वा रिपोर्नाशो भविष्यति ॥ ८ ॥ क्रपाषण्डस्य रक्तेन गङ्गास्तिकया सह। तिलकं भालदेशे च कत्वा सभावयेत् यम्। विद्य: स्थात् तत्चणादेव प्रोञ्किते च ग्रभं भवेत् ॥ १० ॥ क्षणच्छागाश्वपादस्य खुरस्यं रोमकं हरेत्। क्षणाकुक्ट-काकस्य ग्राद्यं पच्चतुष्टयम्॥ सर्वं दग्ध्वा तु भाग्डान्तस्तक्कस जलसंयुतम्। ललाटे तिलकं हाला वामहस्तकनिष्ठया। स्व शिरो नम्यते यस्य तस्य विधोऽस्मि निश्चितः ॥ ११ ॥ वामदन्तं कुलीरस्य अधीभागस्य चाहरेत्। शराग्रे फलकं कुर्यादनुश्व चितिजेन्धनै:॥ गवां शिरां गुणं कत्वा शतं कुर्याच सन्ययम्। तइज्ञातेन वाणेन स्त्रियते तत्चणाद्रिपुः॥ १२॥ जर्णनाभिय षडुबिन्दुः समांसः क्रण्यवियकः। यस्याङ्गे तत् चिपेचूणें सप्ताहात् स्फोटनं भवेत्। मय्रपुच्छनीलाञ्जं पिष्टा लेप: सुखावह:॥ १३॥ रिपुविष्ठां वृश्चिकञ्च खनित्वा तु विनिचिपेत्। याच्छाद्यावरणेनाय तत्पृष्ठे सृत्तिकां चिपेत्। स्त्रियते मलरोधेन उड्गतेन पुन:सुखी ॥ १४ ॥ "ग्रीं क्लीं च: ग्रमुकां चं"। अनेन मन्त्रेण राजिकालवर्णन शिव-

निर्माल्यानि कट्तैलीन सहस्रहीमात् ग्रचीर्वधः ॥ १५॥

### अध अधनार्णम्।

क्षणाजीरकचूर्णन श्रिष्ठाताखो न पश्यति । तक्रेण चालयेचचः सुस्थो भवति घोटकः ॥ १ ॥ ब्राणे कुच्छुन्दरीचूर्णं दत्ते पतित घोटकः । सुस्ययन्दनपानन नासायान्तु न संग्रयः ॥ २ ॥ यश्वास्थिकीलमिश्वन्यां कुर्यात् सप्ताङ्गुलं पुनः ।
निखनेदश्वणालायां मारयत्येव वीटकान् ॥
"श्री पच पच स्वाहा" । जन्नयीगेषयं मनः ॥ ३ ॥
भरख्यामुक्तमन्त्रेण चितिकाष्टस्य कीलकम् ।
यष्टाङ्गुलन्तु निखनेदश्वणाला विनश्यति ॥
मनस् ।—"श्री नमो भगवते रुद्राय श्री अथ्वान् स्वाहा" ।

त्रय ग्रस्यनाग्रनम्।

पुनर्वसी चिताकाष्ठकीलकं त्राङ्ग्लं चिपेत्। ग्रताभिमन्त्रितं चेते ग्रस्यं तत्र विनग्यति॥ "श्रीं लोहितमुखि खाहा"। दित मनः॥१॥ श्राद्रीयां निचिपेत् कीलं भक्त्रकस्यास्थिसभ्यवम्। चेत्रमध्ये तथा ग्रत्नोः सर्वं ग्रस्यं विनग्यति॥२॥ विग्राखायां कालकाष्ठ-कीलमष्टाङ्गलं चिपेत्। कदलीवाटिकामध्ये नाग्रयेत् कदलीफलम्॥३॥

षय रजकस्य वस्त्रनाशनम्।
ग्राइयेत् पूर्वपत्तुन्यां जातीकाष्ठस्य कीलकम्।
ग्रष्टाङ्गुलप्रमाणन्तु निखन्याद्राजके ग्रहे।
श्रताभिमन्त्रितं तेन तस्य वस्त्राणि नाश्ययेत्॥
"ग्रीं कुम्भं स्वाहा"। ष्रनेन मन्तेण साध्येदिति॥

त्रय धीवरस्य मन्यनाशनम्।
मंग्राह्यं पूर्वफल्तुन्यां वदरीकाष्ठकीलकम्।
ग्रष्टाङ्गुलञ्च निखनेन्नाशयित् धैवरे ग्टहे॥
"ग्रीं जले स्वाहा"। "ग्रीं मत्स्ये स्वाहा"। इति।
हिनस्य तुल्यं फलन्॥ १॥

सप्ताङ्गलं मघा-ऋचे भाज्ञातं काष्ठकीलकम्। ग्रहीत्वा दासगेहे तु देयं मत्स्यो विनम्थति॥ २॥ क्तिकायामर्ककाष्ठ-कीलकञ्चाङ्गुलं चिपेत्। श्रुत्नोर्वापि तड़ागादी मत्य्यस्त्रत्न विनध्यति॥३॥

चय कुमाकारस्य भाखनामनम्।

हस्तायां चाङ्गुलं कीलं करवीरस्य काष्ठजम् । निखनेत् कुम्भकारस्य मालायां भाग्डनामकत् । पञ्चाङ्गुलं निम्बकीलं तदृचे पूर्ववत्फलम् ॥ १ ॥ गोत्तुरं मेषम्बङ्गञ्च वीजं वा कोकिलांचजम् । श्रूकरस्य मलं वापि मूलं वा खेतगुञ्जजम् । पाकस्थाने तु भाग्डानां चिप्तं स्फोटयते ध्रुवम् ॥ २ ॥ तालं करञ्जवीजञ्च टङ्गनेन समन्वितम् । काला भाग्डाः स्फुटन्येव उक्तानां मन्त्र उच्यते ॥

अव मनः।—"श्रीं दमन्य दमन्य खाहा"॥ ३॥

षय तैलिकस्य तैलनाशनम्।

मधुकाष्ठकोलकन्तु चित्रायां चतुरङ्गुलम्।
निखनेत् तैलशालायां तैलं तत्र विनध्यति॥
"श्रों दह दह स्वाहा"। भनेन मन्त्रेण महस्रजपः॥१॥
भक्षातकाष्ठं चित्रायां निखनेत् तैलिके ग्रहे।
श्रष्टाङ्गुलं तदा तत्र ग्राहको न हि गच्छति॥२॥

षय गीपानां दुग्धनाशनम्।

निचिपेदनुराधायां जम्बूकाष्ठस्य कीलकम्। च्रष्टाङ्गुलं गोपगेहे गोदुग्धं च प्रणस्यति॥

षय शाकनाश्नम्।

गम्धकं चूर्णितं तत्र निचिपेज्जलिमश्रितम्। नथ्यन्ति सर्वेशाकानि शेषान्यत्यवनानि च॥

श्रय वारजीविन: पर्णनाशनम्।

नवाङ्गुलं पूगकाष्ठकीलकं निचिपेद ग्टहे।

ताम्बूलिकस्य चेत्रे वा ऋचे-शतिभवाह्वये । तदा तस्य च ताम्बूलं नाशयत्याश्व निश्चितम् ॥ श्वय तनुवायस्य मूबनाशनम् ।

श्रिक्यां जाम्बरं \* काष्ठं तन्तुवायग्रहे चिपेत्। दादशाङ्गुलमानन्तु तन्तुं तत्र क्रिनत्यलम्॥१॥ श्रा

षोड्याङ्कुलकं कीलं क्रित्तकायां सितार्कजम्। शौरिडकस्य ग्रेहे चिप्तं मदिरां नाश्यत्यलम्॥

रोहिष्यां वदरीकाष्ठकीलमेकादशाङ्गुलम्। कर्मकारग्रहे चिप्तं लीहं तप्तं भवेत्र हि॥

# अय नानाकौतुकम्।

शिखनस्त शिखाचूणं भोजयिहनसप्तकम्।
तिहरु लिप्तहस्तस्य द्रव्यं शक्तोत्यनेकताम्॥१॥
सप्ताहं तिलतेलेन भावयेदातपे चिरम्।
अङ्गोलवीजचूर्णन्तु योज्यं पेष्यं पुनः पुनः॥
तत्तेलं ग्राहयेद् यद्वात् तैलकारस्य यन्त्रतः।
अथवा कांस्यपाने हे तेन कल्लेन लेपयेत्॥
उत्याप्य स्थापयेद् धर्मः समुखन्तु परस्परम्।
तयोरधः कांस्यपात्रे पतितं तैलमाहरेत्॥
इदमेवाङ्गुलीतेलं सर्वयोगेषु योजयेत्।
इदमङ्गुलीतेलन्तु मण्डितं तत्ज्ञणाहिशेत्।
सफ्लो जायते वृज्ञस्तत्ज्ञणान्नात्र संग्रयः॥ २॥
पद्मिनोवीजचूर्णन्तु भाव्यमङ्गुलीतेलतः।

जान्वरं—जान्वीर स्थाने कन्दीऽनुरीधात् पठितम्।

न्यस्तं जले महाश्रय्यं तत्चणात् पुष्पसभावः ॥ ३॥ यानि कानि च वीजानि जनजस्यनजानि च। अङ्गलीतेलिसानि तानि तान्युद्भवानि च॥४॥ यत्विचित् काण्डमूलीयं पत्रपुष्पफलादिकम्। यङ्गलीतैललिप्तन्तु तुल्यरूपं भवेत् ध्रुवम् ॥ ५ ॥ गुञ्जाफलाम्ब्पिष्टञ्च लेपयेत् पादुकाह्यम्। विना क्लेगं नरी गच्छेत् क्लोग्रमेकं न संग्रय:॥६॥ लघु दारमयं पीठं गुज्जापिष्टेन लेपयेत्। गुष्कमन्तर्जनैः सार्बं उपविष्टं न मज्जिति ॥ ७॥ गुञ्जावीजं वचोन्मुक्तं चूर्णं भाव्यं रुमूत्रकैं:। सप्तवारं ततः काष्ठं लिप्तमङ्गलसभावम्॥ तैलमादाय तिल्लप्तं पूर्ववत्पादुकागितः ॥ ८ ॥ वर्त्तः सर्जरसैः पूर्णा तैललिप्ता जले स्थिता। च्चालिता दीपवर्त्तिस्तु ज्वलखेव न संग्रयः॥ ८॥ कटुतुम्बुग्रस्यतैलेन पारावतचटो द्ववम्। मलञ्ज शिखिमूलञ्ज पेषितं गर्दभास्थिजम्॥ ललाटे तिलकं क्षत्वा तेनादृश्यः पुनः पुनः। दशाऽऽस्यो जायते तेन यथा लङ्केखरी नृपः ॥ १०॥ शियुवीजोि सितं तेलं पारावतपुरीषकम्। वराहस्य वसायुक्तं शिखिमूलं समं समम्॥ ललाटे तिलकं तेन यः करोति स वै जनैः। दृश्यते पञ्चवक्कोऽसी यथा साचान्महेश्वरः॥ ११॥ रात्री क्षणचतुई ग्यां मयूरास्ये विनिचिपेत्। भागींवीजं सदं क्षणां क्षणभूमी निवापयेत्॥ तज्ञातभागीं संग्रह्म तया कुर्यातु रज्जुकम्। तद्रज्ञुबद्धः पुरुषो मयूरो दृश्यते जनैः ॥ १२ ॥

तद्योगे क्षण्यमाजीरवक्के चैरण्डवीजकम्। तज्जातरण्डवीजानामेकं वक्कोण धारयेत। तं प्रपश्चिन्ति मार्जारं मनुष्या नात्र संश्यः ॥ १३ ॥ श्रुगालमम्बान् मेषां यदिने वापयेत् पृथक्। मयूरास्ये तदा भागीं जाता सिडिस ताहशी॥ १४॥ रत्तगुज्जाफलं वाप्यं स्तीकपाले च सेचयेत्। जातं फलं चिपेदक्को स्त्रीरूपो दृश्यते पुमान्॥ १५॥ नरादिसर्वजन्तृनां याद्यं सद्योधतं शिरः। तच क्रपाचतुर्देग्यां सर्ववीजान्वितं वपेत्॥ मङ्गीधुस्तूरवीजानि गुलां निम्बफलैर्युतम्। निखनेत् क्षणभूम्यान्तु बलिपूजासमन्वितम्॥ सेचयेत् फलपर्थन्तं यावदीजानि चाहरेत्। तत्तदीजे क्षते वक्को तत्तद्रूपं भवेत् ध्रुवम्॥ दत्येवं कीतुकं लोके नानारूपस्य दर्भनम्। मुत्तवीजो भवेत् सुस्यो नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १६ ॥ हरितालं शिलाचूणं ग्रङ्गलीतैलभावितम्। तिज्ञपवक्काशिरसं स्थितं पश्यति विक्नवत्॥ तथैवाङ्गोलतैलेन स्मुरत्येव न संग्रयः॥ १७॥ सिन्द्ररं गन्धकं तालं समं पिट्टा मनःशिलाम्। तिज्ञप्तवस्त्रप्टक् चासी रात्री संदृष्यतेऽग्निवत्॥ टूरेऽपि स्थितलोकैय रात्री तु कोतुकं महत्॥ १८॥ खद्योतभूलताचूणें ललाटे तिलके कते। रात्री संदृश्यते ज्योतिस्तस्मिन् स्थाने तु कौतुकम् ॥१८॥ मुनिपुष्परसै: पुष्पैर्घृष्टा स्रोतोऽञ्जनं तत:। अञ्जिताची नरः पश्येनाध्याक्ने तारका मयम्॥ २०॥ वाप्यं वार्त्ताक्ववीजञ्च नृकपाले मृदा सह।

तज्जातवीजं मूलं वा मुखे प्रिचिप्य मानवः।

ग्रतयोजनपर्थ्यन्तं पथ्येत् सर्वं यथाऽन्तिकम्॥ २१॥

वारिमचिकया सार्षं तज्जलं यस्य भच्चणे।

दीयते निःसरेत् तस्य ह्यधोवायुस्तु कौतुकम्॥

मक्तमु।—"श्रीं नमो भगवते क्ट्राय उड्डामरेखराय।

क्रिपाय इस इस नृत्य नृत्य तुद तुद नानाकौतुकेन्द्रजाल-

वजरूपाय इस इस नृत्य नृत्य तुद तुद नानाकीतुर्वेन्द्रजाल-दर्भकाय ठः ठः स्वाहा"। अनेन सर्वयोगानिभमन्त्रा सिंडिः। अष्टीत्तर-शतजपेन पुरयरणम्॥ २२॥ '

# श्रय काम्यसिद्धिः।

पुष्यार्के तु समाग्रह्य मूलं खेतार्कसम्भवम् ।
ग्रङ्गुष्ठप्रमितां तस्य प्रतिमान्तु प्रपूज्यत् ॥
गणनायस्वरूपान्तु भक्त्या रक्ताखमारजै: ।
कुसमैद्यापि गन्धाद्यैद्विष्याशी जितेन्द्रिय: ॥
पूजयेद्वाममन्त्रेष तद्वीजानि नमोऽन्तकै: ।
यान् यान् प्रार्थयते कामान् मासैकेन तु तान् लभेत् ॥
प्रत्येकं काम्यसिद्धार्थं मासमेकं प्रपूजयेत्॥

गणेशवीजनाह। — "पञ्चान्तकं श्रों श्रन्तरी चाय खाहा"। धनेन पूज्येत्। पञ्चान्तकं शशिधरं वीजं गणपते विदुः। "श्रों क्रों पूर्वदयां श्रों क्रों फट् खाहा"। धनेन मन्तेण रक्ताश्वनारपृष्पाणि इतनौद्रयुतानि जुडुयात्। वाञ्छितं ददाति। "श्रों क्रों यों मानसे सिंडि-करि क्रीं नमः"। धनेन मन्तेण रक्तकुसुममंकं ज्ञा नित्यं चिपेद। एवं लचं जपेत्। तती भगवती वरदा श्रष्टगुणानामेक गुणं ददाति।

अय वाकासिडि:।

क्रितिकायां सुहीवृत्त-वन्दाञ्च धारयेत् करे। वाक्यसिडिर्भवेत् तस्य महाञ्चर्यमिदं स्मृतम् ॥१॥ श्रनेन ग्राहयेत् खाती-नचने वदरीभवम्। वन्दाकं तत्करे धृत्वा यहस्तु प्रार्थ्यते जनैः॥ तत्चणात् प्राप्यते सर्वं मन्त्रमनैव कथ्यते। "श्री श्रन्तरीचाय खाहा"। श्रीन ग्राहयेत्॥ २॥

भय ग्रहभन-गृहप्रवेश-चौर-देवदानवादिप्रकाशनम्।
वन्दां शाखीटहच्छां गोचुरं लचणापदम्।
ग्रजाचीरेण पिष्टा च ललाटे तिलके कते॥
प्रकाशं जायते सर्वं तच्छृणुष्व समासतः।
धनानि यत्र वा सन्ति ये वा चौरादिकास्तथा॥
गुप्तवेशा महात्मानो गन्धवी यचिणीम्बराः।
जन्तुर्धातुय हचाया मर्च्यलोके स्थिता भ्रवम्॥१॥
ग्रश्लेषायां शनेवीरे सायं दाडिस्ववीजकम्।
रसं संग्टह्य तुवरीं क्षणाष्टम्याञ्च भूमिजे॥
पद्ममूलं मङ्गलेऽहन्यञ्चनं कारयेत् सुधीः।
प्रकाशं पूर्ववत् सर्वं जायते नात्र संश्यः॥
इति गुप्तधनादिप्रकाशनम्॥ २॥

#### श्रय धनुर्विद्या।

दन्द्रेण या विद्या पूर्वमर्जुनं प्रति कथिता सा सप्तविंग्रत्य-इरा। "कालायुत रक्ताधरे श्रींकारश्रतगुण श्राधारे एकादश-उत्तसहस्त"। दन्द्र श्राज्ञा। एतन्मन्त्रेण शरं धृता श्राकर्णं पूरिते उनुषि शरं मेलयेत्। सहस्रधा भवति। कलौ दश्रधा॥१॥

महादेवेन इन्द्रं प्रति या विद्या कथिता सा सप्तदशाचरा। चान्दधरगुण रेख काण्ड ब्रह्मज्ञान श्रीं श्रीं श्रीं"। एतन्मन्त्रं ।ठित्वा पञ्चधा शरं तदाचिषेत् पूर्ववद्वविति।

सर्पात् कवलितं भेकमर्डमात्रं समुद्वरेत्। कित्वा सर्पस्य मुख्डच श्रातपे शोषयेत् पृथक्॥ पिष्टा प्रथग्वटी कार्या लच्चवाणप्रदा सृता।
लच्चे च भेकतिलकं ग्राग्ने सर्पमुण्डनम्॥
दत्त्वा तिलकमाकर्णगुणं धनुषि वेधयेत्।
लच्चस्य तिलकं बाणो विध्यत्येव न संग्रयः॥

त्रय धनधान्याचयकरणम्।

मध्ये च पूर्वफलान्यां दाड़िमी हचसभावा।
हचादनी धने देया अच्यं भवति भ्रुवम्॥१॥
वन्दाकन्तु मधा-मध्ये बहुवारक हच्च जम्।
धान्यागारे प्रदातव्यमच्यं भवति भ्रुवम्॥२॥
श्रेफालिकाया वन्दाकं हस्तायाञ्च समुहरेत्।
धान्यमध्ये तु संस्थाप्यं तहान्यमच्यं भवेत्॥३॥
भरख्यां कुश्ववन्दाकं ग्रहीत्वा स्थापयेद् बुधः।
सम्पूर्णधनधान्यान्तःस्थः करोत्यच्यं भ्रुवम्॥४॥
उडुम्बरस्य वन्दाकं रोहिष्यां ग्राह्येद् बुधः।
स्थापयेत् सञ्चितार्थान्तः सदा भवति चाच्यम्।
मन्त्रेण मन्त्रितं कत्वा मन्त्रमत्रैव कथ्यते॥
"श्रीं नमो धनदाय स्थाहा"॥५॥

ना पगदाय लाहा ॥ र ॥

## अय श्रुतिधर-कवित्वादिकरणम्।

पच्चाष्टतम्।

पथ्या वचा कणा ग्रग्ही मैन्धवं मरिचं वचा। शिग्रुं प्रतिपत्नं चूर्णं द्वाविंग्रतिपत्नं घतम्॥ घताचतुर्गुणं चीरं दत्त्वा सर्वं विपाचयेत्। घतग्रेषं पिवेत्रित्यं वाद्मेधास्मृतिवुद्धिदम्॥१॥

ब्राह्मीष्टतम्।

वचा ब्राह्मीफलं कुष्ठं सैन्धवं तिलपुष्पिकाम्। चूर्णियित्वा द्रवैभीव्यं ब्राह्मीमण्डूकसभवैः॥

दिनमेकं ततः पाच्यं घृतं कल्का चतुर्गुणम्। ष्टता चतुर्ग्णं देयं चीरं ब्राह्मीरसाचितम्। ष्टतशिषं समुत्तार्थ लिहेदा बुदिदायकम्॥ १॥ दे हरिद्रे वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्। यजाजी यजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम्॥ एतानि समभागानि स्सम्पूर्णीन कारयेत्। तचूर्णं सर्पिषा लेख्यं कार्षिकं वाक्यग्रहिकत्। भचयेनासमेकन्तु वृहस्पतिसमों भवेत्॥ २॥ ब्राह्मी-मुग्डी-वचा-ग्रग्ठी-पिप्पली-समचूर्णकम्। मधुना भच्चयेत् कर्षं नष्टवाक् गुडवाग्भवेत्॥ ३॥ वचाऽस्थि करवी गुन्द्रा मुषली मधुकं वला। श्रपामार्गस्य पञ्चाङ्गं चौद्रेण पूर्ववत् फलम् ॥ ४ ॥ त्रपामार्गः वचा ग्रुग्ठो विडङ्गः ग्रङ्गप्रप्यिका। ग्रतावरी गुड़्ची च समं चृख्यं हरीतकी ॥ ष्टतेन भच्चयेत् सर्वे नित्यं ग्रन्थसहस्र**धक् ॥ ५** ॥ श्रखगन्धा चाजमोदा पाठा कुष्ठं कटुवयम्। शतपुष्पी विश्ववीजं सैन्धवञ्च समं समम्॥ एतदर्डं वचा चूर्णं मेलितं मधुसर्पिषा। भचयेत् कर्षमात्रन्तु जीर्णान्ते चीरभोजनम्। सइसग्रयधारी स्याद् ब्रह्मचारी कविभवत्॥ ६॥ लिन्नेज्जारोतिपातीतीलं वलया वचया सह। स्तोनं स्तोनं क्रमणैव यावित्रष्तचतुष्टयम्। निर्वात मधुरासी स्याद ब्रह्मचारी कविभवत्॥ ०॥ स्थिस्य ग्रहणे वेन्दोः समन्त्रामाहरेदचाम्। चूर्णितां सघृतां भुक्ता सप्ताइं वाक्पतिभवित्॥ इत्येवमादियोगानां मन्त्रराजी शिवोदिता।

जक्षा मन्त्रेण सिद्धिः स्यात् पश्चात् तैरेव भच्चयेत् ॥

मन्त्रमः "श्रीं च्लं हयशीर्षवागीश्वराय नमः" । महस्वजपः ॥८॥

घात्रीफलरमैर्भाव्यं वचाचूर्णं दिनाविध ।

घृतेन लेहयेन्निष्कं वाक्ग्रहिस्मृतिवृद्धिक्कत् ॥ ८ ॥

वचाचूर्णं पिवेत् चीरैः पुनर्मन्त्रेण मन्त्रयेत् ।

भोज्यचीरान्नशाल्यनं सप्ताहाद् वाक्पतिर्भवेत् ।

सप्तमे श्रष्टमे चैव साचात् श्रुतिधरो भवेत् ॥ १० ॥

वचाचूर्णं पिवेत् चीरैघृतैः चीद्रैश्व यत् पुनः ।

सप्ताहक्रमयोगेन लेख्यं स्थात् पूर्ववत् फलम् ॥ ११ ॥

पृष्यार्कयोगे संग्रद्धा खेतार्कस्य तु मूलकम् ।

छायाश्रष्ट्रमन्तु तचूर्णं मन्त्रेणवाभिमन्त्रितम् ॥

कर्षमर्षपत्र वापि प्रातक्ष्याय यः पिवेत् ।

तन्नेण सिप्पा वापि जीर्णान्ते चीरभोजनम् ।

एवं सप्ताहमाचेण कविर्भवित बालकः ॥

"श्रीं महिष्वराय नमः" । श्रीनाभिमन्त्र पिवेत् ॥ १२ ॥

"श्रीं महिष्वराय नमः" । श्रीनाभिमन्त्र पिवेत् ॥ १२ ॥

#### अय किन्नरीकरणम।

विभीतकं कणा ग्रण्ही सैन्धवं त्वक् समं समम्।
गोमृत्रेण पिवेत् कर्षं किन्नरे: सह गीयते ॥ १ ॥
जातीपत्रं कणा लाजा मातुलुङ्गदलं मधु।
पलं लेख्यं भवेन्नाद: किन्नराधिक एव च ॥ २ ॥
देवदारु कणा व्योषं ग्रताह्वा पत्रकं निगा।
वचासैन्धव-शिगृत्य-मूलं पेष्यं समं समम् ॥
कर्षेकं मधुसपिभ्यां मासं लिद्यात् सदा तु य:।
काण्डण्डिभवेत् तेन किन्नरे: सह गीयते ॥ ३ ॥
ग्रण्ही च ग्रकरा चैव चीद्रेण सह संयुता।
कोकिलस्वर एव स्थाद् गुटिका भुक्तिमात्रत:॥ ४ ॥

यार्द्रकं रक्षकोरण्ट बला ब्राह्मी वचा तथा।
एतचूर्णं समांग्रेन पलैकं वारिणा पिवेत्॥
माघमासे चतुर्द्रग्यां क्षणापचे दिसप्तकम्।
गन्धवंसदृशं गानं कोकिलानां खरो यथा॥ ५॥
निर्गुण्डीमूलचूर्णन्तु तिलतैलेन लिह्मते।
काण्ठग्रदिभंवेत् तस्य किन्नरै: सह गीयते॥ ६॥

षध चनुष्यम्।

वर्षावाले काकमाची समृला तैलपाचिता। खादेत् समासतय जुर्गृ भ्रदृष्टि भवेत् समम्॥१॥ खेतं पुनर्नवामूलं घतष्टष्टं सदाञ्जयेत्। जनसावं निचन्याग्र तन्मूलञ्च निशायुतम्। श्रज्जने नेवरोगाणि न भवन्ति कदाचन ॥ २ ॥ दिनिशा सैन्धवं ब्रूग्यं वीजं कारज्जकं समम्। सङ्गीद्रवैर्युतं वापि तिमिरं पटलं हरेत्॥ ३॥ ग्रस्वुकं वा वराटं वा दग्धं ग्रष्कं विच्णितम्। श्रञ्जनाववनीतेन हन्ति पुष्पं चिरन्तनम् ॥ ४॥ त्रजामूत्रेण भूधावीमूलं पिष्टा च वर्त्तिका। नवनीतसमायुक्ता इन्ति पुष्यं चिरन्तनम् ॥ ५ ॥ श्रञ्जनात्राश्येत् पुष्यं चीद्रैर्वा खर्णमाचितम्। मरीचमर्दनात रत्ते \* र्वर्त्ती रात्रान्धतां जयेत ॥ ६ ॥ जयन्ती वाऽभया वाय घृष्टा स्तन्यैर्निशास्त्रहत। शोणितं चर्मकोपच मांसहिडिच नाश्येत्॥ ७॥ ग्रजस्य क्षरण्मांसान्तः पिप्पलीं मरिचं चिपेत्। भावयित्वा घृते पत्ता घटिकान्ते समुद्रित्। मध्याज्यस्तन्यसंपिष्टं रात्रात्यहरमञ्जनम्॥ ८॥

<sup>\*</sup> अव रत्तीरित्यनेन खीयरतीरित्यर्थ:।

श्रजापित्तगतं व्योषं धूमस्यने विश्रोषयेत्। चिरविल्वरसैर्घृष्टं रात्रात्यहरमञ्जनम् ॥ ष्टतेन पुष्पं मधुनाऽश्रुपातं तैलेन कर्ग्डं तिमिरं जलेन। रात्रात्यकं काञ्जिकया निहन्ति पुनर्नवाक्षनेत्रमञ्जरी स्थात्॥८॥ चन्दीदया वटी। हरीतकी वचा क्षष्ठं पिष्पली मरिचानि च।

विभीतकस्य मज्जा च ग्रह्वनाभिर्मनःशिला॥
सर्वमितत् समं कत्वा कागीचीरेण पेषयेत्।
नाग्रयेत् तिमिरं कण्डूं पटलान्यर्वुदानि च॥
श्रिधिकानि च मांसानि येन रात्री न पश्यति।
श्रिपि दिवार्षिकं पुष्यं मासेनैकेन नाग्रयेत्॥
वर्त्तिश्वन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी।
कायाग्रष्का वटी कार्या नाम चन्द्रोदया वटी॥१०॥

यस्तैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी सायं समग्नाति इविर्मधुभ्याम् । स सुचते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथा चीणधनो मनुष्यः ॥ ११ ॥

श्रय कर्णस्य वाधियी-क्रमिनाशनम्।

शिखरिचारयुतेन जलक्षतकल्केन साधितं तिलजम्। अपहरति कर्णनादं वाधिर्थेञ्चापि पूर्णतः॥१॥

दशमूलकषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
एतत् कल्कं प्रदायेव बाधिर्ये परमौषधम्॥ २॥
नीलीव्रध्नरसे तैलं सिष्ठं काञ्चिकसंयुतम्।
कादुणापूरणात् कर्णे निःशेषक्षमिनाश्चनम्॥ ३॥
दन्तेन चर्वयेन्मूलं नन्यावर्त्तपलाश्योः।
तन्नालीपूरिते कर्णे ध्रुवं गोमाच्चिकां जयेत्॥ ४॥
तास्बूलभच्चणं क्रत्वा तत्र सन्दापयेद् वुधः।
तत्र स्थितास्तु क्रमयो नाश्मायान्ति निश्चितम्।

मुषली वागुजीचूणं खादेडाधिर्थ्यशान्तये॥ ५॥
मनःशिलाऽपामार्गोऽय मूलं चूणं मधुष्ठुतम्।
मचयेत् कर्षमात्रन्तु विधरत्वप्रशान्तये॥ ६॥
लग्रनामलकं तालं पिष्ठा तैले चतुर्गुणे।
तैलाचतुर्गुणं चीरं पाच्यं तैलावशिषितम्॥
तत् तैलं निचिपेत् कर्णे बाधिर्थञ्च विनाशयेत्॥ ७॥
भय कर्णपालीवर्षनम्।

सिडार्यं वहतीचैव द्यपामार्गं समं समम्।
कागीचीरै: प्रलेपोऽयं कर्णपालीं विवर्डयेत्॥१॥
मूपलीकन्दचूर्णेन्तु महिषीनवनीततः।
लोड़येत् स्निग्धभाण्डे तु धान्यराणी निवेशयेत्॥
मप्ताहादृत्यितं लेप्यं कर्णपाली विवर्डते॥२॥
गुज्जामूलं कतं चूर्णं महिषीचीरसंयुतम्।
स्ततं दिध ततः कुर्याद्रवनीतं तदुद्भवम्॥
कर्णयोर्लेपनं नित्यं वर्डते नात्र संग्रयः॥३॥
श्रद्धगन्या वचा कुष्ठं गजपिप्पलिका समम्।
महिषीनवनीतेन लेपात् कर्णं विवर्डयेत्॥
वराहोत्येन तैलेन लेपात् कर्णं विवर्डयेत्॥
चर्मचटकरक्तेन लेपात् कर्णं विवर्डयेत्॥५॥

अय दल्डढ़ीकरणम्।

यमिचञ्चा जया पुङ्गा मूलं वा हयमारजम्। चलदन्ता दृढ़ा यान्ति प्रत्येकं दन्तधावनात्॥१॥ ताम्मपात्रे चणं पाच्यमभयाचूर्णकं मधु। पिष्ठा च गुटिका कार्या दन्तिर्धार्या क्रमिं हरेत्॥२॥ दन्तिर्धार्यं सुहीमूलं क्रमिनाशं करोत्यलम्। कासीमं ष्टतसंपकं धार्यं दन्तैर्व्ययापहम्॥३॥

विशालायाः फलं चूर्णं तप्तली होपरि चिपेत्। तब्मसृष्टदन्तानां कीटपातो भवत्यलम्॥ ४॥ जातीकोलकपत्रं वा चर्वयेत् प्रातरुखितः। स्थिराः सुयनिता दन्तास्तत्नाष्ठेदैन्तधावनात्॥ गुञ्जामूलञ्च कर्णाभ्यां बद्घं दन्तक्तमिप्रणुत्॥ ५॥ तिसूतं रीप्यमेकञ्च जम्बीररसमर्दितम्। जम्बीरफलमध्यस्यं वस्ते बड्ढा त्राहं प्चेत्॥ चीरमध्ये समुद्रत्य गुटिकां तां ततः पुनः। भावितं भानुदुग्धेन तालकं सूच्मपेषितम्॥ तन्मध्ये गुटिकां चिष्ठा वस्ते बह्वा दिनत्रयम्। मधुभाग्डगतात् पश्चादु इत्य चास्यधारितम्॥ घर्षणाचिलतान दन्तान सप्ताहात क्षत्ते द्वान ॥ ६ ॥ तालकं भानुदुग्धेन दिनमेकं विमद्येत्। तहर्भे रसहिमोत्यां पिण्डिकां तारसंयुताम ॥ जम्बीरफलमध्यस्यां दोलायन्त्रे त्राहं पचेत्। तैलचीद्रयुते भाग्डे समुद्रुत्य विधारयेत्। दन्तरोगान् हरेलार्वान् घर्षणाचिता दृढाः॥ ७॥ चलद्दन्तस्थिरवरं कार्यं वकुलचर्वणम्। वकुलस्य च वीजन्तु पिष्टा को शोन वारिणा॥ मुखे च धारयेडीमान् दन्तदार्ह्याकरं परम्॥ ८॥ वकुलस्य त्वचः कायमुणां वत्नेण धारयेत्। हुदाः स्युचलिता दन्ता सप्ताहानात संगयः ॥ ८ ॥

अथ अयाहारकरणम्।

व्रभ्नतेनापि वृचस्य पीठं क्तलाऽऽसने स्थितः। योऽसी भुङ्ते घृतैः सार्षं भोजनं भीमसेनवत्॥१॥ सम्यायां भ्रचवृचस्य कर्त्तव्यमभिमन्वणम्। प्रातः पुष्पाणि संग्रह्म मालां शिरिम धारयेत्॥
कीपीनं संपरित्यज्य मुङ्केऽमी भीममेनवत्॥ २॥
उद्भान्तपत्रमादाय किपलाष्वानदन्तकम्।
कव्यामेव स्वयं बड्ढा भीजने वकवद्भवेत्॥ ३॥
ग्रहीत्वा मन्त्रितान् मन्त्री विभीतवरपद्मवान्।
ग्राक्रम्य दिल्लणां जङ्ढां विंग्रत्याह्नारभुग् भवेत्॥
मन्त्रा—"ग्रीं,नमः सर्वभूताधिपतये ग्रम्स ग्रीषय
पिय भैरवीचाज्ञापयित स्वाह्याः। उन्नेशीगानामयं मन्तः॥ ४॥
ग्रधरं क्रकलामस्य शिखास्थाने विवन्धयेत्।
वायुपृत्र द्वाय्य्यमसी भुङ्को न संग्रयः॥
"ग्रीं नाभिवेगीन उवंशी स्वाह्याः। भवेनित ॥ ५॥

#### यथ यनाहारकरणम्।

यन्त्राणि क्रकलासस्य मज्जां कारञ्जवीजिकाम्।
पिष्टा तद्ग्लिकां कत्वा विलोहेन तु विष्टिताम्॥
तां वक्ते धारयेट् योऽमी चुत्पिपासा न वाधते।
"श्रीं शां चां शरीरमस्तमाकर्षय स्वाहा"॥१॥
पद्मवीजं महाशालीन् क्रागीटुग्धेन पाचयेत्।
साज्यं तत्पायमं भुक्ता दादशाहं चुधापहम्॥२॥
उड्म्वरस्य जम्बीरशालिशिम्बीशिरीषजम्।
वीजं संचूर्ण्यमारम्य भुक्ता पत्तं चुधापहम्॥३॥
श्रीडुम्बरफलं पक्तमिङ्ग्दीतैलभावितम्।
भुक्ता मासात् चुधां हन्ति पिपासाञ्च न मंश्रयः॥४॥
श्रपामार्गस्य वीजानि दुग्धाज्याभ्यां प्रपाचयेत्।
पायसं क्रागलीचीरैभुक्ता मासात् चुधापहम्॥
"श्रीं नमो भगवते क्ट्राय श्रम्हतार्कमध्ये संस्थिताय मम

अय पादुकासाधनम्।

श्रवनालेङ्गुदीतेलै: पेषयेत् खेतसर्घपान् । तिस्तरहस्तपादस्तु योजनानां ग्रतं त्रजेत् ॥ १ ॥ श्रद्भोलतैलसंपिष्टां खेतसर्घपलेपिताम् । पादुकामुष्ट्रचर्मोत्यां समारुद्ध ग्रतं त्रजेत् ॥ २ ॥ श्रद्भालस्य तु मूलन्तु तिलतैलीन पाचयेत् । पादं संजानुपर्यन्तं लिक्षा दूराध्वगी.भवेत् ॥

"श्रीं नमस्रिष्डिकाये गगनं गगनं चालय वेशय हिलि हि विगवाहिनि ह्रीं स्वाहा"। उत्तयीगदयसायं मन्तः॥३॥

गैरिकं सिन्धुजञ्जैव हयमारी च मालती।
समं रुट्रजटा चैव विदार्थ्या सह पेषयेत्॥
तिक्षप्रपादः सहसा सहस्रयोजनं व्रजेत्।
बलीपलितनिर्मुक्तो यावदाभूतसंप्रवम्॥

भव मनः।—"श्रों नमी भगवते रुद्राय नमी हरितगदाधरा त्रासय त्रासय चीभय चोभय चरणे स्वाहा"॥ ४॥ कोकजिह्वां ब्रह्मचारी गुड़लोहिन वेष्टयेत्। गच्छिति मुखे प्रचिष्य योजनं शतमेव च॥ श्रागच्छिति तदा तूर्णं स नरो नात्र संशय:॥ ५॥

अय अनाविष्टि इरणम्।

"हुं श्रीं हुं" इसं मन्तं जलं प्रविश्य यदि जपति तदा श्रनाह हरति।

कामरते दादशीपदेश:

# अय निधिदर्शकमञ्जनम्।

ग्रज्जनानान्तु सर्वेषां मन्त्रं साध्यमघोरकम् । विना घोरेण विद्याय नाशयन्ति परे परे ॥ १ ॥ यचाणां मूर्त्तिमात्रित्य जपेदष्टसहस्रकम् । ततः सर्वविधानानि सुसाध्यानि च ग्राहरेत्॥ श्रीं बहुरूपं विश्वरूपं विद्याधर-महिश्वरम्। जपाम्यहं महादेवं सर्वसिडिप्रदायकम्॥

शव नल: ।—"श्रीं नमी रुद्राय रुद्ररूपाय नमी वहुरूपाय नमी विश्वरूपाय नमी विश्वात्मने नमस्तत्पुरुषयचाय नमी यच्चरूपाय नम एकसी नम एकाय नम एक रौरवाय नम एकयचाय नम, एकेच्चणाय नमी यचाय नमी वरदाय नमः तद तुद स्वाहा"। सोपवासी जितेन्द्रियी विडिभंवित ॥ २॥

> इज्जलानां पत्रकस्य ग्राह्यो यद्गेन पावक:। दीचितस्य ग्रेहं श्रेष्ठं चितायान्तु विशेषत:॥ रजकस्य ग्रहादापि तस्करस्य ग्रहाच य:॥

"श्रों ज्वलितिवयुते स्वाहा" विश्ववहणमनः। "श्रों नमो भगवते वासुदेवाय बबन्ध श्रोपतये स्वाहा"। वनेन विर्मित्ति नन्देत्। "श्रों नमो भगवते सिडिसाधकाय ज्वल ज्वल पत पत पातय पातय बन्ध बन्ध संहर संहर दर्शय दर्शय निधिं मम"। वनेन दीपं ज्वालयेत्। "श्रों ऐं मन्त्रसिडिभ्यों नमो विश्वभ्यः स्वाहा"। वनेन कच्चलं याद्यम्। "श्रों कालि कालि महाकालि रचेदमञ्जनं नमो विश्वभ्यः स्वाहा"। वनेन मन्त्रेण यिलिबिद वन्द्रस्यमिनन्त्रयेत्। "श्रों सर्वे सर्वसिहिते सर्वोष्ठिप्तर्याहिते विरते नमो नमः स्वाहा"। वनेन मन्त्रेण प्रयाहिते विरते नमो नमः स्वाहा"। वनेन मन्त्रेण प्रयाहिते विरते नमो नमः स्वाहा"। वनेन मन्त्रेण वर्षाणा मृत्विकां मन्त्रयेत्। श्रादौ हमश्वाकया नेवमञ्जयिवा ततस्रयेव श्वाकया वर्षान्त्रयेत्। ३॥

श्रञ्जयित्वाऽज्जनं पद्यात् सप्तधारस्य पत्रकम् । बन्धयेत् प्रतिनेत्रन्तु श्रच्छिद्रं तदधोमुखम् ॥ तस्योपरि सितं वस्तं पष्टजं वाऽय वन्धयेत् । नाज्जादिधकचीनाङ्गं श्वदंष्ट्रज्ञाग्निदग्धकम् ॥ सम्पूर्णाङ्गं ग्रचिं स्नात्वा दिदिनं नक्तभोजनम्। चौरशात्यनभोक्तव्ये दिदिनान्ते ततोऽज्वयेत्। ग्रज्जितस्य शिखावन्यः कर्त्तव्यो मन्त्र उचते॥

अव मलः।—"श्रीं नमो भगवते रुद्राय श्रीं नत नत्र महित्रन विहेत्र विहेत मिहेत्र मिहेत्र हर हर रच रच पूजिते यच-कुमारि सुलोचने स्वाहा"।

यचाणां मूर्तिमाश्रित्य उदयास्तं मनुं जपेत्। पूर्वमेव समाख्यातं शिखाबन्धं शिवोदितम्॥ अयं सर्वजनेन ज्ञातव्यः॥ ४॥ शरलाले तु संयाद्या भूलता रक्तवर्णका। सिन्दूरपूरितां क्रत्वा रिवतू सेन सेपयेत्॥ यतिक्षणितिलात् तैलं याच्येदाच्येत् सुधी:। तैलवत्ती प्रयोगेण कज्जलञ्चोत्तरायणम ॥ याह्यिलाऽञ्जनं चन्नुनिधिं पश्यति साधकः। प्रमाण्ड विजानाति गरह्याति च यथेष्टकम्॥ ५॥ यतिक्षण्य काकस्य जिह्वामांसं समाइरेत्। वेष्टयेद्रवितूलेन वर्त्तिं तैलेन कारयेत्॥ मजाप्टतेन दोपन्तु प्रज्वाल्यादाय कज्जलम्। अञ्जिताची नर्स्तेन निधिं पश्यति पूर्ववत् ॥ ६ ॥ सप्तधा पद्मसूत्राणि भावयेदिचुजै रसै:। उद्रुख ज्वालयेहीपं ऋङ्गुलोतेलसंयुतम्॥ याच्चं पुष्यतयोदश्यां कज्जलं निधिदर्शकम्। सर्वाञ्जनिमदं सिखं शम्भुना परिकोत्तितम्॥ ०॥ दीपकज्जलयोः पात्रं कर्त्तव्यं नरमुख्जम्। सर्वेषां कज्जलानान्तु सत्यं स्थाच्छिवभाषितम्॥ ८॥ रक्षेन क्षवलासस्य भावियत्वा मनःशिलाम्।

तेनैवाज्जितनेत्रस्तु निधि पश्चिति भूगतम् ॥ ८॥
ग्रिहोत्वा चानुराधायां वन्दां ग्राखोटवृज्जाम्।
गोरोचनां समं पिष्टा त्वज्जनं निधिदर्गकम्॥ १०॥
एतत् सर्वाज्जनं ख्यातं प्रसिष्ठं श्विवभाषितम्।
ग्रगस्यवृज्जां कुर्यात् पादुकां निधिदर्शिकाम्॥
पादुकाऽज्जनयोगेन सिद्धियोगा भवन्ति वै॥ ११॥
मक्ष्य।—"श्रीं नमो भगवते स्ट्राय नम उड्डामरेखराय
शिलि शिलि धूमले नागवेतालिनि स्नाहा"। भनेन पादकामिन

तुलसीमूलिकां पृष्ये शनिवारे समुद्वरेत्।
निष्पिष्य काष्त्रिकेनाथ मधुना पुनरञ्जयेत्॥
पादजातज्जमारो वा कन्यका वापि दृश्यते।
तदानीं नात्र सन्देहः पाताललिखका अपि॥
"श्रीं नमो भगवते क्द्राय कज्जललिपाञ्चनं दर्शय दर्शय खाहा ठः ठः"। अनेन मलेण कज्जलमिमल्योत्॥ १२॥
खन्यमाने च सर्पाय निःसरन्ति पदे पदे।
श्रीषधेन विना तेभ्यो भयं स्यान्मन्त्रिणामपि॥
तस्मादीषधयोगेन पादलेपेन तान् जयेत्॥ १३॥

मन्वयेत।

भौषधन् ।— त्रर्कस्य करवीरस्य उत्पत्तस्य च मूर्लिकाम् । पिष्टा पादप्रलेपाच दूरे गच्छन्ति पन्नगा:॥ १४॥

अय अहस्यीकर्णम।

चतुर्लेचिमितं मन्त्रं श्मशाने प्रजपेच्छुचि: । लग्नवृत्तिस्ततस्तुष्टा पदं यच्छिति यचिणी ॥ तेनावृतो नरोऽदृष्यो विचरेत् पृथिवीतले । निधि पश्यित गर्ह्णाति न विष्नै: परिभूयते ॥

विच्छ। — "ग्रीं क्रीं क्रीं स्प्तें स्प्रशानवासिनी स्वाहा" ॥ १॥

निशाचरं निशिध्यात्वा जप्तव्यं वामपाणिना।

ग्रदृश्यकारिणीं विद्यां लच्चजाप्ये प्रयच्छिति॥

मनच्चा—"ग्रीं नमो निशाचर महामहेश्वर मम पर्ययटतः

सर्वलोकलोचनानि बन्धय बन्धय देव्याज्ञापयति खाद्या"॥२॥

रात्रौ क्षण्चतुर्द्ध्यां समयानान्तःशिवालये।
बिलनान्योपहारेण कुर्य्यादर्चनमुत्तमम्॥
ततो दीपाङ्ग्लीतैलैर्वित्तिः स्यादर्कतन्तुभिः।
प्रज्वाल्य नृकपाले तु तत्पात्रे धृतकज्जलम्॥
प्रज्वयेत्रेत्रयुगलं देवैरिप न दृश्यते॥३॥
प्रक्षियत्रिकापिस्य नृकपालेषु पञ्चसु॥
नरतैलेन दीपाः स्युः कज्जलं नृकपालतः।
पञ्चस्यानीयजातन्तु एकीकुर्यात् ततः पुनः।
मन्त्रयित्वाऽज्ञयेन्नेचे देवैरिप न दृश्यते॥४॥
मन्त्रयत्वाऽज्ञयेन्नेचे देवैरिप न दृश्यते॥४॥

मन्नमु।—"श्रीं हुं फट् स्त्राहा"।

कालि कालि महाकालि मांसग्रोणितभोजिनि !।

रक्तक्रणामुखे देवि ! मा मे पथ्यतु मानुषः॥ ४॥

"ग्रीं हुं फट् स्वाहा" एतन्मलायुतजपात् सिडी भवति । उक्ताः सर्वे श्रद्धग्रीकरणप्रयोगाः । श्रमेन मल्लणाष्टीत्तरणताभिमल्लिताः श्रङ्गुलीतैलप्रयोगाः सिडा भवन्ति ॥ ५ ॥

ग्रङ्गुलोतैलसंसिका जटा सप्तच्छदोद्भवा।
तिलोइवेष्टिता सा तु वटिका कार्य्यते ग्रभा॥
ग्रदृश्यकारिणो सा तु मुखस्या नात्र संग्रयः॥ ६॥
तत्तैले सर्पपाः श्वेतास्त्रिलोहेन च वेष्टिता।
ग्रदृश्यकारिणो साचात् गुटिका मुखमध्यगा॥ ०॥

क्रपाकाकस्य रुधिरं पित्तं गोमायुसस्यवम्। काकारिनखचञ्चापि समभागं विचुर्णयेत्॥ ऋचे पुनर्वसी वर्त्तिं क्रत्वा नेत्रे च रञ्जयेत्। श्रदृश्यो भवति चिप्रं सर्वनार्थ्यप्रसाधकः॥ ८॥ क्षणाकुक्तरपुच्छायं निर्मात्वं स्तकस्य च। काकनेत्रच मरिचं पिष्टा कार्याच मूत्रकी:॥ कलायाईप्रमाणेन वटीं क्रत्वा तु शोषयेत्। तेनैवाज्जितमाचेण ऋह्यो भवति भ्वम्॥ ८॥ नक्तमालस्य तैलेन तत्र खेतार्कसूतजाम। वत्तिं प्रज्वाच्य वजस्य दले संग्रह्य कज्जलम्॥ तेनाञ्जनेन मनुजस्वदृश्यो भवति भ्वम् ॥ १०॥ सुक्त याची मार्जारं मारियत्वा चतुष्यये। प्रोचणं कारियत्वा तु दिनानां पञ्चविंगतिम्॥ तं संग्रह्म प्रयत्नेन चालयेच्छोतवारिणि। योतोमिदि यदस्य स्थात् तद्याद्यं यत्नतोऽभयम्॥ पूजयित्वा महाकालं गोरोचनसमन्वितम्। नक्ततस्य तु पित्तेन भावयित्वा प्रपेषयेत्॥ तद्वितिलकादेव नरीऽदृश्यो भवेद् भवम् ॥ ११ ॥ नुमांसञ्च शिवामांसं यत्नतो ग्राइयेद् ब्धः। रजखलायाः प्रथमक्धिरेण वटीं कुरु॥ विलोह्वेष्टिता सा तु मुखस्याऽदृश्यकारिणी॥ १२॥ क्रणमार्जारमुखे तु क्रणगुञ्जां प्रवापयेत्। अदृश्यकारकं साचात् तत्फलं मस्तके धृतम्॥ १३॥ कोकाया नयनं वामं विलोहेन प्रवेष्टयेत्। सा वटी मुखमध्यस्या श्रदृश्यं कुरुते भ्रवम्॥ १४॥ दिवाभीतस्य नयनं त्रिलोहिन प्रवेष्टितम्।

मुखस्यं कुरुतेऽदृश्यं यथेच्छं विचरिना हीम्॥ १५॥
सन्ते चैवानुराधायां वन्दां राचमहच्चाम्।
मुखे प्रचिप्य च नरी ह्यदृश्यः स्थादमंग्रयः॥ १६॥
गाखोटकस्य वन्दाकं नचते सग्गीर्षके।
ग्रहीत्वा पानमात्रेण श्रदृश्यो जायते नरः॥ १०॥
भरखान्तु समाग्रह्य वन्दां कार्पाससभावाम्।
हस्ते बह्वा ह्यदृश्यः स्थात् स्वात्यां वा निस्तृहच्चाम्॥१८॥
पिवेदुत्तरषादृायाम् श्रगोकहच्चसभावाम्।
वन्दां तदा ह्यदृश्यः स्थादिखन्यां वित्वहच्चाम्॥
वन्दां वा करे धृता ह्यदृश्यो जायते नरः॥ १८॥

श्रथ मृतसञ्जीवनी।

मृतसञ्जीवनीं विद्यां प्रवच्यामि समासतः। लिङ्गमङ्गोलवृचाधः स्थापयित्वा प्रपूजयेत्॥ नवं घटच तत्रैव पूजयिक्कि सिन्धी। । इचं लिङ्गं घटचैव सूत्रेणैकेन वेष्टयेत्॥ चतुर्भिः साधकैनित्यं प्रणिपत्य क्रमेण तु। एवं दित्रीणि यः कुर्यादघोरेण समर्चेयत्॥ पुष्पादिफलपाकान्तं साधनं कारयेद् बधः। फलानि पक्वान्यादाय पूर्वीक्तं पूर्येद् घटम्॥ तद्घटं पूजयेत्रित्यं गन्धपुष्पाऽचतादिभिः। श्रोष्ठवर्ज्यं ततः कुर्यादाजिनां घर्षयेनाखम्॥ तना खे इंहणं इत्तं किञ्चित् किञ्चित् प्रलेपयेत्। विस्तीर्णमुखभागान्तः कुभकारकरोड्ताम् ॥ मृत्तिकां सैपयेत् तत्र तानि वीजानि रोपयेत्। कुण्डल्याकारयोगेन यत्नादृईमुखैर्नरै:॥ गुष्कं तत् ताम्यपातो हुं भाग्हे देयमधो मुखम्।

श्रातपे धारयेत् तेलं ग्राहयेत्तञ्च रचयेत्॥

मासाईञ्चैव तत्तेलं मासाई तिलतेलकम्।

नस्यं देयं स्तरस्येतत् समाक्तष्य हि तेन तु॥

तत् कत्वा जीव्यते सत्यं गतेनापि यमालयम्।

रोगापस्त्युसपीदिस्तो जीवित हि स्वयम्॥१॥

पृंग्रक्रं पारदं तुल्यं तिलतैलेन मर्दयेद्।

नस्यं देयं. स्तस्यैव कालदष्टस्य वा च्लात्॥

जीव श्रायाति नो चित्रं महादेवेन भाषितम्॥२॥

पृष्यभास्त्ररयोगे तु गुड़ूचीसूलमाहरेत्।

कर्षमुणाजलेः पीतो स्तस्त्युहरो भवेत्॥

"श्रीं श्रघोरिस्योऽय घोरिस्यो घोरमघोरतरिस्यः सर्वतः सर्व- विस्थो नमस्ते सदस्विस्थः"। उक्षयोगानामयं मन्तः॥३॥

### अय विषनामानि।

शक्तुनोत्तं समासन विषं स्थावरजङ्गमम् । योगञ्च क्रविमञ्जेव विश्वकार्यस्तु सक्षवम् ॥ क्रमान्नच्यमितेषां मन्त्रयुक्तं वदास्यहम् । नाम वच्चे विधानञ्च शक्तुना कीर्त्तितं पुरा ॥ वह्नवो वत्सनाभग्च मुस्तकं पुष्करं विषम् । क्रृतं गठं कर्मठञ्च हरिद्रा कालकूटजम् ॥ इन्द्रवजञ्जेव वीरं हरितं गालवं विषम् । शङ्गो कर्क्रटशङ्गो च मेषशङ्गो हलाहलम् ॥ गाकूटं वजशङ्गो च श्रञ्जनं पुण्डरीककम् । सङ्गोचं सधुपाकञ्च मसूरं रोहिणं तथा ॥ पञ्चविंशतिमिभेदेविज्ञेयं स्थावरं विषम् । एतनाध्ये द्यतिकृतं सङ्गोचं कालकूटकम् ॥

मृङ्गी मुस्तं वतानाभं पञ्चमन्त विषाविषम ॥ १ ॥ एषां देहप्रविष्टानां शृणु लच्णम्चते। वान्तिर्मुच्छीऽतिसारञ्च भान्तिं शूलञ्च कम्पनम्। कासम्बासी तीव्रदाहं लच्चयेदंशने खयम्॥२॥ विषचिकित्या। पुत्रजीवफलात् मज्जां शीततीयेन पेषयेत्। भोजने चाञ्चने पाने लेपैः सर्वविषापहाम ॥ स्थावरं जङ्गमं क्र्रं क्रिमं योगजं तथा। निष्कमात्रं न सन्देइ: कालदष्टो हि जीवति॥३॥ गादलं टङ्गणं तुत्यं कट्फलं रजनी वचा। नरम्त्रेण संपिष्य एकैकन्तु विषं इरेत्॥ ४॥ समूलपत्रां सर्पाचीं तथैव देवदालिकाम्। गिरिकर्णाय वा मूलं नरमूत्रेण पूर्ववत्॥ ५॥ विकटं देवदानी च नस्ये मर्वविषाप हम्। टङ्गणं देवदालीश्व जलपाने विषापहाम ॥ ६॥ ब्रह्मदण्डीयमूलच मधुना सह भचयेत्। खेताङ्गोलस्य मूले च मुखस्ये तिलकेऽयवा॥ मुखस्थैरण्डमूलं वा कायाग्रष्कं विषापहम्॥ ७॥ नीलसर्पस्य पुच्छन्तु क्षकलासस्य पुच्छकम्। ताम्बेण वेष्टितं क्रला मुद्रिकां ताच्च धारयेत्। तया स्पृष्टजलं पीतं स्थावरं जङ्गमं हरेत्॥ ८॥ भूनागसत्त्वसञ्जातां मुद्रिकां धारयेत् करे। न तस्याक्रमते सत्यं विषं स्थावरजङ्गमम्॥ तत्स्पृष्टोदकपानेन विषं सर्वे विनश्वति ॥ ८ ॥ शिरीषब्रभ्रकं ग्राह्मं रेवत्यां चन्दनान्वितम्। तद्वष्टं मर्दितं गात्रे तस्याङ्गे विषनाशनम् ॥ १०॥ वराइगोधानकुल-ग्रम्ककुटपित्तकम्।

खेताया गिरिकर्णाय फलं मूलच पेषयेत्॥
पाने सर्वविषं हन्ति स्तोऽप्युत्तिष्ठते चणात्।
नामा चास्तयोगोऽयं ख्यं रुद्रेण भाषितः॥ ११॥
पणवं पटहचीव द्यानेनैव प्रलेपयेत्।
स्तोऽपि विषयोगेन युत्वा वाद्यं प्रबुध्यते॥ १२॥
खेतापराजितासूलं पीत्वा दुग्धेन सानवः।
स्थावरच विषं हन्ति उदरस्यं न संग्रयः॥
ससिन्धुकािच्चकं पीत्वा स्थावराद्यविषं हरेत्॥ १३॥
मल्लाः—"ग्रीं नसो भगवते उद्धासरेखराय कुञ्चितान्स्तमिन्त्रजटाय ठःठः स्वाहा"। भन्न सर्वीवधमभिन्त्रवेत्॥ १४॥

# अय सर्पविषलचगाम्।

जातीनां नामक्पाद्याः जङ्गमानामिहोदिताः ।
ब्राह्मणाः श्वेतवर्णास्तु चित्रया रक्तवर्णकाः ॥
वैश्वास्तु पीतवर्णाः स्युः क्षण्यवर्णास्तु शूद्रकाः ।
श्वनन्तः कुलिकश्चैव वासुिकः ग्रङ्गपालकः ॥
तचकश्च महापद्मः कर्कोटः पद्म एव च ।
कुलनागाष्टकं द्येतत् तेषां चिक्नं श्विवोदितम् ॥ १ ॥
श्वितपद्ममनन्तस्य मूद्भि पृष्ठे च दृश्यते ।
शङ्गं शेषस्य शिरिस वासुकः पृष्ठ उत्पलम् ॥
तिनेत्राङ्कस्तु कर्कोटस्तचकः ग्रश्मकाङ्कितः ।
ज्वलित्रशूलचन्द्राडं ग्रङ्गपालस्य मूईिन ॥
राजवत्तु समोविन्दुर्महापद्मस्य पृष्ठतः ।
पद्मपृष्ठे च दृश्यन्ते सुरक्ताः पञ्च विन्दवः ॥
एवं यो वित्त जात्यादीन् नाम चिक्नं शिवोदितम् ।
तस्य मन्दीषधान्येव सिध्यन्ते नान्यया पुनः ॥

दूरतस्तस्य सर्पाद्याः पतन्ति गुरुड़े यथा। कालाख्या नाम तिचक्कं शिवेनोक्तं यथा पुरा ॥ २ ॥ ज्ञेयो दश्विधो दंशो भुजङ्गानां भिषम्बरैः। भीतोत्मत्तः चुधार्त्तय त्राक्रान्तो विषदपितः॥ श्राहारेच्छः सरोषश्च खस्थानपरिरचणे। नवमी वैरिसन्धानी दशमः कालसंज्ञकः॥ ३॥ उद्याने जीर्णकूपे च वटशृङ्गाटचलरे। गुष्कवृत्ते सम्माने च प्रचन्नेषातशियुके॥ देवतायतनागारे तथा च शाकवृत्तको। 🏿 👋 एषु स्थानेषु ये दष्टास्ते न जीवन्ति मानवाः ॥ ४ ॥ भूमध्ये चाधरे मूर्द्धि जङ्घे नेत्रे भुवोस्तया। ग्रीवाचिवुककण्ठेषु करमध्ये च तालुके ॥ स्तनयोः स्कन्धयोः कुत्ती लिङ्गहषणनाभिषु। मर्मसन्धिषु सर्वत्र सर्पदष्टो न जीवति ॥ ५॥ रवी भीमे शनेवार सर्पदष्टो न जीवति। श्रष्टमी पञ्चमी पूर्णा श्रमावस्या चतुर्दशी॥ त्रग्रभास्तिथयः प्रोत्ताः सर्पदष्टविनाशिकाः ॥ ६ ॥ े क्रत्तिका अवणा मूला विशाखा भरणी तथा। पूर्वास्त्रिसस्त्या चित्राऽश्लेषा दष्टो न जीवति ॥ ७॥ मध्याचे सन्ध्ययोश्वेव हार्डरात्रे निशात्यये। कालवेला-वारवेला-सर्पदष्टो न जीवति ॥ ८॥ सर्पस्य तालुकामध्ये दन्तो योऽङ्ग्यसन्निभः। विमुच्चति विषं घोरं तेनायं कालसंज्ञकः ॥ ८ ॥ चक्राक्तिय वा दंश: पक्षजम्बूफलाक्ति:। ्सुनील: खेतरक्ती वा त्रिदशोऽपि न जीवति ॥ १०॥ सवेसातं.पुरीषं वा ऋच्छूलं छर्दिदाइसत्। ....

सानुनासिकवाकाञ्च सन्धिभेदसयापि वा ॥
तास्त्रामं नेत्रयुगलं ग्रयवा काकनीलकम् ।
वियोगो देवदष्टाख्यस्तं विद्यात् कालपार्खगम् ॥ ११ ॥
सेचनादुदक्षेनाय ग्रीतलेन मुहुर्मुहुः ।
रोमाञ्चो न भवेद् यस्य तं विद्यात् कालभित्तितम् ॥१२॥
वेदना दंग्रमूलो वा नष्टदंग्रोऽयवा भवेत् ।
तत्त्र्चणाव् तीत्रदाह्य सोऽपि कालेन भित्ततः ॥ १३ ॥
सोमं स्थ्यं तथा दीप्तं न पश्यित च तारकाम् ।
दर्पणे सिलले वाऽय ष्टते तैलेऽयवा मुखम् ।
न पश्येहीच्यमाणोऽपि कालदष्टो न संग्रयः ॥ १४ ॥
ज्ञात्वा कालमकालञ्च पथाद् भेषजमाचरित् ।
सर्पदंग्रे विषं नश्येत् कालदष्टो न जीवित ॥
तस्य तवापि कर्त्तव्या चिकित्सा जीवनाविष ।
रसदिव्यीषधीनाञ्च प्रभावात् कालजिङ्गवेत् ॥ १५ ॥

त्रय सर्पविषीषधम्।

स्तकं गन्धकं तृष्टं टङ्गणं रजनीसमम्।
देवदान्या द्रवैर्मध्यं दिनं निष्कन्तु भच्चयेत्॥१॥
कालग्रैलाग्रनिर्नाम रसः सर्पविषापदः।
नरमूत्रं पिवेचानु कालदष्टोऽपि जीवति॥२॥
खेतापराजितामूलं देवदानीयमूलकम्।
वारिणा पेषितं नस्यं कालदष्टोऽपि जीवति॥३॥

दिधमधनवनीतं पिप्पत्ती शृङ्गविरम्
मरिचमपि च कुष्ठं चाष्टमं सैन्धवञ्च ।
यदि दशति सरीषस्तचको वासुकिर्वा
यमसदनगतः स्थादानयेत् तत्चणेन ॥ ४ ॥
कटुकी सुषतीसूलं पीत्वा तीयैविषापहम् ।

वृश्चिकावीरणामूलं लेपात् मपीविषापहम् ॥ ५॥ वारिणा टङ्गणं पीतमथवाऽर्कस्य मूलकम्। सैन्धवं वा नृसूत्रेण प्रत्येकं विषनाशनम्॥ ६॥ इन्द्रवार्णिकामूलं गुक्का वाऽय पुनर्नवा। बस्यानकींटकीमूलं मुषली शिखिमूलिका ए॥ तग्डुलोदकपानेन प्रत्येकं विषनाशनम्॥ ७॥ भङ्गराजस्य मूलन्तु निश्रत्यानन्तम् लकम। तोयैर्वा तण्डुलीमूलं प्रत्येकं विषजिङ्गवेत्॥ ८॥ सोमराजीवीजचुर्णं सक्तद्रोमू वभावितम्। चराचरविषद्गन्तं सृतसञ्जीवनं पिवेत्॥ ८॥ कट्तुम्बाइवं मूलं सूच्मं गोमूत्रपेषितम्। क्रायाग्रष्कां वटीं मूनैः पाणिलेपो विषापहः॥ १०॥ गोमूबैर्नरमूबैर्वा पुराणेन पृतेन वा। हरिद्वापानमात्रेण विषं हन्ति चराचरम ॥ दशवर्षात परं सर्पि: पुराणमिति कथ्यते ॥ ११ ॥ यदि सपीविषात्तीनां सर्वस्थानगतं विषम्। गोर्चारै: रजनीं काष्य पिवेत् सर्वविषापहाम् ॥ १२ ॥ गोचीरे: रजनीकुष्ठं काष्यमानं विषापहम्। हरिद्राञ्जष्ठमध्वाज्यं भुतां सर्वविषापहम् ॥ १३ ॥ मूलन्तु खेतगुञ्जाया वक्तस्यं विषनाशनम्। पुष्योद्दतं तस्य मूलं नस्येन विषनाशनम् ॥ १४ ॥ पाठाद्रवेण तन्मूनं पाने स्यात् कालकूटजित्। अकं मूलेन संलेप्य दंशं विषहरं महत्॥

<sup>\*ं</sup> विश्वका—विकुटी इति । वीरणामूल—वेणा इति च भाषा । † सुषती—तालमूली इति । शिख्तमूलिका—व्यपनागै: इति च वर्षः ।

रक्तचित्रेन्द्रगोपाभ्यां तथा विषविनाशनम ॥ १५॥ सपं हरितवर्णञ्च पुच्छाग्रे पाटयेच्छिर:। ग्रुक्तं क्रणां पृथक् कार्यं नस्यं सर्वविषाप हम्॥ ग्रुक्तं ग्रुक्ते दिच्णाङ्गे क्राणां क्राणां च वामके। स्तसन्त्रीवनं द्येतत् कालदष्टोऽपि जीवति ॥ १६ ॥ तिक्ता कोषातकीक्वायं मध्वाज्यसंयुतं पिवेत्। तत्चणाइमयेट् यस्तु विषयोगादिमुच्यते ॥ १७ ॥ कटुकी जंम्बुमूलं वा तक्राम्हेर्वा पिवैज्ञलै:। तत्चणादमयेच्छीघ्रं विषयोगादिमुचते ॥ १८॥ राजवच्तवचं ग्राह्यं ग्रुक्तं कृष्णं पृयक् पृथक्। गुक्सपचे तु गुक्कान्तां चतुर्विगतिभिः सह ॥ मरिचै: पाननिष्ठस्य क्षणो क्रणालचं तथा। पीला तैनिविषो दष्टः कथितं हरमेखले ॥ १८ ॥ कुङ्मालक्तकं लोधं शिला चैवाय रोचना। गुटिका लेपनाडन्ति विषं स्थावरजङ्गमम्॥ २०॥ दे हरिद्रे शिला तालं कुङ्मं मुस्तकं जलै:। गुटिका लेपमाचेण विषं इन्ति महाऽइतम्॥ २१॥ पूर्तीकरञ्जवीजस्य मञ्जानं कारविज्ञजम्। पिट्वा पिवेत् ससपिष्यं विषं हन्ति न संशयः ॥ २२ ॥ पिपालीं मरिचं कुछं ग्टहधूमं मनःशिलाम्। तालकं सप्पान् खेतान् गवां पित्तेन लोड्येत् ॥ \* गुटिकाऽञ्जननस्येन पानाभ्यञ्जनलेपनात्। तचकेणापि दष्टस्य निर्विषीकुरुते चणात्॥२३॥ पथा चौद्रञ्च मरीचं पत्रं 🕆 हिङ्ग् शिला वचा।

 <sup>&</sup>quot;गवां चीरेण जीड़येत्" इति पाठान्तरम्।

<sup>+</sup> पत्रं पत्तिमिति वा पाउयम्।

जलेन गुटिकानस्ये कालदष्टोऽपि जीवति॥ २४॥ ग्रखगन्धा मेघनादो गोसूत्रं महिषाचनम्। ग्टहधमेन वा लेप: शिर:कार्डविषं हरेत्॥ २५॥ पञ्चाङ्गमखगन्धाया म्हागीमूत्रेण पेषयेत्। लेपे पाने न सन्देहो नानाविषविनाशनम्॥ २६॥ शिला चिङ्ग वचा व्योषमभयात्वक् च पत्रकम्। \* नस्ये वासुक्तिदृष्टञ्च निर्विषं शीतवारिणा॥ २०॥ पुत्रजीवफलान्यज्ञां गवां चीरेण पेषयेत्। लेपनाञ्चननस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ २८॥ क्त णाधुस्त्रमूलस्य चुर्णं याद्यं पलोन्मितम्। करञ्जतैलकर्षेण वटीं क्रत्वा तु धारयेत्॥ जम्बीरस्य रसै: पीत्वा रीद्रीविषनिवारणम् ॥ २८ ॥ लज्जालुमूलं नील्या वा मूलं खच्छेन वारिणा। पीत्वा रौद्रोविषं हन्ति लेपाद् गुञ्जाबलोइवम् ॥ ३० ॥ ग्टहध्मं हरिद्रे दे समूलं तण्डलीयकम्। यपि वासुकिना दष्टः पिवेइधिष्टतान्वितम् ॥ ३१ ॥ तण्ड्लीयक्मूलन्तु पोतं तण्ड्लवारिणा। तचकेणापि दष्टञ्च निर्विषं कुरुते ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ कौलिक्यमूलनस्येन कालदृष्टोऽपि जीवति।

अव मलः।—"श्रीं श्रादित्यचत्तुषा दृष्टः दृष्टोऽहं हर विषं स्वाहा"॥ ३३॥

> विश्वक्रान्तोद्भवं मूलं ष्टतेन त्वगतं विषम्। पयसा रक्तगं इन्ति मांसगं कुष्ठचूर्णतः॥ श्रस्थिगं रजनीयुक्तं मेदोगं काकलीयुतम्। मज्जागं पिप्पलीयुक्तं चण्डालीकन्दसंयुतम्॥

व्यापं — विकटुकामित्यर्थः।

गुक्रगं हन्ति लौहित्यं तस्मादेयाऽपराजिता।
दिति भावो भवेद यस्य ग्रात्मरूपिमदं जगत्॥
तत्सर्वेविषकोटायौभेच्यमाणो न वाध्यते॥ ३४॥
सदाः सर्पेण दष्टस्य वामनासिक्या धृतः।
लेपः कण्मलेनापि नृमूत्रैः सेचनञ्च वा॥
स्तम्भते गरलस्तेन नोड्वं धावित धातुषु॥ ३५॥
वराहकण्वितामूलं हस्ते वढं विषापहम्॥ ३६॥
भिरोषपुष्पस्तरमे सप्ताहं मिरचं सितम्।
भावितं सप्देष्टानां पानिऽप्यभ्यञ्जने हितम्॥ ३०॥
स्वच्छन्दभैरवी विद्या कथ्यते विषनाग्रिनी।

अव मनः।—"श्रीं नमी भगवति खच्छन्दभैरिव महाभैरिव नालक्टिविषं स्फोटय स्फोटय विस्कारय विस्कारय खादय खादय अवतारय श्वतारय नास्ति विष हलाहलविष संयोगविष स्थावर्यविष श्रह्मनाः। परा इष्टमनाः। "तड्दर्घायण दथय दथय" "श्रीं कालाय महाकालाय कालमर्दे देवि! श्रस्टतगभेदिविश्रीं श्रीं फट्फट्स्बाहा"। श्रीन मन्तेण काड़ित् जलं वाचयेत्र निर्विषः स्थात्। द्रयं सच्छन्दभैरवीविद्या। "श्रीं क्रूं क्र्ं सं स्वः हं सः"। श्रीनाभिमन्तितपानीयपानेनापि मार्जनेन वा निर्विषः स्थात्॥ ३८॥

देवदार चित्रकञ्च करवीरार्कनाङ्गली।
मूलानि वारिणा पिष्टा कालदष्टहरं पिवेत्॥ ३८॥
मन्तीषधप्रयोगेण यदि दष्टो न जीवति।
क्रेटयेत् तीन्णशस्त्रेण दंशस्थाने भिष्णवरः॥
स्यावरन्तु विषं दयादृष्टो दष्टेन हन्यते॥ ४०॥
यस्तु संरोषितः सर्पो धूमं वज्ञादिसुञ्चति।
तुण्डाग्रं पेषितं यस्य बहुशस्तेन दंशिताः॥

श्रश्चमगदैरन्यैर्विषेणैव चिकित्सयेत्॥ ४१॥
चौरचौद्रष्टतैर्युक्तं हिगुच्चं पाययेहिषम्।
विषेण लेपयेहंणं कालदष्टोऽपि जीवति॥ ४२॥
स्तसच्चोवनं ख्यातं निर्गुण्डी तगरं विषम्।
पिण्डीतगरमूलच्च पुष्येणोत्पाट्य योजयेत्॥
दंशे देयं सतस्यापि दष्टो जीवति तत्चणात्॥ ४३॥
दंशे स्तीऽपि दष्टः कः पुरुषो नाशमिति इति चित्रम् १।
सर्पदष्टो यदा वीरस्तं सर्पो दंशते स्वयम्।
स्कोऽसौ स्त्रियते सर्पः स्वयं निर्विषतां व्रजेत्॥ ४४॥
यहा तहा फलं दन्तैः सर्पभावेन भचयेत्।
दन्तैर्वा भचयेकूमं दण्डवत् पतितो नरः॥
सर्पभावैः न सन्देन्हो तस्य नो संक्रमिहिषम्।
श्रत्यन्तविषरोगार्त्तान् जलमध्ये विनिच्चिपेत्॥ ४५॥।

मूलं तग्डुलवारिणा पिवति यः प्रत्यक्तिरासभ्यवम् । निष्पष्टं ग्रुचिभद्रयोगदिवसे तस्याऽहिभीतिः कुतः ॥ दर्पादेव फणी यदा दश्ति तं मोह्यान्वितो मानवम् । स्थाने तत्र स एव याति नियतं चक्री यमस्याचिरात् ॥ ४६ ॥

श्राषाद्ग्रक्तपञ्चभ्यां कट्यां ग्रेरोषमूलकम्।
तग्डुलोदकपानेन सर्पदंग्रो न जायते॥
भ्रमाद्वा दंग्रते सर्पस्तदा सर्पी विनग्रति॥ ४०॥
पुष्ये खेतार्कमूलन्तु खेतवर्षाभूमूलकम्।
संग्रह्म पेगं तहचे स्नात्वा तग्डुलवारिणा॥
सर्पभोतिविनाग्रार्थं प्रतिसंवत्सरं न्रः॥ ४८॥
मस्रं निम्बपत्राभ्यां खादेनोषगते रवौ।
श्रब्दमेकं न भोति: स्याद्विषाक्षान्नात्र संग्यः॥

यहा-मसूरं निम्बपत्राभ्यां योऽत्ति मेषगते रवी।

त्रतिरोषान्वितस्तस्य तच्चकः किं करिष्यति ? ॥ ४८ ॥
क्रक्तलासस्य दन्तांस्तु सितस्त्रेण वेष्टयेत् ।
बाह्रो बड्डा विषं हन्ति विषं भुक्ता न बाध्यते ॥
सर्पेष्टिश्वकसूषाणां मुखस्तभः प्रजायते ।
बिष मन्तः।—"ग्रीं ग्रविर कीर्त्तय कीर्त्तय संजाव संजाव
स्वाह्या" । सहस्रजपात् सिंडिः । भनेन मन्तेण सूबं इस्ते वस्येत् ॥ ५० ॥

पातालगारुड़ी मूलं लम्बमानं ग्टहे स्थितम्। दृष्ट्वा गच्छन्ति ते दूरं सर्पाद्या विषकीटकाः॥ अव मन्तः।—"श्रीं प्तः सर्पेकुलाय स्वाहा। श्रशिषकुलसर्प-कुलाय स्वाहा"। अनेन सप्तामिमन्तितां स्तिकां ग्रहमध्ये चिपेत्, सर्पाः पनायन्ते॥ ५१॥

त्रिरीषवीजं गोमेदं दाड़िमस्य च मूलकम् । ग्रिरीषवीजं गोमेदं दाड़िमस्य च मूलकम् । त्रुकंचीरयुतं इन्ति धूपो व्यविकजं विषम् ॥ १ ॥ मयूरपारावतकुक्कुटानां ग्राह्यं पुरीषं सह भानुमूलै: । धूपो निहन्त्याग्र विषं समस्तं चतुर्विधं व्यविकसर्पजातम् ॥ २ ॥

रजनीचूर्णधूपेन विषं हिस्तिजं हरेत्।
वस्तेणाच्छाद्य गाताणि धूपधूमस्य पाययेत्॥
दंग्रञ्च धूपयेच्छीद्यं सर्वधूपेष्वयं विधि:॥३॥
तोयेर्वा नागरं नस्यं पिवेद्दा सैन्धवं ष्टतम्।
स्र्वांधुस्तूरमूलं वा जलपाने विषापहम्॥४॥
पुत्रजीवफलान्मज्ञां पलागोत्यां करस्रजाम्।
मज्जां तोये: प्रलेपोऽयं हन्ति हिस्तिज्ञां विषम्॥५॥
हिङ्ग् वा जललेपेन हिस्तितेशं विषं हरेत्॥६॥
सिक्यकं सप्तधा भाव्यं सुहार्कपयसाऽऽतपे।
तत्तप्तं विद्वाना स्पृष्टं दंग्रस्थाने विषं हरेत्॥७॥

ष्टतार्कदुग्धलेपेन यथ्या वा घूपितेन वा। वीजपूरकमूलस्य लेपादापि हरीतकी॥ लेपोजातीगुड़ाभ्यां वा हरिद्रालेपनेन वा। व्यवकस्य विषं हन्ति प्रत्येकेन न संग्रयः॥ ८॥ मातुलुङ्गस्य मूलन्तु रिववार समुद्धरेत्। उत्तराभिमुखेनैव क्रं मन्त्रोचारणात् स्पृग्नेत्। वामाङ्गे दिचिणे दष्टे वामदष्टे च दिचिणे। मार्जनेन विषं हन्यात् सदंगं दृष्टप्रत्ययम्॥ सप्तधा मार्जनेनैव विषं व्यवकां हरेत्॥ ८॥ गाद्यं हंसपदीमूलं पातरादित्यवासरे। मुख्यं फुकृतं कर्णे विषं व्यवकां हरेत्॥ ११॥

चत मन्तः।— "ग्रीं चः फट् खाहा"। चनेनापीमार्जयित्रिर्विषी भवति।
"ग्रांखी मांखी मांहीं खींहीं। चनेन गरुडमन्त्रेण विश्वनदष्टं नरवीरकाष्ठेनापी मार्जयित्रिर्विषी भवति॥ १२॥

वकुलत्वचवीजं वा निष्पीद्य दंशनस्थले।
प्रतिपाद् व्यविकविषहरणञ्चाभिमन्त्रितात्॥
"ग्रीं भं हुं यं क्रं छं वं वं लं चं एं ऐं ग्रीं ग्रीं हं हः"।
इति मलेणाभिमन्त्र प्रतिपयेत्॥ १३॥

"हां हीं मंचं श्रीं" इति मन्त्रेण श्रीलहन्तमभिमन्त्रा तेन मार्जनाद हिश्वकविषनाशी भवति।

श्चिवेन भाषितो योगो नावहेलनमईति ॥ १४ ॥
अध मूषिकविषहरणम्।

शिला तालककुष्ठश्व भाव्यं निर्गुण्डिकाद्रवै:। पानं मूषिकदष्टानां दत्तं तीव्रविषं हरेत्॥१॥ ग्टहगोधां समादाय पिष्टा तण्डुलवारिणा। लेपादाखुविषं हन्ति पिवेडा चीरपाचिताम्॥२॥ सर्वपं कुड्रुमं तक्रं समभागं घृतं पिवेत्। विषं मूषिकदष्टानां श्रममाप्नोति तत्चणात्॥३॥ चिच्चाफलसमायुक्तं ग्टहधूमं पलाईकम्। पुराणाज्येन सप्ताहं लिहत्याखुविषं हरेत्॥४॥

चय कुक्,रविषनिवारणम्।

गुड़ं तैलार्कंदुग्धञ्च लेपाच्छ्वानविषं हरेत्॥ १॥ पिष्टाऽपामार्गमूलञ्च कर्षेंकं मधुना लिहेत्। ग्रना दष्टविषं हन्ति लेपात् कुक्कुटविष्ठया॥ २॥ उन्मत्त्रञ्चानदृष्टानां कुमारीदलसैन्धवम्। सुखोर्णं बन्धयेत् पिष्टं ब्रिदिनान्ते सुखावहम्॥ ३॥

अथ मन्यभेकादिविषद्दरणम्।

शिरीषप्रसम्बद्ध सुक्चीरेण सुपेषितम्। कुष्ठाऽङ्कोठजटामित्रं पिवेद्वेकविषापह्म्॥१॥ त्रूषणं मेघनादा च भेकमत्स्यविषापहा॥२॥ युङ्किमत्स्यविषं स्रेदात् किञ्चिद् ग्रतसमन्वितात्॥३॥

श्रय ग्रहगीधाविषनिवारणम्।
ग्रहगोधाविषं हन्ति काश्मरीफलनस्थतः॥ १॥

श्रय व्याच्रादिविषनिवारणम्।

विक्रं विषं हिन्त याघ्रयानस् । विषं खापददंश्ये हे है सी हशलाकया ॥ १ ॥ लेपात् सर्वे विषं हिन्त मूलं खैतपुनर्नवम् । किमत्र बहुनोक्तेन तत्चणाहिषनाशनम् ॥ २ ॥ चिक्षटस्थाऽदनेनाथ व्याघ्रव्यानविषं हरेत् ॥ ३ ॥ धुस्तूरपत्रतोयेन चूर्णं त्रिकटुसस्थवम् । उदरस्थं विषं हन्ति व्याघ्रव्यानसमुद्रवम् ॥ ४ ॥ करस्रतेललेपेन ज्वालां व्याघ्रनखोइवाम् ॥ ५ ॥ गोजिह्वामूलिकां पिष्टा जलेन मधुना सह । लेपोऽपि सर्वजल्तूनां नखतुण्डविषं हरेत् ॥ ६ ॥ तथा निम्बत्वचस्रैव शमीहस्रत्वचं तथा । उणोदकेन लेप: स्यान्नखदन्तविषापहः । तथा दारुहरिद्राया लेपो दन्तविषापहः ॥ ७ ॥

श्रय कीटविषनिवारणम्। "

श्राशोणतण्डुलीमूलं तुलसीमूलिकाऽिप वा।
तण्डुलोदकपानेन कीटकीत्यं विषं हरेत्॥१॥
लाङ्गल्या कटुतुम्बरा वा देवदारुनिशोरिप।
मूलं वीजं काि ज्ञिकेन लेपः कीटविषापहः॥२॥
तिलञ्च सर्षपं कुष्ठं वीजं कारज्जकं स्मृतम्।
उद्दर्भनात् प्रलेपाद्दा सर्वकीटविषाविज्ञत्॥३॥
करज्ज्वीजिसिद्दार्थ-तिलैलेपो विषापहः।
एरण्डतेललेपो वा सर्वकीटविषापहः॥४॥
निशा दारुनिशा चैव मिज्ञिष्ठा नागकेशरम्।
एषां लेपो निहन्त्याग्र विषं लूतादिसम्भवम्॥५॥

भय सर्वजन्तिविधिनवारणम्।
पुत्तजीवफलान्यज्ञां शीततीयेन पेषिताम्।
लेपनाञ्चननस्यैस्तु पानाद्या निष्कमात्रतः॥
व्याघ्रमूषिकगीनाग-वृश्चिकादिविषं हरेत्।
दुःसहं यद्विषं चाग्र विष्फोटञ्च विनाशयेत्॥१॥
बन्ध्याककीटकीकन्दं जलैः पिष्टा प्रलेपयेत्।
सर्पमूषिकमार्जार-वृश्चिकादिविषापहम्॥२॥

श्रय उपनिषानिवारणम् । सुद्धार्कोन्सत्तवृद्यैव करवीरय लाङ्गली । वजी जैपालकः क्षणा कुष्ठं भन्ना तथैव च ॥

महाकालय दत्याद्याः स्मृतास्तूपविषापहाः ॥ १ ॥

ससिन्धुं कान्त्रिकं पोत्वा समस्तोपविषं हरेत् ।

सारमेयविषं हन्ति प्रतेनापि हरीतकी ॥

निस्वपतं प्रता हन्ति प्रतेन मधुना ततः ॥ २ ॥

श्रथ क्रविमविषनिवारणम। अनेकविषजीवानां चुर्णञ्चोपविषैर्युतम्। मियितं नखकेशायौर्लिपयेचूर्णसञ्चयम्॥१॥ क्रिमञ्ज विष खातं पचानासाहि वाध्यते। श्रालस्यं कुर्ते जाडां कासं म्बासं बलच्यम ॥ रत्तसावं ज्वरं शोधं पीड़ां चच्चिष लच्चित्॥ २॥ मृतं सूतं मृतं खर्णं शुबलोहं समाचिवाम्। वयाणां गन्धकं तुल्यं मर्द्यं कल्कद्रवैदिनम्॥ तच्छ्ष्कं ससिताचीद्रैर्मासमेकं लिहेत् सदा ॥ ३ ॥ विक्कमूलयुतं चीरं मनुष्यगरनाश्चनम् ॥ ४॥ पुत्रजोवफलानाजां निष्कमातं गवां पय:। पीला चोयं गरं इन्यादिषं क्षत्रिमयोगजम्॥ ५॥ गरीपुष्करमृतच पाचं गीतलवारिणा। तत् पिवत् शीतलं पाने गरत्यणाञ्चरापहम्॥ चीरमुद्रयुतं पथ्यं शाल्यतं परमं हितम् ॥ ६॥ ग्टहधूमं जलैः पिञ्चा तण्डलीमूलतुल्यकम्। तस्माचतुर्गुणं चाज्यं घृतात् चीरं चतुर्गुणम् ॥ वृतशिषं पचेत् सर्वे पिबेत् सर्वगरापहम्॥ ०॥ समूलपत्रां सर्पाचीं जलेन क्वितां पिबेत्। नरमूर्त्रेय वा पिष्टं पिबेत् सर्वगराप हम् ॥ ८॥ एलातालीशपत्राणि त्रुप्रषणं जीरकं समम्।

चूर्णोर्डा च सिता योज्या भुक्का गरहरं भवेत् ॥ ८ ॥ पयसा रजनोकुष्ठं मध्वाज्यग्टहधूमकम् । तण्डुलोमूलसंयुक्तं कर्षं गरहरं पिवेत् ॥ १०॥

श्रय योगजिविषिनिवारणम्।
तैलकर्पूरजम्बीर-संयोगाद् योगजं विषम्।
समाग्रेन तु मध्वाज्यमेवं संयोगजं विषम्॥१॥
नारिकेलाम्बुकर्पूरं संयोगाद् योगजं विषम्॥१॥
मिरचं तुम्बिकामूलं योगजं विषमेव च।
पुच्चजीवफलेनैव रजनीमारनालकैः॥
देवदानी नृमूत्रेवां सर्पाची चेन्द्रवारुणी।
गिरिकणीयमूलं वा प्रत्येकं विषजिद्ववेत्॥३॥
मध्वाज्यं काकमाच्यास्तु द्रवैः पिष्टा विषं हरेत्।
गिरिकणीनागपुष्यी-सुण्डीपानादिषापहा॥४॥

श्य महातकविषिनवारणम्।
भिक्षाततैलसम्पर्कात् स्फोटः संजायते नृणाम्।
नवनीतं तिलं पिष्टा तक्षेपेन तु तं जयेत्॥
विस्वीपत्रप्रलेपादा तं जयेत् तत्पदेन वा॥१॥
भिक्षातकस्य मूलञ्च स्तिकाभिः प्रलेपयेत्।
तसः ज्ञातिवकाराणि नाश्यत्येव निश्चितम्॥२॥

## यय यचिगीसाधनम्।

सर्वासां यचिणीनान्तु ध्यानं कुर्यात् समाहितः । भगिनीमात्यपुचस्ती-रूपतुल्यं यथेपितम् ॥ भोज्यं निरामिषं चात्रं वर्ज्यं ताम्बृलभचणम् ॥ १॥ उपविश्याजिनादी च प्रातः स्नात्वा न कं स्पृशेत् \*।

न कं स्प्रीत्—न कमिप स्पर्शिद्यर्थः।

नित्यक्तत्यञ्च कत्वा तु स्थाने निर्जनके जपेत्॥
यावत् प्रत्यचतां यान्ति यचिष्यो वाञ्कितप्रदाः॥ २॥
जपेज्ञचद्वयं मन्त्रं रमशाने निर्भयो मुनिः।
दशांशं गुगगुनुं साज्यं हुत्वा तुष्यति विश्वमा॥
अव मनः।—"श्रों द्वों विश्वमरूपे। विश्वमं कुरु कुरु एह्योहि
भगवति। खाहा"॥ १॥

शङ्कालिप्तपटे देवीं गौरवर्णां धतोत्पलाम्। सर्वालङ्कारिणीं दिव्यां समालिख्याचीयत्ततः॥ जातीपुष्पैः सोपचारैः सहस्रेकं ततो जपेत । विसन्ध्यं सप्तरावन्तु ततो राविषु निर्जपेत्॥ अर्डरातं गते देवी समागत्य प्रयच्छति। पञ्चविंगति दीनारान् प्रत्य हं तीषिता सती॥ भव मलः।—"ग्रीं क्लीं रतिप्रिये खाद्या"॥ २॥ एक लिङ्गं महादेवं विसम्धं पूजयेत् सदा। धूपं दत्ता जपेनान्तं विसन्धं विसहस्रकम्॥ मासमेकं ततो याति यचिणी सुरसुन्दरी। दत्तार्घं प्रणमेनान्त्री ब्रूते सा "त्वं किमिच्छिसि ?"॥ देवि ! दारिद्रादग्धोऽस्मि तसे नागय गङ्गरि !। तती ददाति सा तुष्टा वित्तायु विरजीवितम्॥ षव मलः।—"ग्रीं क्लीं ग्रागच्छ सुरसुन्दरि ! खाहा" ॥ ३॥ कुङ्गीन समालिख्य भूजीपत्रे सुलच्णाम्। प्रतिपत्तः समारभ्य पूजां क्वता जपेत्ततः॥ विसम्यं विसइसन्तु मासान्ते पूजयेनिशि। मंजपेदर्डरावन्तु समागत्य प्रयच्छति। दीनाराणां सहस्रेकं प्रत्यहं परितीषिता॥ बव सल:।—"ग्रीं च्लीं ग्रनुरागिणि ! मैथुनप्रिये ! खाहा" ॥४॥ ध्यात्वा जपेत् ततो रात्री सागरस्य तटे ग्रुचि:।

लचजप्ये क्वर्ते सिडि: दत्ते सागत्य विष्टकः।

रत्नं वरं तथा भोज्यं सीस्यो मन्त्री सुखी भवेत्॥

मनः।—"श्री भगवन। समद। देहि रत्नानि जनवासी ह्री

भव मन्तः।—"श्रीं भगवन्! समुद्र!देहि रत्नानि जलवासी क्रीं नमोऽस्तु ते खाद्वा"॥ ५॥

तिपये तु वटस्थाने रात्री मन्त्री जपेच्छुचि:।
लचत्रयं ततः सिडा देवी च वटयचिणी॥
वस्त्रालङ्कारकं दिव्यं रसं सर्वरसायनम्।
दिव्याञ्जनञ्च सा तुष्टा साधकाय प्रयच्छिति॥

चन मलः।—"श्रीं क्वीं वटवासिनि ! यचकुलप्रस्ते ! वटय-चिणि ! एद्योहि स्ताहा" ॥ ६॥

वटव्रचं समारु लचमेकं जपेसनुम्।
ततः सप्ताभिमन्त्रेण काञ्चिकैः चालयेसुखम्॥
मासत्रयं जपेद्रातौ वरं यच्छति यचिणी।
रसंरसायनं दिव्यं चुद्रकर्म ह्यनेकधा।
सिद्यानि सर्वकार्याणि नान्यवा ग्रङ्करोऽब्रवीत्॥

भव मन्न: ।—"ग्रीं नमश्चन्द्राद्यावा कर्णकारण खाहा"। "ग्रीं नमो भगवते रुद्राय चण्डवेगिने खाहा"। मन्नद्रयस्वैक एव सिडिहेत:॥ ৩॥

विश्वाव्यत्तत्वे लखं मन्त्रमावर्त्तयेच्छुचि:।

ग्रतपुष्पोद्भवै: पुष्पै: सष्टतेर्ह्वोममाचरेत्॥

ततः सिंद्रा भवेदेवी विशाला कामगामिनी।

ददाति मन्त्रिणे तुष्टा रसं दिव्यं रसायनम्॥

अव मल:।—"ग्रीं एँ विशाली! क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं खाहा"॥ ८॥

नरास्थिनिर्मिता माला गले पाणी च कर्णयोः।

धारयेज्ञपमालाञ्च तादृशीञ्च समशानतः ॥
लचमेकं जपेनान्त्रं साधको निर्भयः ग्रिचिः ।
ततो महाभया यची द्यादेनं रसायनम् ॥
तस्य भचणमात्रेण सर्वरत्नानि चालयेत् ।
वलीपलितनिर्मृत्तश्चिरजीवी भवेन्नरः ॥

भव ननः।—"श्रीं क्रीं महाभये ! क्षीं खाहा" ॥ ८ ॥
ग्रक्तपचे जपेत्तावद् यावह्रश्येत चन्द्रमाः ।
प्रतिपत्पूर्वपूर्णान्तं नवलचिमदं जपेत् ।
श्रम्तं चन्द्रिकादत्तं पोत्वा जीवोऽमरो भवेत् ॥
भव ननः।—"श्रीं ह्रीं चन्द्रिके ! हंसः क्रीं क्षीं खाहा" ॥१०॥

पव मनः।—"भी फ्ली चिन्द्रिते! इंसः क्री क्री खाइ।" ॥१०॥ जम्यं मासत्रयं रक्त-कम्बला सा प्रसीदित। स्तकोत्यापने कुर्यात् प्रतिमां चालयेत्तया॥

भव नतः।—"श्रीं च्लीं रक्तकम्बले ! महादेवि ! स्टतकसुर्ष्टापय प्रतिमाञ्चालय पर्वतान् कम्पय नीलय विलसत् हुं हुं" ॥११॥

श्रष्टोत्तरशतं जष्ठा यिकिञ्चित् खादुभोजनम्।
तहिलर्दीयते तस्यै वटाधो मासमेकतः॥
ततो देवी समागत्य हस्ताद् ग्टह्माति भोजनम्।
तत्वेव सा वरं दत्ते नित्यं सान्निध्यकारकम्॥
श्रतीतानागतं कर्म सुस्थासुस्थं व्रवीति सा।
प्रतिमाः पर्वतान् सर्वान् चालयत्येव तत्च्लात्॥
अव मनः।—"श्रींकारमुखे । विद्युज्जिह्ने । श्रीं हुं चेटके । जय

जय खाहा"॥ १२॥

पूर्वमेवायुतं जष्ठा क्षरणकान्याभिमन्त्रिताम् । हस्तपादप्रलेपेन सुप्ते विक्त ग्रभाग्रभम् ॥ भव मनः।—"ग्रीं क्रीं सनामग्रक्तिभगवित । कर्णपिशाचिनि । चर्छ रोपिणि । वद वद स्वाहा" ॥ १३॥

लिम्पेन्मृहोमयैर्भूमिं कुशांस्तत्र समास्तरेत्।
पञ्चोपचारनैवेद्यैर्देवदेवीं प्रपूजयेत्॥
श्रचसूत्रं करे धत्वा पूर्वमेवायुतं जपेत्।
श्रद्धराते गते देवी सुप्ते विक्त श्रभाश्रभम्॥

चव मलः।—"श्रों क्रीं श्रागच्छागच्छ चामुग्छे! श्रीं स्वाहा"॥१४॥

रोचनैः कुङ्कमैः चीरैः पद्मकाष्टदलं लिखेत्।
नीलवर्णे भूर्जपत्ने मायावीजं दले दले॥
लिखित्वा धारयेन्मूर्भि इमं मन्त्रं ततो जपेत्।
पूर्वमेव तु सप्ताहं कुर्य्यादेवं प्रयत्नतः।
अतीतानागतं सर्वे स्वप्ने वदित देवता॥

भव मनः।—"श्रों क्रों विश्वि पिशाचिनि ! स्वाहा" ॥ १५॥ श्रनावुस्तिकां पुष्ये तथा सर्पाचिस्तिकाम्। ग्रह्याभिसन्त्रितां यत्नाद्रतस्त्रेण वेष्टयेत्। सूर्भि बह्वा तु तां सुप्ते वदत्येव ग्रभाग्रभम्॥

भव मनः।—"श्रीं नमी भगवते कर्णपिशाचाय खाहा" ॥१६॥ लक्षमेणं जपेचान्त्रं वटहक्तले ग्रिचिः। बन्धूककुसमैः पद्मान्यध्वत्रं चीरमिश्चितम्॥ दत्ते धूपे दशांग्रेन जुहुयात् पूर्णयान्वितम्। ततः सिद्या भवेदेवी विचित्रा वाष्क्रितप्रदा॥

यत मनः।—"श्रीं विचित्रे! विचित्ररूपे! सिंडिं कुरु कुरु स्वाहा"॥ १७॥

प्रविश्य नगरस्थान्तं लच्चसंख्यं जपेच्छुचिः।
पद्मपत्नैः क्तो होमो छतोपेतैर्दशांग्रतः॥
प्रयच्कत्यञ्चनं हंसी येन पश्यति भूनिधिम्।
सुखेन तञ्च रुद्धाति न विष्नैः परिभूयते॥

भव मल: ।— "श्रों इंसि इंसि जने क्लीं क्लीं खाहा" ॥ १८ ॥ लचसंख्यं जपेनान्त्रं राजदारे ग्रुचि: स्थिर: । सचीरै: मालतीपुप्पै: क्लतहोमै: सहस्रकै: ॥ मदना यचिणी सिडिं गुटिकां सन्प्रयच्छित । तया मुखस्थयाऽदृश्यिषरस्थायी भवेन्नर: ॥

भव मनः।—श्रों ऐं मदने मदनविड्म्बिनि! श्रनङ्गसङ्गं सन्देहि देहि क्लीं कीं स्वाहा"॥ १८॥

लचमंख्यं जपेनान्तं पलाशतक्जेन्धनै:।
मधुनाऽऽज्यै: क्तो होम: कालकर्णी प्रसीदित।
सततं तां सारेनान्ती विविधैखर्थकारिणीम्॥

खव मनः।—"श्रों क्लीं क्लीं कालकणिके! ठः ठः खाहा"॥२०॥ खग्टहें संख्यितो रक्तेः करवीरप्रस्नकैः। लच्चमावर्त्तयेगान्त्रं होमं कुर्याद्द्यांशतः॥ होमें क्लतं भवेत् सिडिर्लच्मीनान्त्री च यच्चिणी। रसं रसायनं दिव्यं विशालञ्च प्रयच्छिति॥ अव मनः।—"श्रों ऐं लच्चीं श्रीं कमलधारिणीं कलहंसः

खाइ"॥ २१॥

रक्तमाल्याम्बरो मन्त्रं चतुर्दश्यां दिने जपेत्। ततः सिद्धा भवेदेवी शोभना भोगदायिनी॥ अव मनः।—"श्रों त्रशोकपञ्चवाकारकरतत्ते। शोभने। श्रीं चः

खाहा"॥ २२॥

पुर्णाऽशोकतलं गत्वा चन्दनेन सुमण्डलम्। कत्वा देवीं समभ्यर्च धूपं दत्वा सहस्रकम्॥ मन्त्रमावर्त्तयेसासं नक्तभोजी वनङ्गतः। रात्री पूजां ततः कत्वा जपेस्मन्त्री निशाईके॥ नटी देवी समागत्व निधानं रसमञ्जनम्। द्दाति मन्त्रिणे मन्त्रं दिव्ययोगच निश्चितम्॥

पव मन्तः।— "ग्रीं क्लीं निटि! महानिटि! रूपविति!
स्वाहा"॥ २३॥

सक् सुगिन्ध ग्रहस्थाने चन्दनेन तु मण्डलम्।
काला हस्तप्रमाणेन पूजयेत् तत्र पिद्मनीम्॥
धूपं सगुग्गुलं दत्त्वा जपेन्मन्त्रसहस्रकम्।
मासमेकं ततः पूजां काला रात्री पुनर्जपेत्॥
यर्डरात्रे गते देवी समागत्य प्रयच्छित।
निधानं दिव्ययोगञ्च तस्मान्मन्ती सुखी भवेत्॥
वन्न मनः।—"श्रीं कीं पिद्मिन स्वाहा"॥

#### अथ रसशोधन-मारणञ्च।

अय वीर्य्यस्तभानवाजीकरणादिषु प्रोक्तरसयोगादिसिष्ठये रसादिशोधनमारणञ्च । तत्रादी रसशोधनम् ।— पलादूईं न कर्त्तव्यं रससंस्कारमुत्तमम् । अघोरेणैव मन्त्रेण रससंस्कारपूजनम् ॥

अव मलः।—"श्रीं अघीरिभ्योऽय घीरिभ्यो घोराघोरतरेभ्यस । सर्वतः सर्वसर्वभ्यो नमस्ते रुट्रुक्पिभ्यः नमः" । इति अधीरमलः।

कुमार्था च निशाचूणैं: दिनं स्तं विमर्दयेत्। पातयेत् पातनायन्त्रे सम्यक्ष्णद्वो भवेद्रमः॥
- श्रथवा हिङ्गुलात् स्तं ग्राहयेत् तिनग्यते।
पारिभद्रमेः पेथं हिङ्गुलं याममात्रकम्॥
जस्वीराणां द्रवैर्वाथ पाच्यं पातनयन्त्रके।
तस्तृतं योजयेद् योगे सप्तकचुकवर्जितम्॥
रमस्य दशमांशन्तु गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत्।
जस्वीरस्य द्रवैर्यामं पाच्यं पातनयन्त्रके॥

पुनमेर्ची पुनः पात्यं सप्तवारं विश्व इये। इत्येवं गुडिराख्याता ययेष्टैकप्रकारिका॥

श्रय रसमारणम्।

युक्तं सर्वस्य स्तस्य तप्तखन्ने विमर्दनम्। यजायञ्जतुषाग्निन्तु भूगर्ते वितयं चिपेत्॥ तस्योपरि स्थितं खत्नं तप्तखन्नमिदं भवेत्। खह्नं लोहमयं ग्रस्तं पाषाणोत्यमयापि वा॥ श्रजीणं चाप्यवीजञ्च यत्सूतं घातयेत्ररः। ब्रह्महा स दुराचारो मन्बद्रोही महेश्वरि !॥ रामठं पञ्चलवणं तथा चारचतुष्टयम्। विकटं शृङ्गवेरच मातुलुङ्गरसाप्नुतम्॥ पिण्डमध्ये रसं दत्त्वा खेदयेत् सप्तवासरम्। मारणालेपसङ्गाण्डे ग्रासार्थी जायते भ्रुवम्॥ एतदेव रसं यताज्जम्बीरनीरसंयुतम्। दिनैकं धारयेद्धमें मृत्याते वा मृतो भवेत्॥ तदा ग्रासः प्रदातव्यः स्वर्णग्रुद्धिः ग्रनैः ग्रनैः । चतुर्दगदिनान्यन्तः क्रमाज्जीर्णस्य चालयेत्॥ स्तं खणें व्योमगङ्ग-तुच्यं रक्षाद्रवैदिनम्। मर्दयेदीजसंयुत्तं चार्वाचारणयन्दके॥ सर्वकौर्मलिकादावैदिनमेकन्तु मर्दयेत्। गर्भयन्वगतं पाचं मन्तयेत् पूर्ववद्रसम्॥ ब्रह्मदण्डी मेघनादा चित्रकः कटुतुम्बिका। वज्जवन्नी बला कन्या त्रिकटुर्कसुद्दीपयः॥ कन्दो रस्था च निर्गुण्डी लज्जा जाती जयन्तिका। विणाक्रान्ता हस्तिग्रण्डी दट्ठन्नो सङ्गराट् पटुः॥ गुडूची लाङ्गली नीरकणाकालीमहोरगाः।

काकमाची च दन्ती च सर्पाची चाईचन्द्रिका॥
एता समस्ता व्यस्ता वा देया च्चष्टादशाधिकाः।
उक्तस्थाने प्रयोक्तव्या रसराजस्य सिडये॥
बालुकायन्त्रः।

हिङ्ज्बर्धाः । मिषीचीराम्ब्रह्माणां दरदं घर्मभावितम् । सप्तवारं प्रयत्नेन गुडिमायाति निश्चितम् ॥

गसकग्रितः। ग्रुकपच्चसमच्छायो नवनीतसमप्रभः। मस्णः कठिनः स्निग्धः खेष्ठो गन्धः स उच्यते ॥ साज्यभाग्डे पयः चिष्ठा मुखं वस्त्रेण वेष्टयेत्। तत्पूर्वं चूर्णितं गन्धं यावेण बीधयेत् पुनः॥ भाग्डं निचिप्य भूम्यन्ते रुड्डा देयं पुटं लघु। तत्चीरेण द्रतं गन्धं गुडं योगेषु योजयेत्॥ गन्धं प्रते विपक्तव्यं यावत्तैलिनभं भवेत्। वस्त्रेणान्तरितं क्रात्वा चालयेत त्रिंगदन्तरम्॥ पुनविंगति संयाद्यं गुडाष्टदादम क्रमात्। श्रष्टमाषं चतुर्घं वाष्यर्डच्चैव समांश्रकम्॥ प्रतियासे तप्तख्ले दिनमन्तेन मर्देयत। विना यन्त्रे चिपेत् तच जम्बीररससंयुतम्॥ तदयन्त्रं धारयेह्नमें दिनं स्याज्जारितो रसः। तं पटुचारगोमूत्रं सुक्चीराम्बै: प्रलेपिते ॥ दृद्वस्त्रे विचर्बेद्वा सद्वटे स्वेदयेद् बुधः। काञ्जिके चारसंयुक्ते यन्त्रे पाच्यं त्राइर्निशम्॥ तद्इत्य रसं देयं खन्ने संमर्दयेत् चणम्। संमद्ये पूर्ववत् पेष्यं यन्त्रे लिप्तपुटे पुनः ॥ क्रमे पाकेन दिवसे विभिग्रीसः प्रजीर्थिति। जीवितं न यतः तस्मादीजं दत्त्वा विमर्दयेत्॥

प्रतिगासं तप्तख्ते यथागत्त्या च जार्येत्। तं जीणें मारयेत् सूतं मारणं कथाते द्रवै:॥ यङ्गोलस्य शिफाञ्चाद्भिः पिष्टा खल्ने विमर्दयेत्। सूतं गन्धकसंयुक्तं दिनान्ते तिहशीधयेत्॥ पुटयेङ्गधरे यन्त्रे दिनान्ते तन्मृतं भवेत्। क्रणधुस्तरतैलेन सूतं मर्घं दियामकम्॥ दिनैकं,तत्पचेद् यन्त्रे कट्पाके न संग्यः। रसं गन्धं समं मदीं दिनं निर्गुण्डिकाद्रवै:॥ वजमूषान्वितं भातं भसा सूतं भवेनालम्। स्तमूर्णां रसं गुञ्जां मधुलाचाञ्च टङ्गणम्॥ मर्दयेद् भङ्गजद्रावैदिनैकं भाषयेत पुनः। धाते भस्मलमायाति ग्रहस्फटिकसन्निभः॥ दिपलं सूतराजस्य पलैकं गन्धकस्य च। कचानीरेण संमर्छ दिनमेकं निक्त्तरम्॥ बड्डा तड्रधरे यन्त्रे दिनैकां मारयेत् पुटात्। दत्येवं जारिते सूते मारणं परिकोत्तितम्॥ श्रयवा मासयोग्यन्तु इन्यागन्धान्वितं रसम्। स्तञ्च घनसत्तञ्च मर्दयेत् कङ्ग्लीद्रवै:॥ दिनेकं गोलकचैव शोषयेदातपे खरे। गर्भयन्वगतं पाचं विदिनन्तु महाग्निना॥ करीषाग्नी दिवारावी पचित्वा भस्मतां नयेत्॥

समाप्तम्।

## दत्तावेयतन्त्रम्।

श्रीदत्तावेय उवाच।

कैलासिशखरासीनं देवदेवं महेखरम्।
दत्तात्रेयस पप्रच्छ ग्रङ्गरं लोकग्रङ्गरम्॥१॥
क्राताञ्चलिपुटो भूत्वा समूचे भक्तवस्वनम्।
भक्तानाञ्च हितार्थाय कालमन्त्रं प्रकथ्यताम्॥२॥
कली सिडिर्महाकाल ! मन्त्रतन्त्रविधायिका।
कथयस्व महादेव ! देवदेवं महेखरम्॥३॥
सन्ति नानाविधा लोके यन्त्रमन्त्राभिचारिकाः।
ग्रागमोक्ताः पुराणोक्ता वेदीक्ता डामरे तथा॥४॥
उड्डीग्री मेर्नतन्त्रे च कालचण्डेखरे तथा।
राधातन्त्रे च देवेग्र ! तारातन्त्रेऽस्तिखरे॥५॥
तक्तवें कीलकं कत्वा कली वीर्थ्यविवर्जितम्।
बाह्मणाः कामवग्रगास्तेषां कारणसिद्धये॥६॥
कीलकञ्च विनामन्त्रं कार्थ्यसिद्धिप्रदं नृणाम्।
कथयस्व महादेव ! क्रपां कुरु मम प्रभो !॥०॥
शीर्वश्वर उवाच। श्रणु सिद्धं महायोगिन् ! सर्वयोगविशारद !।

मन्विद्यां महागुप्तां देवानामिष दुलेभाम् ॥ ८ ॥
तवागे कथितो ह्यष मन्विद्याधिरामिषः ।
गुह्याद् गुह्यं महागुह्यं गुह्यं गुह्यं पुनः पुनः ॥८॥
गुरुभक्ताय दातव्यं नाभक्ताय कदाचन ।
धिवभक्तेकमनिस दृढ्चित्तसमन्विते ॥ १० ॥
श्रयातः संप्रवच्यामि शृषु श्रेयस्तथाऽऽत्मनः ।
कली सिद्धं महामन्वं विना कालेन कथ्यते ॥ ११

न तिथिन च नच्छं नियमो नास्ति वासरः। न पूजा न जपो होमो न च कालादिनिर्णय:॥ १२॥ केवलं मन्वतन्त्रेण श्रीषधी सिडिरूपिणी। यस्य साधनमात्रेण चणं सिडिय जायते॥ १३॥ मारणं मोइनं स्तमां विदेषोचाटनं वशी। याकर्षणम् इन्द्रजालं यचिणो च रसायनम् ॥ १४ ॥ कालज्ञानम् अनाहारं तथैव निशिदर्शनम्। बस्यापुत्रवतीयोगं सता च सतजीवितम् ॥ १५॥ वाजीकरणविद्या च भूतग्रहनिवारणम्। सिंह्याघ्रभयं सर्पवृश्विकानां तयैव च॥ १६॥ विषादिनाशनञ्जेव नान्यया ग्रङ्गरोदितम्। गोष्यं गोष्यं महागोष्यं गोष्यं गोष्यं पुनः पुनः ॥ १७॥ नवींपरिमन्तः। - "श्रीं परं ब्रह्म परमात्मने श्रीं नमः उत्पत्ति-स्थितिप्रलयकराय ब्रह्महरिहराय विगुणात्मने सर्वेकीतुकानि दर्भय दत्तात्रेय! नमः तन्त्राणि सिडिं कुरु कुरु स्वाहा"।

इति दत्ताचेयतन्त्रे ईसरदत्तावेयसंवादे प्रथमः पटलः।

## अय मोहनम्।

गेइंबर उवाच । तुलसीवीजचूर्णन्तु सहदेवीरसेन च ।
तिलकच्च रवी वारे मोहनं सर्वती जगत् ॥ १ ॥
हरितालम् श्रव्यगन्धां पेषयेत् कदलीरसे ।
गोरीचनासमायुक्तं तिलकं लोकमोहनम् ॥ २ ॥
श्रृङ्गीचन्दनसंयुक्तः वचाकुष्ठसमन्वितः ।
घूपो ग्राह्यस्त्या वस्त्रे मुखे चैव विशेषतः ।
राजप्रजापिद्यपग्र-दर्शनामोहकारकः ॥ ३ ॥

वटीत्तरमतजपेन मिद्धि: ॥ १८॥

सिन्द्रं कुङ्कमञ्जेव गोरोचनसमन्वितम्। धातीरससमायुक्तं तिलकं लोकमोहनम्॥ ४॥ मन:शिलाच कर्प्रं पेषयेत् कदलीरसे। अनेनैव तु तन्त्रेण तिलकां लीकमी हनम्॥ ५॥ खेतार्कमूलं सिन्द्रं पेषयेत् कदलीरसे। अनेनैव तु तन्त्रेण तिलकां लोकमो इनम् ॥ ६ ॥ भृङ्गराजी द्यपामार्गः लज्जाल् सहदेविका। एभिस्तु तिलकं कला तैलोकां मोहयेतरः॥ ७॥ खेतगुज्जारसं पेष्यं ब्रह्मदन्याय सूलकम्। लेपमात्रे श्रीराणां मोइनं सर्वतो जगत्॥ ८॥ खेतार्कम्लमादाय खेतचन्दनसंयुतम्। अनेन तिलकं कुला बैलोकां मोहयेनरः॥ ८॥ विल्वपत्रं गरहीला तु क्षायाग्रष्कन्तु कारयेत्। कपिलापयसाक्तेन वटिं क्वत्वा तु गोलकम्॥ एभिस्तु तिलवां काला मोइनं सर्वतो जगत्॥ १०॥ विजयापत्रमादाय खेतसर्पपसंयुतम्। अनेन लेपनादेव मोहयेत् सर्वतो जगत्॥ ११॥ ग्रहीला तुलसीपत्रं कायाग्रष्कन्तु कारयेत्। ग्रखगन्धासमायुक्तं विजयावीजसंयुतम् ॥ १२॥ कपिलादुग्धसार्डेन वटी रित्तप्रमाणतः। भचिता प्रातक्खाय मोहयेत् सर्वतो जगत्॥ १३॥ पञ्चाङ्गदाडिमं पिष्टा खेतगुञ्जासमन्वितम्। एभिस्त तिलवं क्रांता मोहयेत् सर्वतो जगत्॥ १४॥ कट्तुम्बीवीजतैल-वर्त्तिज्वालासु कज्जलम्। ग्रहीत्वा चाञ्चयेत्रेतं मोहनं भवति ध्रुवम् ॥ १५ ॥

इति यीदत्तावेयतन्त्रे मीहनं नाम दितीय: पटल:।

#### यय यग्निस्तक्षनम्।

अयातः सम्प्रवच्यामि अग्निस्तभानम्त्रमम्। यसी कसी न दातवां नान्यया शङ्करोदितम्॥१॥ वसां ग्रहीत्वा माण्डूकीं कीमारीरसपेषिताम्। लेपमात्रे श्रीराणाम् श्रग्नस्तभः प्रजायते ॥ २॥ श्रर्कदुग्धं समादाय कुमारीवारि पेषयेत्। लेपजाते शरीराणाम् अग्निस्तभः प्रजायते ॥ ३॥ कदलीरसमादाय कुमारीरसपेषितम्। लेपमाचे शरीराणाम् श्राग्नस्तभः प्रजायते ॥ ४ ॥ मग्डकस्य वसा याच्या कर्परेगीव संयुता। लेपमाने गरीराणाम् अग्निस्तमः प्रजायते ॥ ५ ॥ कुमारीकन्द्रमादाय कदलीकन्द्रसंयुतम्। लेपमात्रे श्रीराणाम् अग्निस्तमः प्रजायते ॥ ६ ॥ पिप्पनीमरिचं ग्रुग्ठीं चर्वियता पुनः पुनः। दीप्ताङ्गारे नरिर्भुती: न वक्कां दह्यते क्वचित्॥ ७॥ त्राज्यं शर्करया पीला चर्वयिला च नागरम। तप्तलो हे मुखे चिप्ते वक्कां न दह्यते कचित्॥ ८॥

षय नतः। — "श्रीं नमी श्राग्निरूपाय मम शरीरे स्तन्मनं कुरु कुरु स्वाहा"। षटीनरशतजपेन सिंडि:।

रभवजपन ।साइ: । अय आसनसमानम् ।

चर्मकारस्य कुग्डानां मलं ग्राद्यं तथा रजः।
चटकीरुधिरै र्युत्तं यस्याग्रे तद् विनिचिपेत्॥१॥
तस्य स्थाने भवेत् स्तम्भः सिडियोग उदाहृतः।
यस्मै कस्मै न दातव्यं नान्यथा गङ्करोदितम्॥२॥
खेतगुद्धाफलं चिप्तं नृकपाले तु मृत्तिकाम्।
विलं दत्त्वा तु दुग्धस्य तस्य वृद्यो भवेद् यदा॥३॥

तस्य ग्राखा लता ग्राह्या यस्याग्रे तां विनिचिपेत्।
तस्य स्थाने भवेत् स्तभः सिडियोग उदाहृतः॥ ४॥
त्रथ मनः।—"श्रीं नमो दिगस्वराय त्रमुकासनस्तभनं
कुक् कुक् स्वाहा"। अष्टीत्रगतजपेन सिडिः॥
त्रथ बुडिस्मनम्।

जन्विष्ठां \* ग्रहीत्वा तु क्वायाश्रष्कान्तु कारयेत्। ताम्बूले यस्य दातव्यं वृिष्टत्भानमुत्तमम्॥१॥ भृङ्गराजरमेभीव्यं सिडार्थं खेतनामकम्। एभिस्तु तिलकं दत्त्वा वृिष्टत्भानमुत्तमम्॥२॥ सहदेवीमपामार्गं लोहपाते च पेषयेत्। तिलकं सर्वभूतानां वृिष्टत्भाकरं भवेत्॥३॥

मलः।—"ग्रीं नमी भगवते शत्रूणां वुद्धिं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा"॥

अय शस्त्रसमानम्।

पृष्यार्केण समुद्रुत्य विशाकान्तास्वमूलकम्।
वक्रो शिरिस धार्य्येत गस्तं संहरते नृणाम्॥१॥
वराह्यात्रभूपाल-चौरगत्नुभये जयम्।
जातीमूलं मूखे चिप्तं गस्त्रस्तभनमुक्तमम्॥२॥
करे सुदर्गनामूलं बड्डा स्तभनगस्त्रकम्।
केतकी मस्तके चैव तालमूलं मुखे स्थितम्॥
खर्जूरीचरणे हस्ते खद्भस्तभः प्रजायते।
एतानि त्रोणि मूलानि चूर्णेन च ष्टतः पिवेत्॥
ग्रहोरात्रं ततः ग्रस्त्रैर्यावज्जोवं न बाध्यते।
ग्रायान्तं ग्रैवगस्त्रञ्च सम्मुखे सित्तवारयेत्॥३॥
ग्रहोत्वा पुष्यनचने ग्रपामार्गस्य मूलकम्।
लिपमात्रे ग्रीराणां सर्वग्रस्त्रनिवारणम्॥॥॥॥

अलुकविष्ठामित्यत्र जलूविष्ठामिति निर्देश:।

खर्जूरी मुखमध्यस्या कटीबडा च केतकी। भुजदण्डस्थिते चार्के सर्वशस्त्रनिवारणाः॥ ५॥ पुषार्के खेतगुञ्जाया मूलमुड्तय धारयेत्। इस्ते चास्त्रभयं नास्ति मंग्रामेषु कदाचन ॥ ६॥ ग्रहीला रविवारे तु विल्वपत्रञ्च कोमलम्। पिष्टा विससमं सदाः शस्त्रस्तभानलेपनात् ॥ ७ ॥ यथ मलः। — "श्रीं श्रष्टो कुभाकर्ण महाराचस निक्रधागर्भ-भूत परसैन्यस्तंभन महाभगवन् ! रुद्रोपजयति स्वाहा"।

शेत्तरशतजपेन सिडि: ॥ ८॥

वर्षपः। — वि**र्णुक्रान्**तीयवीजानि मन्त्रभावेण ग्राह्येत्। तत्तेलं याइयेत् पात्रे विषच्चेव समन्वितम् ॥ भक्षाततेलसंयुक्तम् अहिफीनच संयुतम्। परमूत्रच संयुक्तं धुस्तूरवीजचूर्णकम्॥ तालचैव रसं युत्तं गन्धकच मनःशिला। गन्धकाञ्चेव संयुक्तं विटका क्रियते नरै:॥ पञ्चटङ्गप्रमाणानि शस्त्रलेपन्तु कारयेत्। रणे दारुणशस्त्रीघं खण्डं खण्डं प्रजायते॥ गस्तं दृष्टा पलायन्ते यथा युदेषु कातराः। वया भवति शस्त्रञ्च न भयं विद्यते क्वचित्॥ १॥

भय मनः। — अों नमो विकरालरूपाय महाबलाय परा-माय ग्रमुकस्य भुजवलं वस्थय वस्थय दृष्टिं स्तभाय स्तभाय 

अय सेनानिस्तमानम्।

मन्ताभावेण ग्रह्लीयात् खेतगुज्जाविधानकम्। निखनेच समाने वै पाषाणं तत दापयेत्॥

श्रष्टी च योगिना पूज्या रोद्री माहेश्वरी तथा। वाराही नारमिंही च वेषावी च कुमारिका॥ लच्मीर्वाच्ची च संपूज्या गणेशो वट्कस्तथा। चेत्रपालः सटा पूज्यः सेनास्तमो भविष्यति॥ पृथक् पृथक् बलिं दत्वा दशानामविभागतः। मांसं मद्यं तथा पृष्यं धूपं दीपाबलिक्रियाम्॥ यस्मौ कस्मौ न दातव्यं नान्यथा शङ्करोदितम्॥

मनः।—"ग्रीं नमः कालराति तिशूलर्धारिणि ! मम शतु सैन्यस्तभानं कुरु कुरु खाहा"। अधीत्तरशतजपेन सिंडिः॥ २॥

#### अय सेनापलायनम्।

भीमवारे ग्रहीत्वा तु काकोलूकी तु पिचिणी।
भूर्जपत्रे लिखेनान्त्रं तस्य नाम समन्वितम् ॥
गीरोचनैः गले वहा काकोलूकस्य पिचणः॥
सनानीसमुखं गच्छेत् नान्यया ग्रङ्करोदितम्॥
गव्दमात्रे सैन्यमध्ये पलायन्तेऽतिनिश्चितम्॥
राजाप्रजागजाद्याश्च नान्यया ग्रङ्करोदितम्॥ १॥

मनः।—"श्री नमी भयद्भराय खद्भधारिणे मम ग्रत्नुसैन्य पनायिनं कुरु कुरु खाहा"। अष्टीचरणतजपेन मिडिः॥ २॥

श्मशानभस्मनाऽऽलिप्य स्वत्तिकापात्रमध्यतः। रिपुनामसमायुक्तं नीलस्त्रेण बन्धयेत्। गर्न्तकुण्डे विनिचिप्तो पाषाणोपरि दीयते। स्तभनं कुरुते सैन्यं सिडियोग उदाहृतः॥३॥

अय गीमहिष्यादिसमानम्।

उद्रस्थास्थि चतुर्दिचु निखनेट् भूतले घ्रुवम् । गोमहिष्यादिकस्तमः सिबियोग उदाहृतः ॥ १ ॥ उट्टलोमं ग्रहीत्वा तु पश्चपरि विनिच्चिपेत्। पश्चनां भवति स्तम्भः सिडियोग उदाहृतः॥ २॥ मनुष्यसम्भनम्।—धृत्वा रजस्त्रलावस्त्रं गोरीचनसमन्वितम्। यस्य नाम च्चिपेत् कुम्भे सद्यः स्तम्भनकारकः॥३॥

निद्रासमनम्। मृलं व्रहत्याः मधुकं पिष्टा नस्यं समाचरेत्। निद्रास्तमानमेतिष्ठ मृलदेवेन भाषितम्॥५॥

नौकासभनम् ।—तरखां चीरकाष्ठस्य कीलं पञ्चाङ्गुलं चिपेत् । नीकास्तभानमेतिष्ठ सूलदेवेन भाषितम् ॥६॥

जनसभनम्। पद्मकं नाम यद्द्रव्यं सूद्धाचूर्णन्तु कारयेत्। वाषीकूपतड़ागादी निच्चिपेत् स्तभते जलम्॥

मनः।-- "श्रीं नमी भगवते रुट्राय जलं स्तन्मय स्तन्भय

ठ: ठ: ७: । अष्टोत्तरशतजपेन सिद्धि: ॥৩॥

गभं सभागम्। एर गड़ वीजं ऋत्वन्ते भुतां स्तभाग गभं कम्। किटवं हिम मूलं गर्भस्त भागवं परम्॥ ८॥ सिडार्थ मूलं शिरसि वड्डा कान्तं रमेत्तु या। न गभं धारयेत् सा स्त्री मुक्तेन लभते पुन:॥८॥ धुस्तूर मूलचूर्ण न्तु यो निस्यं स्तम्भनमातम्। तण्डु जो मूलतो यो निरम्भेषु निम्बका छेन युक्तितः। ऋत्वन्ते दीयते तत्र गर्भेदुः ख्विव जिता॥

बब मन्द्रः ।—"**श्री गर्भ स्तस्मय स्तम्भय स्ताहा" ॥**ू, ब्रष्टीत्तरशतजपेन सिडिः ॥ ११ ॥

इति श्रीदत्तावेयतन्त्रे दृश्वरदत्तावेयसंवादे सभनं नाम चतुर्थः पटलः।

## अथ विदेषणम्।

इंबर उवाच। - विद्वेषो नरनारीणां विद्वेषो राजमन्त्रिणः। महाकौतुकविदेषं युणु सिद्धिं प्रयत्नतः ॥ १ ॥ एक इस्ते काकपचम् उल्पचं करेऽपरे। मन्त्रियता मिलत्ययं क्षणासूत्रेण वन्धयेत्॥ श्रञ्जलिञ्च जले चैव तर्पयेत् हस्तपचकैः। एवं सप्तदिनं कुर्यादष्टीत्तरमतं जपेत्॥ ग्रहीला गजनेशच ग्रहीला सिंहनेशनम्। ग्रहीला मृत्तिकापादं पुत्तिलं निखनेइवि॥ ग्रग्निस्तस्योपरि स्थाप्यो मालती कुसुमा हुति:। विदेषं कुरुते तस्य नान्यया शङ्करोदितम् ॥ २॥ मार्ज्ञारविष्ठामादाय विष्ठामादाय मौषिकीम्। पादानां मृत्तिकायुक्तां पुत्तिलं क्रियते ततः॥ नीलवस्त्रेण मंविष्य मन्त्रयित्वा शतेन च। विदेषं तत्चणाचैव भातरी तातपुचकी॥ ३॥ गरहीला सर्पदन्तञ्च गरहीला बसुरीमकम्। चिताभस्मसमायुक्तां गुटिकां कारयेवर:॥ उद्याने निखनेडुमी मन्त्रयित्वा सनामकम्। विद्वेष तत्वणाचैव नान्यया शङ्करोदितम्॥ ४॥ सभायां धूपयन् बभ्नु-रोमका ह्यकञ्चकै:। विद्वेषं जायते सत्यं नान्यया शङ्करोदितम्॥ ५॥ ग्रहीता खानरोमाणि मार्जारस्य तथा नखम्। सभायां दीयते धूपो विदेषं जायते तदा ॥ ६ ॥ ग्रहीता शिखिविष्ठाच सर्पदन्तच पेषयेत्। ललाटे तिलकं कत्वा विदेषो जायते चणात ॥ १॥ ग्रहीत्वा गजदन्तञ्च ग्रहीत्वा सिंहदन्तकम्।
पेपयेत् नवनीतेन तिलकं देषकारकम्॥ ८॥
ग्रश्वकेग्रं ग्रहीत्वा तु माहिषं केग्रमुत्तमम्।
सभायां दीयते धूपं विदेषो जायते ध्रुवम्॥ ८॥
सज्जकीकण्टकं धृत्वा निखनेद् द्वारतो भुवि।
कलहो जायते नित्यं विदेषं जायते तदा॥ १०॥
यस्य, यस्य भवेदैरं जीवाजीवो भवेत् तदा।
तत्पदोर्मृत्तिकायुक्तं ग्रतुपांग्रसमन्वितम्॥
पुत्तलो क्रियते सम्यक् श्मग्राने निखनेद्वुवि।
विदेषो जायते सत्यं सिद्धियोग उदाहृतः॥ ११॥
—"श्रों नमो नारायणाय श्रमुकं श्रमुकेन सह

अव मनः।—"श्रीं नमी नारायणाय श्रमुकं श्रमुकेन सह ।देषं कुरु कुरु स्वाद्या"। अर्थात्तरशतजपेन सिंडिः॥ १२॥ इति श्रीदत्तावेयतन्ते र्श्यरदत्तावेयसंवादे विदेषी नाम पञ्चमः पटलः।

अथ उच्चाटनम्।

वर उवाच । येन हृतं ग्टहं कन्या धनं पुत्तः कलत्रकम् ।
उचाटनवधं कुर्याद् दुष्टदण्डो विधीयते ॥ १ ॥
त्रह्मदण्डो चिताभस्म श्विनिक्षे प्रलेपयेत् ।
सिंदार्थञ्चेव संयुक्तं श्वीनवारे चिपेद् ग्टहे ॥
उचाटनं भवेत् तस्य जायते मरणान्तिकम् ।
विना मन्त्रेण सिंदिश्व सिंदियोग उदाहृतः ॥ २ ॥
सिंदार्थं श्विनिर्मात्वं यदुग्टहे निखनेत्ररः ।
उचाटनं भवेत्तस्य उदृते च पुनः सुस्तो ॥ ३ ॥
काकपचे रवी वारे यदुग्टहे निखनेत्ररः ।
उचाटनं भवेत्तस्य नान्यथा शङ्करोदितम् ॥ ४ ॥

उन्तविष्ठां ग्रहीत्वा तु सिडार्धसहसंयुतम्।

यस्याङ्गे नि:चिपेचूणें तस्य उचारनं परम्॥ ५॥

उन्तपचे कुजे वारे यद्ग्रहे निखनेन्नरः।

उचारनं भवेत्तस्य विना मन्त्रेण सिडाति॥ ६॥

ग्रहीत्वीडुम्बरं कीलं मन्त्रेण चतुरङ्ग्लम्।

तं यस्य निखनेन्नेहे तदाऽस्थोचारनं भवेत्॥ ७॥

काकोन्त्रस्य पचन्तु हुत्वा चाष्टाधिकं म्यतम्।

यन्नाम्ना मन्त्रयोगेन तदाऽस्थोचारनं भवेत्॥ ८॥

गरहोत्वा नरकङ्गालं निखनेचतुरङ्ग्लम्।

मन्त्रयुक्तं गरहदारे सद्य उच्चारनं भवेत्॥ ८॥

मनः।—"श्रीं नमी भगवते क्ट्राय दंष्ट्राकरालाय श्रमुकं सपुत्तवान्धवै: सह हन हन दह दह पच पच शीघ्रम् उच्चाटय उच्चाटय हुं फट् खाहा ठ: ठ:"। श्रष्टोत्तरशतनपेन सिंडिः॥ १०॥

इति श्रीदत्तावेयतन्त्रे ईश्वरदत्तावेयसंवादे उचाटनं नाम षष्ठः पटलः।

# अय सर्वजनवशीकरणम्।

इंशर उवाच।—ब्रह्मदग्डीवचाकुष्ठ-चूर्णैस्ताम्बूलदापनात्।
रवी वारे क्वते योगः सर्वलोकवग्रङ्करः॥१॥
ग्रहीत्वा वटमूलञ्च जलेन सह घर्षयेत्।
विभूत्या संयुतो भाले तिलको लोकवश्यक्वत्॥२।
पुष्ये पुनर्नवामूलं करे सप्ताभिमन्त्रितम्।
बङ्घा सर्वत्र पूजार्हः सर्वलोकवग्रङ्करः॥३॥
श्रपामार्गस्य मूलन्तु कपिलापयसाऽन्वितम्।
ललाटे तिलकं क्रत्वा वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥४॥

ग्रहीला सहदेवीच कायागुष्काच कारयेत्। ताम्बूले दत्तचूर्णेन्तु सर्वलोकवगङ्करम्॥ ५॥ रोचनासहदेवीभ्यां तिलको लोकवश्यकत्। ग्रहीत्वीड्म्बरं मूलं ललाटे तिलकं क्रतम्॥ प्रियो भवति सर्वेषां दृष्टमात्रो न संग्रयः। ताम्ब्लेन प्रदातव्यं सर्वलोकवग्रङ्गरम्॥ ६॥ देवदानी, च सिडार्थं गुटिकां कारयेद् बुध:। मुखे निचिष्य सर्वेषां सर्वेलीकवशङ्करम्॥ ७॥ कुङ्मं तगरं कुष्ठं हरितालं मनःशिलाम्। ग्रनामिकाया रक्तेन तिलको सर्ववश्यक्तत्॥ ८ ॥ गोरोचनां पद्मपत्रं प्रियङ्गं रक्तचन्दनम्। एकोक्तत्याञ्जयेनेते सर्वेनोकवगङ्गरम्॥ ८॥ ग्रहीला खेतगुञ्जान्तु कायागुष्कान्तु कारयेत्। कपिलापयसाक्तेन तिलको लोकवश्यकत्॥ १०॥ खेतदूर्वां ग्रहीता तु क्रिपनादुग्धपेषणात्। लेपमाचे प्ररीराणां सर्वलोकवग्रङ्गरम् ॥ ११ ॥ खेतमर्कं ग्रहीत्वा तु कायाग्रष्कन्तु कारयेत्। कपिलापयसात्तेन तिलको सर्ववस्थलत्॥ १२॥ विल्वपवाणि संग्टह्य मातुलुङ्गं तयैव च। यजादुग्धेन संपेष्य तिलको लोकवश्यक्तत् ॥ १३॥ कुमारीकन्दमादाय विजयावीजसंयुतम्। तिलकं क्रियते भाले सर्वलोकवशङ्करम्॥ १४॥ हरितालमखगन्धां सिन्द्रं कदलीरसम्। तिलकं क्रियते भारी सर्वलोकवशङ्करम्॥ १५॥ त्रपामार्गस्य वीजानि कागीदुग्धेन पेषयेत्। लेपमाचे शरीराणां सर्वलोकवशङ्करम् ॥ १६ ॥

हरितालं तुलसिकां किपलादुग्धपेषिताम्। अनेन तिलकं भाले सर्वलोकवशङ्करम्॥ १७॥ धात्रीफलरसै भीव्या अखगन्धा मनःशिला। अनेन तिलकं भाले सर्वलोकवशङ्करम्॥ १८॥

मन्तः।—"श्रीं नमः सर्वलोक्तवग्रङ्कराय कुरु कुरु स्वाहा" अष्टीत्तरशतजपेन सिद्धिः।

इति यौदत्तावयतन्त्रे द्रियरदत्तावयसंवादे वय्यकरं नाम् सप्तमः पटलः।

# अय स्तीवशीकरणम्।

देशर उवाच। - रविवारे ग्रहीत्वा तु क्षणाधुस्तूरपुष्पकम्। शाखालतां गरहीला तु पत्नं मूलं तथैव च॥ पिष्टा कर्परसंयुक्तं कुङ्कमं रोचनं समम्। तिलके स्त्री वशीभूता यदि साचादरुखती ॥ १॥ काकजङ्घा वचा कुष्ठं ग्रुक्रशीरिकतिमित्रितम्। दत्त्वा तु भोजने बाला श्मशाने ऋन्दते सदा ॥२॥ चिताभस्म वचा कुष्ठं कुङ्गमं रोचनं समम्। चुणं स्त्रीशिरसि चिष्वा वशीकरणमुत्तमम्॥ ३॥ जिह्वामलं दन्तमलं नासाकर्णमलं तथा। ताम्ब्लेन प्रदातव्यं वशीकरणसङ्गतम्॥ ४॥ भीमवारे लवङ्गञ्च स्तियाः शिरसि निचिपेत्। बधवारे समुद्रुत्य खाने पाने वशीभवेत्॥ ५॥ करपादनखानाञ्च तद्गसा क्रियते नरै:। खान पान प्रदातव्यं वशीकरणमज्ञतम्॥ ६॥ ग्निवारे ग्रहीत्वा तु वनितापादपांगुकम्। वाम प्रतालिकां कला तलेशसंयतां कताम्॥

नीलवस्त्रेण संवेध्य स्ववीर्योण च संयुताम्। सिन्द्ररलेपितां कत्वा निखनेद्वारवामके ॥ उज्जङ्गा वशमायाति प्राणैरपि धनैरपि। यस्मै कस्मै न दातव्यं देवानामपि दुर्लभम्॥ ०॥ ब्रह्मदण्डी चिताभस्म यस्याङ्गे निचिपेत्ररः। वशीभवति सा नारी नान्यया शङ्करोदितम् ॥ ८ ॥ पूगीफलं ग्रहीता तु चन्द्रवार्युते स्गी। खण्डकं वीय्यमंयुक्तं ताम्बूलं वश्यकारकम्॥ ८॥ ताम्बुलरसमध्ये च पिष्टा तालं मनःशिलाम्। भीमे तु तिलकं क्रत्वा वशीकचैव योषिताम्॥ १०॥ सिन्द्रं कदलोकन्दं पेषयेदु गुरुवासरे। अनेन तिलकं कला सद्यो नारी वशीभवेत्॥ ११॥ गोदन्तं नरदन्तञ्च पिष्टा तैलेन पेषयेत्। एभिस्तु तिलकां क्रत्वा कान्तावश्यकरं परम्॥ १२॥ —मलं ग्टहीला तु खाने पाने प्रदापयेत्। वशीभवति सा नारी विना मन्त्रेण सिध्यति ॥१३॥ स्वमूत्रसंयुतं कुष्ठं दत्तं पर्णेन वश्यक्तत । मलं जैह्वं जातीफलं ताम्बूले वध्यकारकम्॥ गरहीलोल्कमांसन्तु खाने पाने प्रदापयेत्। सिडियोगमिदं सत्यं विना मन्त्रेण सिध्यति॥ १४॥ यवचूर्णं हरिद्रा च गोमूचं घतसर्षपा:। ताम्बूलरससंयुक्तमनेन मर्दयेत् सुधी:॥ मुखं भवति पद्माभं पादौ पद्मदलीपमौ। प्रियो भवति सर्वेषां स्त्रीषु राजकुलेषु च॥ १५॥ गोरोचनं पद्मपत्रं पेषयेत् तिलकं कतम्। शनिवारे कते योगे वशीभवति कामिनी ॥ १६॥

ग्रहीत्वा मानतीपुष्यं पहस्त्रेण वर्त्तिका। भगुवारं नृकपाने एरण्डतैनकज्जनम्॥ कज्जनेनाञ्चयेत्रेतं दृष्टा नारी वशीभवेत्। विना मन्त्रेण सिद्धिः स्थानान्यथा शङ्करोदितम्॥

मन्तः।—"श्रीं नमः कामाख्या-देवि ! श्रमुकीं मे वशं कुर कुरु स्त्राह्या"। श्रष्टीत्तरशतजपेन सिद्धिः॥ १७॥ इति श्रीदत्तावियतने देशरदत्तावियसंवादे स्त्रीवशीकरणं नाम श्रष्टमः पटनः।

अय पुरुषवशीकरणम्।

देशर उवाच।—गोरोचनं पद्मपत्रं कदलीरससंयुतम्।

एभिस्तु तिलकं कत्वा पितवश्यकरं परम्॥१॥

पञ्चाङ्गं दाड़िमं पिष्टा खेतसर्षपसंयुतम्।

—लेपे पितं दासं करोत्यिप च दुर्भगा॥२॥

मालतीपुष्पसंयुक्तं कटुतैलं सुपाचितम्।

एतिज्ञस—नारी रती मोद्यते पितम्॥३॥

भौमे पूगीफलं भुक्तं प्रातर्गूयात् समाहरेत्।

श्रखण्डं जलनिधीतं ताम्बूले पितवश्यकत्॥४॥

जिह्वामलं सलवणं खाने पाने प्रदापयेत्।

पितवश्यकरं सत्यं दासदासस्तु जायते॥

मन्तः।—"श्रों नमो महापिचिणि पितं मे वश्यं कुरु कु स्वाहा"। अटीत्तरशतजपेन सिज्ञिः॥ ५॥ इति श्रीदत्तावेयतने दृश्वरदत्तावेयसंवादे पुरुषवशीकरणं नाम नवमः पटलः।

# अय राजवशीकरणम्।

देवर उवाच ।—कुङ्क्सं चन्दनचैव कर्पूरं तुलसीदलम् । गवां चीरिण तिलकं राजवश्यकरं परम् ॥ १ ॥ कर सुदर्भनामूलं बह्वा राजप्रियो भवेत्।
हरितालमध्यगन्धा कर्प्रञ्च मनः शिला।
श्रजाचीरेण तिलकं राजवध्यकरं परम्॥ २॥
ध्वा सुदर्भनामूलं पुष्यानच्ववासरे।
कर्प्र्रं तुलसीपतं पेषये क्षिप्रवस्तके॥
विष्णुक्रान्तानि वीजानि तैलं प्रज्वाच्य दीपके।
कर्ज्ञलं पातये द्रात्री श्रचिपूर्वः समाहितः॥
कज्जलेनाच्चयेत्रेतं राजवध्यकरं परम्।
चक्रवत्तीं भवेद्दध्यशान्यलोकेषु का कया॥३॥
श्रपामार्गस्य वीजानि ग्रहीत्वा पुष्यभास्करे।
खाने पाने प्रदातव्यं राजवध्यकरं परम्॥
मनः।—"श्रीं नमो भास्कराय तिलोकात्मने श्रमुकमहीपतिं

वशी कुरु कुरु स्वाहा"। अशीत्रशतजपेन सिंडि: ॥४॥
इति यीदत्तावेयतन्त्रे दृश्यरदत्तावेयसंवादे राजवशीकरणं नाम नवम: पटल:।

# अय आकर्षणम्।

शर उनाच । स्त्राक्षणिविधिं वच्चे शृणु सिडिं प्रयक्षतः ।

राजा प्रजा च सर्वेषां सत्यमाक्षणं भवेत्॥१॥
क्षणाधुस्तूरपत्नाणां रसं रोचनसंयुतम् ।

भूर्जपचे लिखेन्मन्त्रम् ग्रम्बमारकलेखनैः॥

यस्य नाम लिखेन्मध्ये खिदराङ्गारतापनात्।

गतयोजनमायाति नान्यया गङ्करोदितम्॥२॥

ग्रनामिकाया रक्तेन लिखेन्मन्त्रच्च भूर्जके।

यस्य मध्ये लिखेन्नाम मधुमध्ये च निच्चिपेत्॥

तदा चाक्षणं याति सिडियोग उदाहृतः।

यस्मै कस्मै न दात्र्यं देवानामिष दुर्लभम्॥३॥

रक्तपाले लिखेसान्तं गोरोचनरसेन च।
तापयेत् खदिराङ्गारैः त्रिसन्ध्यन्तु प्रयत्नतः॥
उर्वशी चापि स्वायाति नान्यया शङ्करोदितम्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं देवानामिष दुर्लेभम्॥

मनः।—"श्रीं नमी श्रादिपुरुषाय श्रमुकम् श्राकर्षणं कुर कुरु स्वाहा"। श्रष्टीत्तरभवजपेन विद्याः॥ ४॥

इति श्रीदत्तावेयतन्त्रे द्वेश्वरदत्तावेयसंवादे श्राकर्षणं नाम दशमः पटलः।

त्रथ त्वरितवश्यादिसिहियोगः।

वश्याकर्षणविद्देष-स्तभानी चाटनादिकम्।

कर्माणि कुर्यादिष्टानि मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥१॥

श्रालिख्य मन्त्रेण विदर्भितं तत् साध्याह्नयं तालवरस्य पत्ने।

प्राणान् प्रतिष्ठाप्य ग्रतं यथाऽष्टी ज्ञष्ठा ध्तञ्चेत् ग्ररणं प्रयाति॥२

पर्णान्यष्टी वै साहस्रं ज्ञष्ठा दत्तं भुत्त्र्ये यस्याः।

वश्या नित्यं प्रत्युद्देशाद्दास्यत्यर्थान् प्रार्थान् भोगान्॥३॥

मन्त्रं ज्ञष्ठा पञ्चककमलं यः कनकाह्वयपञ्चकयुक्तम्।

लेह्यभोज्यविधिषु प्रतियोज्यं सास्य याति वश्यमामरणान्तम्॥४॥

मूलं मूलकश्रुद्धभागसहितं चित्राह्वयस्य त्वचम्

पुष्यं वीजस्ववीर्थेष्टस्तिकुसुमं स्वर्णासिकान्तर्जनम्।

पत्रं रोहिणमङ्गपञ्चकमलं तद्वाण्डयुक्तं मिथो

दत्तं वा पुरुषस्य तद्दृतिमदं वश्याङ्गनामन्त्रयैः॥५॥

श्रष्टोत्तरश्रतं ज्ञष्ठा ह्यमारप्रस्नकम् ॥।

सप्तरात्री चिपेद् यस्या मूर्षि सास्य वशीभवेत्॥६॥

श्रष्टोत्तरगतं जक्षा हयमारप्रस्नकम् ॥ ।
सप्तरातौ चिपेद् यस्या मूर्भि सास्य वग्रीभवेत् ॥६॥
भूर्जे साध्यविदर्भितं मनुमिमं संलिख्य कौलालस्रत्स्नाकाकल्पितपुत्तली हृदि क्षतं प्राणान् प्रतिष्ठाप्य च ।

<sup>\*</sup> इयमार:-श्वेतकरवीरम्।

जष्ठा सप्तदिनं विसन्ध्यमय तामानोद्य भाण्डीरसैः \*
लिम्पेद्दश्यमवश्यमेव भविता चान्येषु जन्मस्विप ॥ ७॥
श्रष्टोत्तरमतं ज्ञष्ठा समूलकाण्डां क्षताञ्चलिं † शिरसा ।
धारयति सर्वेनोकप्रियो भविन्नियतमेव मन्तिवरः ॥८॥
तच्छतमखवन्नी नच्मी पुष्पाणि धारयेदेवम् ।
समुद्राभद्रकविणुप्रियाय मुषनीं समन्त्रजापेन ॥८॥
सयष्टिमुधुकां दूवीं सहाञ्चैव यथा धताम् ।

शिरसा सा तथैवैकं खर्गकत्वाणदायकम्॥१०॥
दगरिववसुरूदराममनुवासवाचिविश्वदेवभागे।
श्रञ्जत्वादि-क्रमशः संयोज्या दग्रकमिखलवश्यकरम्॥११॥
प्रत्येकं श्रतमष्टी जष्ठा संयोज्य च दग्रकमिषद्वा।
गुटिकोक्तत्व सहसाष्टं जष्ठा गुटिकया रिचता॥
तिलकक्रिया सुरनारीनरतोकरञ्जनादिकम्॥१२॥
किष्वाष्ट्रतिपितया तत्तचूर्णैर्विगर्भया वर्च्या।
सन्मय श्रामश्ररावे प्रयतासत्या सुकज्जलं पात्यम्॥
कज्जलमुडृतिमव तत् कर्पूर्युतं सहस्रपरिजप्तम्।
दिनमनुदिननयनयुतं कुर्यादिखललोककस्य वश्यकरम्॥१३॥

श्रातानं कुकुटं ध्याता खकीयगण्यक्तया।
साध्यां श्रृह्वलया कण्डे बङ्गा कर्षमनुत्रजेत्॥१४॥
सहस्रमर्डराते तु रातित्रयमतिन्द्रतः।
तुरीयकुक्टस्थान्ते साध्यनाम खकर्म च।
जपेत् सयोच्य वध्यादि-कार्य्येषु सकलेप्विप॥१५॥
यामारभ्य जपेदेनं पेषितं सा मदालसा।
विभ्रात्सदाद्रवसना मदनाकुलचेतना॥

भाण्डी—भागीं।

<sup>†</sup> क्रताञ्चलि - लज्जावतीम्।

उत्पुत्तगुद्याजघना शिथिलांश्वकभूषणा।
चलत्पादपरिन्यासा स्पुरद्रोमाञ्चकञ्चला॥
कामानलोणानिम्बासा शोभिताधरपत्तवा।
विकीर्ण केश्रपाशासी वेपिता घूर्णितेचणा।
रचिताञ्जलिरायाति स्वयमस्थालयं निश्चि॥१६॥

साध्याख्यानिवदर्भितं मनुमिमं ताम्बूलपत्नोदरे लेखन्या प्रतिलिख्य कर्मसहितं प्राणान् प्रतिष्ठाष्ट्र च। जक्षाऽष्टी यतमर्कदुग्धजनिते दीपे तिरात्नान्तरे गुप्तं दीपिश्खाग्निना स्वयममं वश्योवेशी चात्र्ययेत्॥१०॥ भूजें यन्त्रममं विलिख्य सक्तं साध्याह्नया संपुटम् प्राप्तप्राणमथाष्टकोत्तरशतं जप्तं तिरात्रं पुनः। चौद्रचीरष्टतेष्वदं पृथगपि प्रचिष्य मन्तं जपन् त्रालख्येव शरावके यनुसिसं तन्नामकर्मान्वितम् रात्नो रोचनया प्रणीतपवनं जक्षा च साष्टी शतम्। तस्या नाभिमुखाङ्गजन्मभवनं सन्तापयन् खादिरे वक्नी चेत्तमनङ्गवेगविवशा योषा समायाति च ॥१८॥ नाभिमात्रजले स्थित्वा साध्यनाम विदर्भितम्।

जपेत् सहस्रं तिदिनिसष्टामाकर्पयेद् ध्रुवम्। उलूककाकयोः पच्ची ग्रहीत्वा मन्विवत्तमः ॥२०॥ मन्त्रेणालिख्य वै शरावि निशायाञ्च साध्याच्चरसम्पृटितम्। मन्त्रं स्वापितपवनं सहस्रजप्तं चतुष्पये निखनित्। स्तम्भनमेतदवश्यं भविता जगतां नात्र सन्देष्ठः ॥२१॥ मन्त्रं स्वापितपवनं निजक्कतप्राणप्रतिष्ठकं कत्वा। प्रतिक्कतिमयवा ध्यायन समशानाङ्गारे मृतकवसननातम्।

सम्यग्धिष्ठितपवनां हृद्रतनाम्त्रीञ्च समन्वललाटाम्॥२२॥

सनाधिष्ठितपवनां सहस्रजप्तां प्रतिष्ठितप्राणाम् । स्वनं प्रतितीच्णतरं स्तमानमितितीच्णाम्बुनिचिप्ताम् ॥२३॥ विवतमन्त्रचितामयकोलकं सिहतकर्मसनाम समाक्तम् । तजपं त्रिसहस्रकसंख्यया पिय खनेदय याननिवारणम् ॥२४॥ विस्तिनिस्वतरौ रिपुनामयुक् मनुमिमं निष्यया क्रतनामकम् । वसहस्रजपादिषु साधितं पिय खनेत् स्वकसैन्यनिरोधनम् ॥२५ इति ग्रीदन्।वेयतन्ते ईश्वरदत्तावेयसंवादे दशमपटलान्वर्गत-

विरितवस्थादिसिइयीगः।

# यय दुन्द्रजालकौतुकम्।

र उवाच ।—दन्द्रजालं विना रचां न करोतीति निश्चितम् । रचामन्त्री महामन्त्रः सर्वेमिडिप्रदायकः ॥ मनः।—"ग्रीं नमी नारायणाय विश्वस्थराय दन्द्रजाल-ौतुकानि दर्भय दर्भय सिडिं कुरु कुरु स्वाह्य"। त्रष्टोत्तरणतज्ञपेन

डि:।

प्रवामनः ।— "श्रीं परं ब्रह्म परमात्मने सस ग्रीरे
। हि पाहि कुरु कुरु"। श्रेटोत्तर्यत्त जपेन विज्ञिः ॥ १ ॥
टवसनः — बाला तालकपञ्चाङ्गं विष्टितं कनकेन तु ।
टिश्माने दृष्टिवस्यं नान्यया ग्रङ्करोदितम् ॥ २ ॥
टिश्माने दृष्टिवस्यं नान्यया ग्रङ्करोदितम् ॥ २ ॥
टिश्माने दृष्टिवस्यं नान्यया ग्रङ्करोदितम् ॥ २ ॥
वीजादुद्वृतकार्पासं वित्तरेरण्डतेलके ।
तद्वितं ज्वालयेद्रात्रो सर्पवत् पग्यति भुवम् ॥ ३ ॥
विदर्भनम् ।— हिस्स्वस्य मुखे वीजं चिपेत् कार्पाससम्भवम् ।
तद्वितं ज्वालयेद्रात्रो दृस्यकं पग्यति भुवम् ।
विदर्भनम् ।—कार्पासस्य च योज्ञानि नक्कलस्य मुखे चिपेत् ।

रवी वारे क्वते योगे नान्यथा शङ्करोदितम् । तद्वर्त्तिं ज्वालयेत् सन्थ्यां नकुलं पथ्यति ध्रुवम् ॥५। सर्पदर्शनभेदः ।—एरण्डतेलजं दीपं श्रमीपुष्पाह्विकञ्चकम् ।

<sub>मर्पदर्शनमदः ।</sub>—एरण्डतलज दोप श्रमापुष्पाह्मिक्चुकम् । मण्डूकवसया दोपे सर्वे पश्यति सर्पवत् ॥ ६ ॥

मरटदर्भनम्। ह्दयं क्वकलासस्य ग्राइयेहिधिपूर्वकम्। तमेव तालपत्रेण वेष्टितं मुखदृश्यक्कत्। यस्मै कस्मै न दातव्यं देवानामिप दुर्लभम्॥ ७॥

तिमिरे दर्शनम्।—उलूकस्य कपालेन ष्टतेनाहृतकज्जलम्। तेन नेत्राञ्जनं क्षत्वा रात्रौ पठति पुस्तकम्॥८॥

मीनजीवनम्।—भन्नातैलेन मत्यन्तु लेपयेत् सर्वगात्रकम्। निचिप्ते जलमध्ये तु तत्चणान्मीनजीवितम्॥ ೭

मार्जारीकरणम्। चन्द्रवारे च निचिप्ते मुखे मार्जारके ध्रुवम्। जायते वीज एरण्डं मुखे धृत्वा विड़ालकम्॥१०

मातङ्गीकरणन्। अङ्कोलवीजे निचिते गुरुवारे दिपानने।
मन्त्रेण सिञ्चयेनित्यं यावदीजे फलं भवेत्॥
त्रिलीहवेष्टितं क्वता एकवीजं मुखे स्थितम्।
मत्तमातङ्गवीर्थस्तु वायुतुल्यपराक्रमः॥

विलीइम्। - दश हिम दिषट् ताम्तं षोड़शं रीप्यभागकम्।
एवं संख्या त्रिलीइस्य ज्ञातव्या सर्वकर्मणि ॥११॥

तुरगीकरणम्। — ह्यानने तु तद्दीजं रिववारे विनिच्चिपेत्।
जायन्ते सुफला वृच्चास्तद्दीजं याहदेत् पुनः॥
त्रिलीहैर्वेष्टितं कत्वा सुखमध्ये च धारितम्।
महावली महातेजो जायते च तुरङ्गमः॥ १२॥

हषभीकरणम्। — हषानने तु तहोजं निच्चिपे द्वृति निश्चितम्। तहीजं मुखमध्यस्यं तिली हैर्वेष्टितं कुरु। महावलो महातेजा जायते हषमय सः॥ १३॥ मगीकरणम्। - सृगानने तु तद्दीजं निचिपेट् भूतले ध्रुवस्। विलीहवेष्टितं वीजं सगराजसमी भवेत॥ १४॥ सिंहीकरणम्। —तद्दीजं सिंहवक्को च निचिपेच महीतले। विलौहवेष्टितं वीजं मुखमध्ये च धारितम्। महावली महातेजा जायते सिंहरूपपृक् ॥१५॥

कुक् रीकरणम्। — ग्रुनो वक्तो तु तदीजं निच्चिपेट् भूतले ध्रुवम्। तिली हवेष्टितं कत्वा मुखे चिष्ठा च कुक्रः ॥१६॥

नयूरीकरणम् ।—मयूरमुखमध्यस्यं तद्दीजन्तु विनिच्चिपेत् । विलीहवेष्टितं काला मयूरो दृश्यते जनै:॥ १७॥ यानि कानि च जीवानि जलस्यलभवानि च। श्रङ्गोलवीजे निचिप्ते मुखे भूमितले भुवम् ॥ तदीजं मुखमध्यस्यं विलीहेवें ष्टितं कर्। तत्तद्रपो भवेचार्ची नान्यया गङ्गरोदितम् ॥१८॥ क्रवलासस्य रक्तेन दर्पणाईस्य लेपनात्।

हणदर्भनम्।-धारयेच गिरेम् भ्रिं ग्रहणं दृश्यते जनै:॥ १८॥

महस्योकरणम्। —खञ्जरीटं सर्जावन्तु ग्टहोत्वा फालाने चिपेत्। पञ्जरे रचयेत तावद् यावज्ञाद्रपदं लमेत्॥ श्रदृश्यं जायते सत्यं देवैरपि न दृश्यते। करेण च शिखा ग्राह्मा विलीहैवें ष्टितां कुरु॥ गुटिका मुखमध्यस्या श्रदृश्यो जायते ध्रवम । यसी कसी न दातव्यं देवैरिप न दृश्यते॥ २०॥ अङ्गोलस्य तु वीजानि तत्तीलं याच्येत पुन:। भूपं दत्त्वा तु तत्तीलं सर्वेसिडिप्रदायकम्॥ २१॥

म्बीत्यादनम् :-पद्मवीजं चिपेत्तैले निचिपेच तडागके। तत्चणाज्ञायते चर्यां तत्चणात् कर्मणोद्भवः ॥२२॥ भामोत्यादनम्। -तत्तैलमाम्बवीजन्तु निचिपेडिन्दुमावतः।

जायते सफलो हचो नान्यथा ग्रङ्करोदितम् ॥२३॥ यानि कानि च वीजानि ग्रङ्कोलतैललेपनात्। सफलो जायते हचः सिडियोग उदाहृतः॥ २४॥ ग्रवसुखे बिन्दुमात्रं तत्तेलं निचिपेद् यदि। एकया स भवेजीवो नान्यथा ग्रङ्करोदितम्॥२५॥

खण्डदर्शनयोगः । वर्षाकाले मयूरन्तु कीटकेनैव भोजयेत्। तिद्वष्ठागोमयं युक्तं सृत्तिकासंयुतं 'ततः॥ लेपयेदेव सर्वाङ्गे खण्डः खण्डः प्रजायते। लोके भवति चाय्ययं महाकौतुककौतुकम्॥२६॥

षड्यौकरणम्।—सयूरन्तु शिलां तालं भोजयेद्दिनसप्तकम्। तदिष्ठां लेपयेद्यस्ते श्रद्ययो भवति ध्रुवम्॥ २०॥

प्रतापवर्डनम्। — शिमुवीजोिखतं तैलं पारावतपुरीषकम्। वराइस्य वसायुक्तं ग्टहीत्वा च समं समम्॥ गर्दभस्य वसायुक्तं हरितालं मनःशिला। एभिस्तु तिलकं क्रत्वा यथा लङ्केखरी नृप:॥२८॥

महेश्वरीकरणम्। — विल्वपत्रं ग्रहीत्वा तु क्वणासप्वसा समम्।

व्रषकेशं ग्रहीत्वा तु गन्धकञ्च मनःशिलाम्॥

एभिस्तु तिलकं क्वता यथा साचात् सदाशिवः।

यसौ कसौ न दातव्यं गोपितं न प्रकाशयेत्॥२८॥

ब्रह्मदर्भनयोगः। — ब्रह्मद्वचस्य पुष्पन्तु खेतं याद्यं प्रयत्नतः।
पेषयेत्रवनोतिन श्रय्वगन्धा मनःशिलाः।
एभिस्तु तिलकं क्रत्वायया साचात् पितामहः॥३०॥

पवदर्शनयोगः। — पयस्विन्याः स्रतं वालं तद्दृदे निखनेत्ररः।
हरिद्राग्रन्थिसंयुक्तम् अजादुग्धेन सिञ्चयेत्॥
यावत् फलति तद्वचस्तां हरिद्रां समाहरेत्।
स्वेतदूर्वावलाऽरैथ हरिद्रां तां प्रपेषयेत्।

ति सिरेहपुरुषः पञ्चधा दृश्यते नरै: ॥ ३१॥ पिशाचीकरणम्। - यस्य नामान्वितं मन्त्रं तृकपाले लिखेत् सति !। भीमे चितायां निचित्रे पिशाची जायते नरः ॥३२॥ मत्तीकरणम्। - उल्विष्ठां ग्रहीत्वा त्वेरण्डतैलेन पेषयेत्। यस्याङ्गे निचिपेहिन्दं चिप्तो हि जायते भ्रवम् ॥३३॥ र्थंदर्भनम्। - मातुलङ्गस्य वीजेन तैलं ग्राद्यं प्रयत्नतः। लेपयेत् ताम्वपावेण मध्याक्ने च विलोकयेत्॥ रथैन सहिताकारं भास्तरं पश्चित भ्वम्। विना मन्त्रेण सिंडि: स्यात् सिंडियोग उदाहृत: ॥३8 इंडिवस्थोगः। - वराहक्रान्तिकामृतं सिद्वार्थस्रेहसैपितम्। मुखे प्रचिष्य लोकानां दृष्टिवन्धं करोत्यलम् ॥३५॥ वर्षा मारणम्। — सर्पदन्तं ग्रङ्गोत्वा तु क्षणाव्यविककण्टकम्। क्रकतासरत्तयुतां सूच्यचूर्णन्तु कारयेत्॥ यस्याङ्गे निचिपेचूणं सद्यो याति यमालयम्। विना मन्त्रेण सिडि: स्थात् सिडियोग उदाहृत:॥३६ वर्वनर्चनयोगः। -पित्तपुच्छं ग्रहीला तु वर्त्तम् ऋतुमतीवसा। ज्वालिता च रवी वारे यैद्देष्टं नृत्यकारकम् ॥३०॥ नटनर्त्तनम् ।— कूर्मभुतां हरितालं सप्ताहं भोजयेद् ध्रुवम्। तिंद्रा करलेपेन नटा नृत्यन्ति कीतुकम् ॥३८॥ म्बसमानम्। - भौमवारे ग्रहीला तु ग्रत्तिकां रिपुमूबत:। क्रजनासम्बे चिष्ठा कर्एक वच्चन्यनम्॥ मूत्रवस्थो भवेत् तस्य उड्डाते च पुनः सुखी। विना मन्त्रेण सिंद्धिः स्थात् सिंद्धियोग उदाहृतः॥३८

विवदर्शनम्। — सिन्दूरं गन्धकं तालं मंपिष्टा च मनःशिलाम्। तिज्ञप्तवस्त्रं शिरिस त्रग्निय दृश्यते ध्रुवम् ॥ ४०॥ वारकादर्शनम्। —कोद्रवदृणमादाय कार्पामं धवलं तथा।

वर्त्तिं क्रत्वा ज्वालयेत् तु कज्जलं पातये दिशि ॥ कज्जलेनाञ्चयेत्रेचे दृश्यते चैव तारका:। गोमूत्रेणैव प्रचाच्य न पश्यत्येव तारकाः ॥ ४१ ॥ भयदृष्टिरोभः।—क्षण्णजीरकचूर्णेन अञ्जितोऽस्वो न पर्यात । तक्रेण चालयेच्च: सुस्यो भवति घोटक: ॥४२॥ त्रवमारणम्। — श्रव्वास्थिकीलमिष्वन्यां कुर्य्यात् सप्ताङ्गुलं तत:। निखनेदश्वशालायां मारयत्येव घोटकान् ॥४३॥ रजतीकरणम्। - ग्रहीत्वा मृत्तिकां गन्धं कदलीरसंमंयुतम्। ताम्त्रपात्रे प्रलिप्तेन जायते रौप्यभाजनम् ॥४४॥ आकाशगमनम्। — क्वकलासाण्डमादाय क्रिद्रेण पारदं चिपेत्। समाखे भास्तरं कत्वा त्राकाशं गच्छति ध्वम् ॥४५॥ दुग्धीकरणम्। - अर्कचीरं वटचीरं चीरमीं डुम्बरं तथा। ग्टहीला पात्रकं लिप्तं जलपूर्णं करोति च। दुग्धं सञ्जायते तत्र महाकीतुककीतुकम् ॥४६॥ गुड़ीकरणम्। - पतं ग्रहीला गुज्जायाः प्रथमं भच्येतरः। पयाच रित्तकां भुङ्क्ते क्षणारात्री तु कीतुकम्। मृत्तिका गुड़वत् भाति महाकौतुककौतुकम् ॥४०॥ राचसीकरणम्। - अङ्कोलतेललिप्ताङ्गी दृश्यते राचसाक्षति:। पलायन्ते नराः सर्वे पशुपचित्रगादयः ॥ ४८ ॥ खेचरदर्शनम्। - ग्रङ्गोलस्य तु तैलेन दीपं प्रज्वालयेत्ररः। रावी पर्यात भूतानि खेचराणि महीतले ॥४८॥ शस्त्रीत्रेजनम्। - अङ्गोलतेलितानि प्रस्ताणि यानि कानि च। दृष्टा वै मूर्चिंतो भूला पतत्येवं महीतले॥ र्णे दार्णग्रस्तीघं दृष्टीव च पलायते। नरादि-सर्वजीवानां नान्यया शङ्करोदितम् ॥५०॥

विदिनं भोजनं कुला तिलं सर्पपसंयुतम्।

तन्मू ते ज्वालिते दीपे महाकौतुककौतुकम्॥ ५१॥
वशीकरणम्। — तृकपाले रवी वारे तण्डुलै: पायमं क्वतम्।
क्रायाग्रष्कन्तु तचूर्णं क्वत्वा खाने प्रदीयते॥
यावज्जीवं वशं याति नारी वा पुरुषीऽपि वा।
श्रदासी दास्यतां याति प्राणैरपि धनैरपि॥५२॥

यममुद्रायोगः ।— मण्डू कित्तयं ग्राह्मम् एका नार्थ्यऽपरो नरः ।
तह्योमुखमध्ये च मुद्रां स्वर्णञ्च दीयते ॥
यग्ममंज्ञा चितावामे चितापुरुषद् चिणे ॥
एकादग्रदिनं यावत् गन्धकं धृपयेत् ततः ।
तहिने च ग्रहोत्वा तु मुद्रिकां ग्राह्म यत्नतः ॥
यग्ममंज्ञां मुद्रिकाञ्च त्रिकौ है वेंष्टितां क्रियात् ।
दच्चिणे वाहुमूले च कण्ठस्थाने विग्रेषतः ॥
धारयेच इमां मत्यं मिडियोग उदाहृतः ।
यग्ममंज्ञा मुद्रिका च मंमारे दीयते तथा ॥
व्यापकं तस्य क्रत्वा तु यथेच्छं मुखमाप्नुयात् ।
चणमाचे हस्तमध्ये श्रागच्छति न मंग्रयः ॥
यावज्ञीवन्नरः मत्यं तावत् कौत्ककौतुकम् ।
युग्ममंज्ञा इयं मत्यं मिडियोग उदाहृतः ॥ ५३॥
विवारे ग्रहीत्वा त मार्जारीनालमादरात ।

वन्तवर्वनम् । रिववारे ग्रहीत्वा तु मार्जारीनालमादरात्। यस्य वस्तुनि निचिप्तं तदस्तु वर्द्वयेत् ध्रुवम् ॥५४॥

कलहनाशनम्।—नालिकां तक्रसंपिष्टसृत्तिकायुक्तपुत्तलीम्। निखनेद् ग्टहमध्ये च कलहं नाश्येदियम्॥५५॥

कलहत्त्रदेशीगः।—ग्राह्मकीकाष्टकं ग्राह्मं नव वा पञ्चभिः सह । सौर्थ्येहे निखनेद्वारे कलहो भवति ध्रुवम् ॥५६॥

क्रीवीकरणम्। — बुधवारे श्नेवारि ग्रह्मीयात् सरटं बुध:।

शतुर्मूत्रयते यत्र धीरस्तं तत्र निचिपेत् ॥
निखनेद्गूमिमध्ये च उद्दृते च पुनः सुखी ।
नपुंसकं भवेत् सत्यं नान्यथा श्रङ्गरोदितम् ॥५०॥
प्रमदाकर्षणम् ।—चाटकं मैथुनं पध्येद् यावद् वारं करोति च ।
तावद् ग्रत्यिश्व स्त्रेण दीयते कौतुकं महत् ॥
क्वकलासस्य रक्तेन लेपितं स्त्रग्रत्यिकम् ।
श्रागच्छिति महारूपाऽबला खच्छग्दचारिणी ॥
स्वलिता मध्यग्रत्यिथेत् योषिदीय्यं स्रवत्यलम् ।
विना मन्त्रेण सिद्धः स्यात् सिद्धियोग उदाहृतः॥५८॥

पुंच्ववर्डनियोगः । — ग्टहीला विजयावीजं यत्नात् तैलानि ग्राह्येत् ।
तत्तैलमहिफोनञ्च विषं जातीफलं तथा ॥
धुस्तूरवीजचूर्णेन्तु गृहीला तु समं समम् ।
नवनीतेन तैलेन पेषयेत् सर्वमीषधम् ॥
श्रष्टयामे क्षते तन्त्रे महाकौतुककौतुकम् ।
तत्तैलं विन्दुमावेण लिङ्गलेपेन कारयेत् ॥
भोगैषिणः न त्ययन्ति जायते मुषलोपमम् ।
दृष्टं दीर्घं भवेत्सयः सिद्धियोग उदाहृतः ॥५८॥

ग्यारिकीलनम्:—रिववारे गृहीत्वा तु सृत्तिकाभाण्डसम्मुखम्।
तस्य मध्ये स्थितं कत्वा अर्ककीलं नवाङ्गुलम्॥
सुखेतदूर्वया युक्तम् अध्यगस्यां मनःशिलाम्।
ताम्बूलसंयुतं कत्वा तुलसीपत्रकैः सह॥
अपामार्गपत्रयुक्तं धात्रीपत्रं तथैव च।
वटपत्रं तथोर्मध्ये प्टतं मिष्टान्नदुग्धकम्॥
सुखे वस्त्रेण संवेष्ट्य निखनेत् शस्यमध्यके।
तस्योपरि भूर्जपत्रे सदा पश्चदशीं लिखेत्॥
श्रलभा स्रगपा सूषा शृगालाः कोटकं तथा।

पग्रपिचनराश्चीराः जायन्ते कीलितास्तदा ॥
वसुन्धरा ग्रस्यपूर्णा न विद्यं परिभूयते ।
यस्मै कम्मै न दातव्यं नान्यया ग्रङ्करोदितम् ॥६०॥
विद्यविनाग्रनम्।—गन्धकं हरितालञ्च गोमूत्रञ्च विषं तथा ।
स्त्याचूर्णमयं क्रत्वा विद्यः किञ्चिद्विनिच्चिपेत् ॥
विद्याः सर्वे पलायन्ते यथा युद्धेषु कातराः ।
विना मन्त्रेण मिद्धिः स्थात् सिद्धियोग उदाहृतः ।
दन्द्रजालं महाविद्यां विद्यानां सर्वमृत्तमम् ॥६१॥
दत्ति शौदत्तावेयतन्ते ईश्वरदत्तावेयमंवादे इन्द्रजालकौतुकदर्णनं नाम
एकादशः पटलः।

एकादशः पटलः।

# अय यत्तिणीमन्त्रसाधनम्।

इंबर उवाच ।—शृगु मिडिं महायोगिन् यिचिणीसन्त्रसाधने । यस्य साधनमाचेण नृणां सर्वे मनोरयाः ॥ श्रव्यत्वचमारुद्य जपेटेकाग्रमानसः । धनदात्री यिचिणी च धनं प्राप्नोति मानवः ॥ बव मनः ।—"ग्रीं ऐं क्लीं श्रीं धनं कुरु कुरु स्वाहा"। बयुवजपेन

चूतव्रचममारूढ़ी जपेटेकाग्रमानमः।
श्रमुचो नभते पुत्रं नान्यया शङ्करोदितम्॥
श्रव मनः।—"श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं पुत्रं कुरु कुरु खाहा"। श्रप्तं जपेत्॥२॥
वटव्रचममारूढ़ो जपेटेकाग्रमानमः।
महानच्मीर्यविणी च स्थिरा नच्मीय प्राप्यते॥

सिडि: ॥ १ ॥

भहानकायाकणा चास्थरा नकाव प्राध्यत ॥

श्वन मनः ।— "श्रों क्रीं क्रीं महालक्ष्मेंग्र नमः" । श्रयुतं जपेत् ॥ ३॥

श्वर्तमूलसमारूढ़ी जपेदेकाग्रमानसः ।

यिक्षणी च जया नाम सर्वकार्य्यं जयक्षरी ॥

अव मलः। — "श्री जयं कुरु कुरु स्वाहा"। अयुतं जपेत्॥ ४॥ धात्रीमूलसमारूढ़ो जपदेकायमानसः। त्रग्रभच्ययचिखो त्रग्रभच्यकारिकाः॥ अद मलः। — "ऋों ऐं क्लीं नमः"। अयुतं जपेत्॥ ५ ॥ तुलसीमूलमारूढ़ो जपेदेकायमानसः। अवसादाच्यमाप्रोति नान्यथा गङ्गरोदितम्॥ ्रश्रव मन्त∷ ।—"श्र**ों क्लों क्लों नमः"**। श्रयुतं जपेतृ॥ ६ ॥ यङ्गोलद्वचमारूढ़ो जपेदेकायमानसः। राजाधिराजो भवति नान्यया गङ्गरोदितम्॥ अव मल:।—"श्रीं हीं नम:"। अयुतं जपेत्॥ ৩.॥ कुशमूलसमारूढ़ो जपेदेकायमानसः। सर्वकार्याणि सिध्यन्ति नान्यया गङ्करोदितम्॥ अव मलः।—"श्रीं वाङ्मयायै नमः"। भयुतं जपेत्॥ ८॥ अपामार्गसमारूदो जपेदेकीयमानसः। वाचां सिडिभेवित् सत्यं नान्यया शङ्करोदितम्॥ अव मलः। — "ग्रीं क्लीं भारत्ये दें नमः"। अयुतं जपेत्॥ ६॥ उडुम्बरसमारूढ़ो जपेदेकाग्रमानसः। भवेत् पुस्तकसंसिष्ठिः सर्वविद्यायतुर्दश ॥ चव मलः।—"ग्रीं ज्ञीं श्रीसारदायै नमः"। त्रयुतं

जपेत्॥ १०॥

निर्गुर्ग्डोमूलमारूढ़ो जपेदेकाग्रमानसः।
विद्याप्राप्तिभेवेतित्वः नान्यया ग्रङ्गरोदितम्॥
विद्याप्राप्तिभेवेतित्वः नान्यया ग्रङ्गरोदितम्॥
विद्याप्राप्तिभेवेतित्वः नमः"। व्युतं जपेत्॥११॥
वित्युञ्जासमारूढ़ो जपेदेकाग्रमानसः।
सन्तोषा नाम यिच्चित्वो ददते वाञ्कितं फलम्॥
विवस्ताः।—"श्रों जगनावे नमः"। व्युतं जपेत्॥१२॥

एकलिङ्गं महादेवं त्रिकालं पूजयेत् सदा।
धूपं दत्ता जपेनान्तं संयतिस्त्रसहस्रकम् ॥
मासमेनं ततो याति यचिणी सुरसुन्दरी।
"देवि! दारिद्रादग्धोऽस्मि तस्य नाशकरी भव"॥
दत्त्वाऽध्यं प्रणमेनान्त्री वदेत् मा "त्वं किमिच्छिसि?"।
ततो ददाति सा तुष्टा वित्तायुश्वरजीवितम्॥
ः।—"श्रों द्वीं श्रागच्छ श्रागच्छ सुरसुन्दरि!स्नाहा"।

अव मलः।—"श्रीं हीं श्रामच्छ श्रामच्छ सुरसुन्दरि! खाहा"। अयुतं नपेत्॥ १३ ॥

कुडुमेन समालिख्य भूर्जपत्ने सुलच्छे।
प्रतिपत्तः समारभ्य पूजां क्वता जपेत्ततः॥
त्रिसम्यं त्रिसहस्रन्तु मासान्ते पूजयित्रिशि।
संजपेदर्दरात्ने तु समागत्य प्रयच्छिति॥
दीनाराणां सहस्रन्तु प्रत्यहं परितोषिता।
यस्मै कस्मै न दातव्यं नान्यया शङ्करोदितम्॥
अव सन्दः।—"श्री श्रनुरागिणि मैथुनप्रिये! स्वाहा"। अयुतं

जपेत्॥ १८॥

भव मनः। — "श्रीं क्लीं चन्द्रिके! हंसः श्रीं क्लीं स्वाहा"।

षयुत जपेत् ॥ १५॥

पूर्वमेवायुतं जम्ना क्षण्यकन्याऽभिमन्त्रणम् । हस्तपादप्रलेपेन स्वप्ने विक्त ग्रभाग्रभम् ॥ वैलोक्ये यादृशी वार्त्ता तादृशी कययेत् फलम् । कर्णिपशाचिनी नाम नान्यया शक्करोदितम् ॥ अव मलः।—"श्रीं क्लीं चग्डवेगिनि वर्दे! स्वाहा"। अयुतं जपेत्॥ १६॥

> त्रलके मूलिकापुष्ये तथा सर्पाचिमूलिकाम्। याद्याभिमन्त्रितां यच रक्तसूत्रेण वेष्टयेत्॥ मूभि बड्डा क्तता सप्तः वक्तव्यच ग्रभाग्रभम्। वैलोक्ये याद्दशी वार्त्ता ताद्दशीं कथयेदलम्॥

भव मलः।—"श्रीं नमी भगवते त्र्राय कर्णिपशाचाय स्वाह्रा"। भयुतं जपेत्॥ १०॥

प्रविश्व नगरस्थान्तं लचसंख्यं जपेसानुम्।
पद्मपत्नैर्घृतोपेतैः स्तवा होमं दशांश्वतः॥
प्रयच्छत्यञ्चनं हंसी येन पश्चिति भूनिधिम्।
सुखं तमतुग्दह्वाति न विद्यैः परिभूयते॥

अव मनः।—"ग्रीं हंसि हं याने ! क्रीं क्षीं खाहा"। अयुतं जपेत् ॥१८॥ इति दत्तावियतन्ते ईश्वरदत्तावियसंवादं यिचणीसाधनं नाम दादशः पटलः॥

### अय रसायनस्।

इंबर उवाच। —गोमूत्रं हरितालञ्च गन्धकञ्च मनःशिलाम्।
समं समं ग्रहीत्वा तु यावत् ग्रष्यति पेषणात्॥
एकादशदिनं यावत् यत्नेन रचयेत् ग्रचिः।
मन्त्रेण धूपदीपादिनैवेद्यैर्दुग्धमित्रितैः॥

मन्त्र ।—"श्रीं नमी हरिहराय रसायनं सिद्धं कुरु कुरु स्वाहा"। अयुतजपेन सिद्धः॥१॥

तद्वरीं गोलकं क्रत्वा वस्त्रेण वेष्टयेत् पुनः।
म्हित्तकां लेपयेत् तञ्च कायाग्रष्कन्तु कारयेत्॥
गर्त्ते कुण्डे विनिचिप्ते पलाग्रकाष्ठविद्वागः।
ज्वालयेदष्टयामन्तु नान्यया ग्रङ्गरोदितम्॥

तक्कम जायते सिडिं विडि सिडिसमाक्कलम। ताम्मपाते अग्निमध्ये चिन्दुमातं नियच्छति॥ तत्चणाज्ञायते खर्णं नान्यया शङ्करोदितम्। दातव्यं गुरुभक्ताय न दखाद् दुष्टमानसे॥ सिडपीठे भवेत् सिडिगीयवीलच्जापनै:। यसी कसी न दातव्यं दातव्यं शिवभक्तके॥ श्राग्निसुखिदजातीनां पाचकानां विशेषतः। गोष्यं गोष्यं महागोष्यं देवानामपि दुर्लभम्॥ रसप्रतिक्रियां क्रत्वा गोप्यं नैव प्रकाशयेत्। वनितापुत्रमित्रादिगोप्यं सिडिप्रदायकम्॥ श्रानीय बहुयत्नेन सम्बलं तीलकदयम्। वसुरादां शिवञ्चादां मायाविन्दुसमन्वितम्॥ वीजवयञ्चाष्ट्रशतं प्रजपेत् सम्बलोपरि । अशीतितोलकं मानं छण्छेनुसमुद्भवम्॥ दुग्धमानीय यत्नेन चाष्टीत्तरशतं जपेत। वस्त्रयुक्तेन स्त्रेण दुग्धमध्ये विनिचिपेत्॥ उत्तापं ज्वालयेडीमान् मन्दमन्देन विज्ञना। रिपुर्वेदाईपर्यन्तमईश्रेषं भवेद् यदि। तदैवोत्तो ख तद्रव्यं दग्धं तोये विनि चिपेत् ॥ २॥

ततः परौचा कर्त्तव्या।

निर्धूमं पावके द्रव्यं दृष्टा उत्याप्य यत्नतः।
तत्नैव प्रजपेन्सन्तं सर्वमङ्गलमात्मकम् ॥
सार्षेन तीलनं ताम्यं विज्ञमध्ये विनिचिपेत्।
यथा विज्ञस्तया ताम्यं दृष्टा उत्याप्य यत्नतः॥
गुज्जाप्रमाणं तद्रव्यं सत्यं सत्यं हि शङ्करि!।
रौष्यं भवति तद्रव्यं नान्यथा शङ्करोदितम्॥ ३॥

प्रिवित्त सर्पस्यं मुखं गुद्ध बह्वा नृतनस्त्रमयस्थालीमध्यं प्रियित्वा सर्पस्यं मुखं गुद्ध बह्वा नृतनस्त्रमयस्थालीमध्यं संस्थाप्य स्थालीमुखं सदादिना संलिप्य निर्जनस्थाने प्रातरारस्य पुनः प्रातर्यावत् बङ्किना ज्वालं दद्यात्। ततः ग्रुभच्यं स्थालीमुखमुहृत्य सर्पभस्म विहाय प्रिववीर्थं ग्रुह्हीयात् ततस्तीलकमितं ताम्त्रं गालियत्वा तिस्मन् गलितताम्ने रिक्तक मात्रं तत् प्रिववीर्थं दद्यात्, तेन तत्च्चणदिव तत् ताम्नं सवणी-भूतं जायत इति। श्रादी प्रिवार्चनं क्रत्वा पंश्वात् प्रयोग एष प्रकर्त्तव्यः॥ ४॥

इति दत्तावेयतन्ते र्मृषरदत्तावेयसंवादे रसायनं नाम वयीदमः पटलः।

### अय मृख्यालज्ञानम्।

शृण सिद्धं महायोगिन् दत्तात्रेय ! महामुने ! ।

मनुष्याणां हितार्थाय सृत्युज्ञानञ्च कष्यते ॥ १ ॥

दातव्यं गुरुभक्ताय न द्यादृष्टमानसे ।

यस्मै कस्मै न दातव्यं नान्यथा ग्रङ्करोदितम् ॥ २ ॥

न दृष्टा नासिका येन नेत्रभ्रमरदृष्टिकः ।

षण्मासाभ्यन्तरे सृत्युर्थदि पाति पितामहः ॥ ३ ॥

न दृष्टाऽरुभ्यती येन सप्तर्षीणाञ्च मध्यतः ।

षण्मसाभ्यन्तरे सृत्युर्थदि रच्चित ईष्वरः ॥ ४ ॥

स्नानस्य समये चैव सृत्युज्ञानं निरोच्चते ।

हृदि ग्रष्ट्वं भवेद् यस्य षण्मासस्तस्य जीवनम् ॥ ५ ॥

वृद्धिज्ञानं क्रियाद्योनं विपरोतन्तु जायते ।

दिमासेन भवेन्नृत्युः सत्यसेव न संग्रयः ॥ ६ ॥

गतिचालनपादानां खण्डितं खण्डितं पदम् ।

मासेन सृत्युमाप्नोति श्रयवा पच्चिषतः ॥ ७ ॥

दलदादग्रचक्रस्यं मृत्युकालच वीचितम्। चैवादिमाससंख्यानि लिख्यन्ते दल्हादशे॥ ८॥ मेषादिराशय: खाप्या: सूर्यादिर्लिखते ग्रह:। जनाऋ वं जनाराशिं वी चर्त सत्युका लके ॥ ८॥ श्निमीमकेतुरा हु-राशिविडे तु कष्टभाक्। ऋचविडे राशिविडे कालसृत्युर्न संशयः॥ १०॥ स्थिवेधे मन्स्तापं व्धे सीख्यं प्रवर्त्तते। तीर्ययाता हि जीवे च चन्द्रे स्त्रीसुखसम्पदः॥ ११॥ भगुवेधे राज्यलाभं मासे मासे विचारयेत्। वर्षं दादशमासानि सत्युकाले वदन्ति च॥ १२॥ श्रहोरातं यदैकत वहते पात्रमध्यतः। तदा तस्य भवेदायु: सम्पूर्णवत्सरत्रयम्॥ १३॥ श्रहोरावद्यं पश्चेत् पिङ्गलायां सदागतिम्। तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्वविदिभिः॥ १४॥ विरातं वहते यस्य वायुरेकपुरे स्थित:। संवलारं तदा आयु: पवदन्ति सुनी खरा: ॥ १५॥ रात्री चन्द्रं दिवा सूर्थं माममेकं निरन्तरम। पश्चेन्य्रत्व्वरस्यास्य वर्गामाभ्यन्तरे भ्रवम् ॥ १६ ॥ ग्रशाङ्कं वारयेट्राती दिवा यश्च दिवाकरम्। दलभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संग्रय:॥ भव मनः। - "श्रीं नमः कालरूपाय कालज्ञानं कुरु कुरु हा"। अयुतजपात् सिद्धिः॥ १०॥

इति दत्तावियतन्ते र्द्रश्वरदत्तावियसंवादे सत्युकालज्ञानं नाम चतुर्दशः पटलः ।

#### अय अनाहार:।

ईवर उवाच। -- अन्त्राणि क्षकलासस्य मज्जां कारञ्जवीजिकाम्। पिष्टा तु वटिकां कला बिली हैन तु वेष्टयेत्॥ तां वक्को धारयेद् यस्तु च्लिपासा न बाधते। यसी कसी न दातव्य नान्यया शङ्करोदितम् ॥ १ ॥ पद्मवीजं महिशानि ! कागीदुग्धेन पेषयेत्। साज्यं तत् पायसं क्रत्वा भोक्तव्यं दादशं दिनम्॥२॥ अपामार्गस्य वीजानि अजादुग्धेन पाचयेत्। पायसं वटिका चारैभृता मासं चुधापहा ॥ ३॥ कोिकला चस्य वीजञ्ज विजयावी जसंयुतम्। तुलसीवीजसंयुत्तं ताम्बूलमूलसंयुतम्॥ क्रागीदुग्धेन संपिष्य वटिका क्रियते नरै:। भच्येत् प्रातरुत्याय चुत्पिपासा न बाधते ॥ ४ ॥ पद्मवीजमपामार्गं तुलसीवीजसंयुतम्। धाचीवीजसमायुक्तं वटिका क्रियते नरै:॥ तस्य भचणमात्रेण तस्योपरि गवां पयः। चुित्पपासाहरं नित्यं नान्यया शङ्करोदितम्॥ ५॥ त्रोषधिः कुण्डली नाम दिहस्तीऽस्याय काण्डकः। एरग्डसदृशं पत्रं पुष्पञ्चापि सुलच्णम ॥ तस्याः कन्दं समादाय ताम्ब्लटङ्गमावतः। भचणं प्रातक्षाय चुत्विपासाहरं परम्॥

मल्ललु।—"ग्रीं नमः सिडिरूपाय मम शरीरे श्रम्टतं कु कुरु स्वाहा"। श्रष्टीत्तरशतजपेन सिडिः॥ ६॥

इति दत्तावियतन्त्रे द्रीयरदत्तावियसंवादे अनाहार: नाम पञ्चदश: पटल:।

#### यय यत्नाहारः।

धातकीनामवृत्तस्य पत्रं सितीपलैर्युतम्।
पत्नं भुङ्को छतैः साईं भोजने भीमसेनवत्॥१॥
सन्यायां पुष्पवृत्तस्य कर्त्तव्यमभिमन्त्रणम्।
प्रातः पुष्पाणि संग्रद्धा माला प्रिरिस धार्य्यते॥
कौपीनं संपरित्यच्य भोजने भीमसेनवत्।
यसौ कसौ न दातव्यं सिद्धियोग उदाहृतः॥२॥
उद्घानुपत्रमादाय किपलाखानदन्तकम्।
कव्यामेव दयं बद्धा भोजने भीमसेनवत्॥३॥
ग्रद्धीत्वा मन्त्रितं मन्त्रो विभीततक्पक्षवम्।
धारयेद्दिण्णे इस्ते विषमाद्यारभृग् भवेत्॥४॥
त्रधरं ककलासस्य शिखास्थाने च वस्ययेत्।
वायुप्रव द्रवाश्वयं स भुङ्को वरपर्वतम्॥

मललुः—"ग्रीं नमः सर्वभूताधिपतये यसय ग्रसय ग्रोषय षय चोभय चोभय भैरवी ग्राज्ञापयति स्वाहा"। अयुतजपेन

डः॥ ५॥

इति दत्तावियतन्ते द्रेश्वरदत्तावेयसंवादे अत्यन्ताहारः नाम षीड्शः पटलः॥

## अय निधिग्रहणम्।

र उगनः।—शिरोषहत्त्वपञ्चाङ्गं कटुतैलेन पाचितम् । विषञ्जैव समायुक्तं धुस्तूरवीजसंयुतम् ॥ पञ्चाङ्गं करवीरञ्च खेतगुञ्जासमन्वितम् । उष्ट्रविष्ठासमायुक्तं गन्यकञ्च मनःशिला ॥ धूपं दत्त्वा जपेचान्त्रं निधिस्थानं विशेषतः । प्रजायन्ते निधिं स्यक्का यथा युद्धेषु कातराः ॥ राच्तसाः भूतवेतालाः देवदानवपत्रगाः । सुखेन ग्रह्णाति निधिं न विघ्नैः परिभूयते ॥ मन्त्रमु ।—"ग्रीं नमो विघ्नविनाशाय निधिग्रहणं कुरु वु

खाहा"। अयुतजपेन सिर्धिः॥१॥

इति दत्तानेयतन्ते र्पत्रपदत्तावेयसंवादे निधिग्रहणं नाम सप्तदग्रः पटलः।

# अय बन्यागर्भधारणस्।

र्देशर उवाच। — जन्मबस्या नामबस्या मृतवला क्वचित् स्तिय:। तासां पुत्रहितार्थाय शस्त्रना सूचितं पुरा ॥१॥ पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी-पयसाऽन्वितम्। ऋलन्ते तच पीला हि बस्या भवति पुन्निणी॥ एवं सप्तदिनं कुर्यात् शोकोद्देगविवर्जितम्। पतिसङ्गं गता सा च नाव कार्या विचारणा। चीरशाल्यनमुद्रञ्च लघाहारं प्रदापयेत् ॥२॥ एक्सेव तु रुद्राचं सर्पाचीकर्षमावकम्। एकवर्णगवां चीरम् ऋतुकाले प्रदापयेत्॥ एवं सप्तदिनं कुर्याद् बस्या भवति पुचिगी। यसी कसी न दातव्यं नान्यया गङ्गरोदितम् ॥३। देवदानीयमूलानि याच्येत् पुष्यभास्करे। ऋत्वन्ते तानि पीतानि एक्षवर्णगवां पयः॥ एवं सप्तदिनं क्यांद् बन्धा पुत्तवती भवेत्। उद्देगभयशोकञ्च दिवा रात्रिञ्च वर्जयेत्॥ ४॥ शीततीयेन संपिष्य शरपुङ्घीयमूलकम्। कर्ष पोला लभेद् गर्भ सा नारी पितसङ्गम ॥५॥ ससूली सहदेवी च याद्या पुष्पार्कवासरे। क्रायाग्रष्कन्तु तचूर्णम् एकवर्णगवां पयः॥

पूर्ववत पीयते नार्या बन्धा भवति पुचिगो। यस्मै कस्मै न दातव्यं सिडियोग उदाहृत: ॥ ६ ॥ नागकेशरच्रान्तु नृतनं गव्यद्ग्धकम्। पिवेत् सप्तदिनं दग्धं पृतैर्भोजनमाचरेत्॥ ऋलन्ते लभते गर्भं सा नारी पतिसङ्गतः। सिडियोगिमदं चूर्णं नान्यया ग्रङ्गरोदितम्॥ ७॥ पुन्नजीवक्पर्नेकं पिवेत् चीरै ऋती च या। पतिसङ्गलता नारी सत्यं पुत्रवती भवेत्॥८॥ कदस्वपत्रं खेतायाः वृज्ञत्या सूलमेव च। एतानि समभागानि अजाचीरेण पेष्येत ॥ विरावं पचरावं वा पिवेदेतना होषधम । सत्यं पुच्चवती वस्था नान्यया ग्रङ्गरोदितम् ॥८॥ वीजं गोत्तरकस्यैवं पिवेन्त्रिर्गण्डिकारसै:। तिराचं पञ्चराचं वा बस्या भवति प्रचिणी ॥१०॥ कर्कोटवीजच्यन्तु एकवर्णगवां पयः। ष्टतेन पीयमाने तु बस्या भवति पुचिणी॥

मन्त्र ।—"श्रों नमः सिडिरूपाय श्रमुकीं पुत्रवतीं कुरु कुरु बाह्रा"। अष्टीत्तरशतज्ञपेन सिडिः॥ ११॥ इति यीदत्तावेयतन्त्रे दुंशरदत्तावेयसंवादे बस्यागर्भधारणं नाम अष्टादशः पटनः।

श्रय स्तवत्सासृतजीवित्वम्।
गर्भसञ्चातमाचेण पचे मासे च वसरे।
पुची क्यित वर्षादी यस्याः सा स्तवित्सका॥१॥
गर्मीत्वा ग्रभनचत्रे त्वपामार्गस्य मूलकम्।
गर्मीत्वा लचणामूलम् एकवर्णगवां पयः॥
पीत्वा सा लभते गर्भं दीर्घजीवी सुती भवेत्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं नान्यशा ग्रङ्गरोदितम्॥२॥

बन्धा कर्कोटिकाकन्दं पीतं मोचारसेन च। ऋतुकाले तु सप्ताहं दीर्घजीवी सुतो भवेत्॥ श्रव योगः प्रकर्त्तव्यो यथाशङ्करभाषितम् ॥ ३ ॥ मार्गशीर्षेऽयवा ज्येष्ठे पूर्णीयां लेपिते गरहे। नृतनं कलसंपूर्णं गन्धतीयन कारयत्॥ शाखाफलसमायुक्तं नवरत्नसमन्वितम्। सुवर्णमुद्रिकायुक्तं षट्कोणमग्डले स्थितम् ॥ तन्मध्ये पूजयेदेवीमेकान्तीनामविश्वताम्। गन्धपुष्पाचतेर्धपदींपैनैं वेद्यसंयुतै:। श्रचीयद् भिताभावेन मत्यमांसै: समदाकै:॥ वाराही च तथा चैन्द्री ब्राह्मी माहे खरी तथा। कौमारी वैषावी देवी षर्स पत्रेषु मातरः॥ पूजयेन्मन्ववीजेन दिधिपिण्डानि कारयेत्। सप्तसंख्याप्रमाणानि षट्संख्या षट्सु पवतः॥ सप्तमन्तु पृथक् कत्वा श्रुतिस्थाने विशेषतः। तङ्गते ग्रहमागच्छेत् कन्यका वटवः स्त्रियः॥ भोजयेइचिणां दत्वा प्रमाणं कारयेत् ततः। विस्च देवतां तस्यां नद्यां तत्वालसीदकम ॥ स्वकुलं वीचयेत् धीमान् ग्रमेन ग्रममादिगेत्। विपरीते पुनः कार्थं योगान्तरसुसिडिदम्॥ प्रतिवर्षिसदं कुर्याहीर्घजीवसुतं सभेत्। सिडियोगिमदं ख्यातं नान्यया शङ्करोदितम्॥

मन्त्र ।—"श्रीं परमं ब्रह्मपरमात्मने श्रमुकी गर्भे दीर्घजीवि-सृतं कुरु कुरु स्वाहा"। श्रष्टीचरशतजपेन सिंडि: ॥ ४ ॥ इति श्रीदत्तावियतन्त्रे देशस्दत्तावियसंवादं स्तवसास्तजीविलं नाम ऊनविंश: पटनः।

#### अय काकवस्याप्रयोगः।

पूर्वं पुत्तवती या सा क्षचिह्रस्था भवेद यदि।

काकवस्था तु सा ज्ञेया चिकित्सा तत्र कष्यते॥१॥

विषाुक्रान्तां सम्रूलान्तु पिष्टा माहिषदुग्धके।

महिषीनवनीतेन ऋतुकाले तु भच्चयेत्॥

एवं सप्तदिनं कुर्य्यात् पष्यमुक्तञ्च पूर्ववत्।

गभें सा लभते नारी काकवस्था सुशोभनम्॥२॥

मूलन्तु ह्यगन्धायाः ग्राह्येत् पुष्यभास्करे।

पेषयेन्याहिषचीरैः पलार्षं भच्चयेत् मदा॥

सप्ताहाल्लभते गभें काकवस्था चिरायुषम्।

यस्रो कस्रो न दातव्यं नान्यथा ग्रङ्करोदितम्॥

मलल्।—"ग्रीं नमः ग्रक्तिरूपाय ग्रस्थाः ग्रहे पुत्रं कुरु कुरु

वाह्रा"। श्रहोत्तरण्यतन्त्रपेन सिक्षः॥ ३॥

इति यौदत्तावेयतन्त्रे ईश्वरदत्तावेयसंवादे काकवस्थापुचकरणं नाम विंग्रः पटलः।

## अय विवादविजयम्।

वर उगव।—मार्गशोर्षे च पूर्णायां शिखिमूलन्तु वस्ययेत्। बाह्री शिरिस वा धार्यं विवादे विजयी भवेत्॥१॥ क्रायासर्पकपाले तु शवस्रत्तिकयान्विते। खेतगुद्धां चिपेत् तत्र तस्या मूलं समाहरत्॥ ललाटे तिलकं कुर्यात् पश्चेत्तं पञ्चधा रिपुः। स्वगणैर्भच्यमाणस्तु पतितय तती भुवि॥२॥ करे सुदर्शनामूलं बह्वा राजकुले जयी॥३॥ जयासृतं राजकुले मुखसंस्थं जयप्रदम्॥ ४॥ लिप्यन्ते यानि भस्ताणि द्यपामार्गरसेन वै। जायन्ते तानि संग्रामे रक्तमाराणि निश्चितम्॥ ५॥ ग्रहीत्वा पुष्यनच्चने खेतगुच्चीयसृत्वकम्। धारयेहित्तणे हस्ते द्वतं कार्ये जयो भवेत्॥ ६॥ धुस्तूरं करवीरच्च द्यपामार्गस्य सृत्वकम्। इरितालसमायुक्तं तिलकं सुदिने क्वतम्॥ ०॥ ज्यजाच्चारेण संपिष्य रणे राजकुले जयो। विवादे दृतकार्यो च नान्यया भद्भरोदितम्॥

मन्त्र । — "श्रीं नमो विश्वरूपाय यमुकस्य श्रमुकेन विजयं कुरु कुरु स्वाहा"। अष्टीत्तरशतजपेनैव सिडि: ॥ ८ ॥
इति शीदत्तावेयतने देशरदत्तावेयसंवादे विवादविजयं नाम एकविंगः पटलः।

## अथ वाजीकरणम्।

र्वश्वर उवाच।--

बलेन नारी परितोषमिति न हीनवीर्थस्य कटापि सीख्यम्। अतो बलार्थं रतिलम्पटस्य वाजीविधानं प्रथमं विधत्ते ॥१॥

वल्कलं चूतव्रचस्य स्त्याते सुष्ठु निचिपेत्।
तस्योपरि जलं चित्रं तत्र वस्त्रच दापयेत्॥
प्रातः दुग्धेन सार्वं तत् यः पिवेन्सकरस्वजम्।
धातव्रविकरं लोके वलपुष्टिकरं तथा॥ २॥
कुमारीकन्द्रमादाय गवां चीरिण यः पिवेत्।
बलपुष्टिकरं धातुर्जायते मकरस्वजः॥ ३॥
ग्रहीत्वा तु रवी वारे भण्डिकां ग्रुचिपूर्वकम्।
छायाग्रष्कस्तु तच्चूर्णम् ग्रम्थगन्यासमन्वितम्॥

मुषलीं गोचुरच्चैव विजयावीजसंयुतम्।
एकवर्णगवां चीरैर्यः पिवेत् टङ्कमात्रतः॥
बलपुष्टिकरं देइस्तभानं धातुद्विदिद्म्।
सिद्धियोगिमदं तन्त्वं कामदेवी भवेत्ररः॥ ४॥
श्रष्वत्यपत्तं संग्राद्यं कायाग्रष्कन्तु कारयेत्।
पिवन् दुग्धेन सार्वं वै जायते मकरध्वजः॥ ५॥
ग्रहीत्वा ग्रभनचत्रे ब्रह्मदण्डीयमूलकम्।
सार्वं माहिषदुग्धेन यः पिवेन्मकरध्वजः॥ ६॥
ग्रहीत्वा चास्तामूलं रिववारेऽभिमन्त्रितम्।
कायाग्रष्कन्तु तचूर्णं ग्रकराभच्चणाह्वली॥
महासीख्यकरं पुंसां तस्योपिर गवां पयः।
यस्मै कस्मै न दातव्यं नारी भवित किङ्करी॥
मन्तस्य।—"श्रीं नमः श्रमुकस्य बलपराक्रमं कुरु कुरु स्नाहा"।

भन्नभु । — **श्रा नम: श्रमुकस्य बलपराक्रम कुरु कुरु स्वाहा**"। श्टाचरशतजपात सिद्धि:॥ ७॥

इति यीदत्तावयतन्ते द्रेयरदत्तावयसंवादे वाजीकरणं नाम दाविंगः पटलः।

# अय स्वीद्रावणम्।

शिलाकाश्मीरतगरं कुसुभाचीद्रलेपनात्।
द्रावणं कुरुते स्त्रीणां विना मन्त्रेण सिध्यति॥१॥
वहतीफलमूलानि पिप्पली मरिचानि च।
रोचना मधुना सार्डं लिङ्गलेपाद् द्रव: स्त्रिया:॥२॥
चौद्रगन्धकलेपेन शिलायुक्तेन तत्फलम्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं नान्यया शङ्करोदितम्॥३॥
शशिटङ्कणपिप्पल्य: शूर्णं मदनं फलम्।
एतेन लिङ्गलेपेन शीद्रं द्रवति कामिनी॥४॥

मातुलुङ्गरसैर्लिप्तं स्त्रीणान्तु द्रवकारकम्। सिडियोगमिदं ख्यातं सुलभं मानुषैर्मुने !॥ ५॥

इति श्रीदत्तावियतन्त्रे द्रश्वरदत्तावियसंवादे स्वीद्रावणं नाम वधीविशः पटलः।

# अथ वीर्यंस्तसनम्।

कर्पूरं टङ्गणं युक्तं तुल्यं यान रसं मधु।
लिम्पे बिङ्गं मर्दियिता स्थिता यामं तथेंव च॥
ततः प्रचालये बिङ्गं रमे द्रामां यथो चितम्।
वीर्य्यस्तम्भकरं पंसां सम्यङ् नागार्जुनो दितम्॥१॥
क्षक्कलासस्य पुच्छायं मूिषका प्रियतन्तुभिः।
धार्यं किनिष्ठिकां विद्या नरो वीर्यं न मुञ्चति॥२॥
मधुना पद्मवीजानि पिष्टा नाभि प्रलेपयेत्।
यावित्त छत्यसी लेपस्ताव हीर्यं न मुञ्चति॥३॥
चिटिकातन्तु मुहृद्धा नवनी तेन वेष्टयेत्।
तेन लेपयते पादौ ग्रुक्तस्तभः प्रजायते॥
यावन्न स्पृश्ते भूमिं ताव हीर्यं न मुञ्चति।
यसी कसी न दातव्यं नारी गर्वहरं परम्॥४॥

यस कस न दातव्य नारागवहर परम् ॥ ४ ॥ प्रशिस्तकटङ्गणमागधकं घतप्ररणचौद्रकशङ्ख्यतम् । मुनिपत्ररसे यदि लिङ्गमयं वनितामदगवहरं कियतम् ॥ ४ ॥

खूलं मीनं समादाय सम्यक् खर्णन वेष्टयेत्। लिक्ने चोह्वटिते किञ्चिदये वीर्थं न मुञ्जति ॥ ६ ॥ शूकरस्य तु दंष्ट्रायं दिचणञ्च समाहरेत्। कटिदेशे च बन्नीयात् शुक्रस्तकाः प्रजायते ॥ ७ ॥ कट्फलं शुण्डिकाकायं विनासूलेन भच्चति। वीर्यं द्रावयते पुंसां सिडियोग उदाहृतः ॥ ८ ॥ शूरणं तुलसीवीजं ताम्बूलैः सह भच्चयेत्।

न मुच्चित नरो वीर्यं नान्यया शङ्करोदितम्॥ ८॥
ड्रेण्डुभो नाम यः सपः क्षण्यणं तमाहरेत्।
तस्यास्यि धारयेत् कट्यां नरो वीर्यं न मुच्चिति॥ १०॥
रक्तापामार्गमूलन्तु सोमवारिऽभिमन्त्रितम्।
भीमे प्रातः समुडूत्य कट्यां बड्ढा तु वीर्य्यष्टक्॥ ११॥
इति श्रीदत्तावेयत्वे ईश्वरदत्तावेयसंवादे वीर्यक्षभनं नाम चतुर्वेशः पटलः।

## अय लिङ्गवर्डनादियोगः।

वराइवसया लिङ्गं मधुना सह लेपयेत्। स्थूनं दृढं दीर्घलिङ्गं जायते सुषलोपसम्॥१॥ निशासङ्गन्तु चूर्णेञ्च भावितं नागवारिणा। खाने पाने प्रयुक्तेन षण्डल्वं \* जायते नृणाम्॥२॥

वलिनाशनम्। —तिलगोत्तुरयोयूणं कागोदुग्धेन पाचितम्। शोतलं मधुना युक्तं षण्डलनाशनं भ्रुवम्॥३॥

मबर्डनम्।-

मिनीमीहनम्। — श्रार्ट्रकं गत्थकञ्चेव राजव्यञ्च टङ्गणम्।
संपेष्य सममाताणि निचिपेत्रिरुपद्रवे।
स्थापयेद्दचिणे हस्ते श्रीघ्रं द्रावयति स्त्रियः॥४॥
सभ्रमेश्ववसंयुक्तं पारावतमलान्वितम्।
एतिज्ञासे द्रवेत्रारी दासीवत् कुरुते रितम्।
सिडियोगिमदं स्थातं नान्यथा शङ्करोदितम्॥५॥
सम्बोद्याम — प्रचालनं समी निज्ञां कुलाऽस्याककक्षण्योः।

निसङोचनम्। -- प्रचालनं भगे नित्यं क्वत्वाऽऽमलककल्ककोः। वृद्धाऽपि कामिनो कामं वालावत् कुक्ते रतिम्॥६

षण्डलम् — उद्रिताबीयंवषतं, न तु क्षीवलमिति दिस्।

लीमशातनम्। — लिम्पेट् योनावारकं तु छागीदुग्धे न पेषितम्।
लोमशान्तमिटं ज्ञेयम् उष्णतोयेन चालयेत्॥०॥
लनेत्यानम्। — पद्मवीजञ्च सितया भच्चयेत् पद्मवारिणा।
हठात् स्तियः स्तनद्दन्दं मासेन कुरुते दृढ्म्॥ ८॥
मुण्डीचूर्णकषायेण युक्तं तैलेन पाचितम्।
पतितं योवनं तस्माट् दृढ्ं लेपात् स्तनद्द्यम्॥ ८॥
इति श्रीदत्तावेयतने दृश्ररदत्तावेयसंवादे लिङ्गवर्डनसनीत्थानादिनाम पञ्चविषः पटलः।

### अथ केशरञ्जनम्।

काकोलीपत्रमूलं सहचरसहितं केतकीनाञ्च कन्दम् । क्वायाग्रष्कञ्च भृष्णं त्रिफलरसयुतं तैलमध्ये निधाय ॥ तत् चिप्तं लीहपात्रे चितितलनिहिते मासमकञ्च यावत् । किया: काग्रप्रकाशा चिल्कुलसदृशा यान्ति वै पचमात्रात्॥१॥

विश्वाक्रान्तानि प्रप्याणि तैसैरण्डे च पाचयेत्।
किशान् लेपयते तेषां क्षणावर्णञ्च जायते ॥ २ ॥
तिप्रां लोपयते तेषां क्षणावर्णञ्च जायते ॥ २ ॥
तिप्रां लोपयते तेषां क्षणावर्णञ्च जायते ॥ २ ॥
दयं तुःखेन तैलेन पाचयेग्मृदुविज्ञना ॥
तैलतुःखेर्भृङ्गरसैर्यावत् तैलञ्च पाचयेत्।
सिग्धभाण्डगतं भूमी स्थितं मासात् समुद्धित् ॥
सप्ताः लेपयेत् पेष्य कदलीरससंयुतम्।
क्रजटायुतश्चापि तिप्रालेन सर्भान्वतम् ॥
सप्ताः लेपः कर्त्तव्यः किशाः स्युर्भ्वमरोपमाः।
यावज्ञीवं न सन्देशो नान्यथा शङ्करोदितम् ॥ ३ ॥
इति वीदनावयन्ते द्वरदनावयमंगदं क्षश्चनं नाम षड्विषः पटलः।

### अय केशपातनम्।

तेशातकीवीजसमुद्भवेन तैलेन केशा न पुनर्भवन्ति ॥ १ ॥
त्राख्यपालाशविड्ङ्गविङ्गशतावरीगोत्तुरकाऽस्टतञ्च ।
छीप्रयुक्तं सधुशर्कराभ्यां निशि प्रलेच्चेन प्टतेन सित्यम् ॥
वृडय कुष्ठजीर्णय बलचीनोऽपराक्रमः ।
भच्चयेत् प्रातक्ष्याय तक्षो जायते नरः ॥ २ ॥
इति बीदत्तावेयतके देशरदत्तावेयसंवादे केशपातनं नाम सप्तविंशः पटलः ।

### अय भूतग्रहनिवारणम ।

शिरीषपत्रपुष्पञ्च रवी वारे समुद्वरेत्।
उल्विष्ठां ग्रह्मीत्वा तु उद्गरोमन्तु संयुतम्।
ग्रानोविष्ठासमायुक्तं मार्जारस्यैव संयुतम्।
गोमयञ्चैव संयुक्तं गन्धकं संयुतं ततः॥
स्वेतगुञ्जासमायुक्तं कट्तैलेन पाचयेत्।
धूपं दत्त्वा जपेन्मन्तं भूतवाधा विनश्यित॥
राचसा भूतवेताला देवमानविष्ठेचराः।
डाकिनी प्रेतनी चैव धूपं दृष्टा पलायते॥

नन्न ।—"श्रीं नमः श्मशानवासिने भूतादिपलायनं कुरु हरु स्वाहा"। अष्टोत्तरशतजपात् सिंडिः॥१॥ ति यौदत्तावेयतन्त्रे ईयरदत्तावेयसंवादे भूतग्रहनिवारणं नाम अष्टाविंशः पटनः।

अय ग्रहदोषपीड़ानिवार्गम्।

वर उवाचा — अर्कमूलच धुस्त्रं अपामार्गस्य मूलकम्।

वटदूर्विकयोर्मूलं आख्यं मूलमेव च॥

ग्रमीपत्रमास्रपचं पत्रमीडुम्बरं तथा।

पात्रसन्मयमध्यस्यं दृग्धं घतसमन्वितम॥

तग्डुलं चणकं मुद्रं गोधूमं तिलसंयुतम्।
गोमूत्रं सर्षपाः खेताः कुशायन्दनसंयुताः॥
मधु संमित्रयेत् तत्र सन्याकाले शनौ दिने।
ग्राव्यस्मूले खननं ग्रहोपद्रवनाशनम्॥
महादारिद्राहरणं महापातकनाशनम्।
चिरं जीवति लोके च ग्रहपीड़ा न बाधयेत्॥

मललु ।— "श्रों नमी भास्त्रराय श्रमुकस्य सर्वग्रहाणां पीड़ाः नाग्रनं कुरु कुरु स्वाहा" । अधीत्तरणतत्त्रपेन सिर्द्धिः ॥ १ ॥ इति शीदत्तावेयतन्त्रे ईश्वरदत्तावेयसंवादि ग्रहदीवपीड़ानिवारणं नाम

एकोनविंग: पटल:।

# अय सिंहव्याघ्रसपृष्टश्चिकादिभयनाशनम्।

ईश्वर उवाच ।— सिंहं दृष्टा नमस्कारं मन्त्रं ज्याप्यं पुन: पुन: ।
सर्वे सिंहा: पलायन्ते नान्यया ग्रङ्करोदितम् ॥१॥
मनस्व ।—"ग्रीं नम: ग्रग्निरूपाय ज्ञीं नमः" ।
पुष्यार्के च ग्रहीत्वा तु खेतार्कस्य तु मूलकम्।
धारयहिचिणे हस्ते सिंहवाधामयं न हि ॥२॥

षय सर्पनिवारणम्।

श्रास्तीकं मुनिराजञ्च नमस्त्रत्य पुनः पुनः । स्वप्ने सपेभयं नास्ति नान्यथा श्रङ्करोदितम् ॥ ३ ॥ ग्रहीत्वा पुष्यनचत्रे श्रस्तामूलकं इरेत् । तन्मालां धारयेत् कण्ढे सपेबाधाभयं न हि ॥४॥ श्रथ व्याव्रभयनिवारणम् ।

ग्रहीत्वा ग्रभनचत्रे धुस्तरमूलकं तथा। धारयेइचिणे बाही व्याघ्रवाधाभयं न हि ॥५॥ श्रय विश्वसभयनिवारणम्।

ग्रहीत्वा श्रभनचने द्वापामार्गस्य मूलकम्।
धारयेइचिणे कर्णे व्रिष्ठकानां भयं न हि॥ ६॥

श्रय भग्निभयनिवारणम्।
उत्तरिसांय दिग्मागे मारीची नाम राच्नसः।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुतोऽग्निः स्त्भितो भवेत्॥
इति मन्नेण मन्नाञ्चलिमलिलं श्रामभ्ये निचिपेत्। भगः शास्यति॥ ०॥
ग्रहीत्वा रविवारे तु हयमारकमूलकम्।
धारयेइचिणे इस्ते अग्निवाधाभयं न हि॥८॥

इति शीदत्तावियतन्ते दंशरदत्तावेयसंवादे सिंहव्याष्ट्रसर्पद्विकाग्निभयनाश्रनं

# षट्कर्मदीपिका।

नाम विंश: पटल: ।

कत्या देवीं नमस्तत्य तथा विपुरसुन्दरीम्।
भद्रकालीच्च देवेशीं तथा षट्कर्मदेवताम्॥
श्रीक्रपाविद्यावागोग्र-भद्दाचार्येण धीमता।
क्रियते विदुषां प्रीत्ये कत्या पन्नवदीपिका॥१॥
क्रोधाज्ज्वलन्तीं ज्वलनं वमन्तीम्
स्ष्टिं दच्चनीं दितिजं ग्रसन्तीम्।
भीमं नदन्तीं प्रणमामि कत्यां
रोष्ट्यमाणां चुधयोग्रकालीम्॥२॥
उन्मत्तभेरवीतन्त्यात् फेत्कारीडामरात्त्रया।
तथा च मालिनीतन्त्रात्त्या कालोत्तरादिप॥
सिद्योगीखरीतन्त्रात् योगिनीजालमंवरात।

सर्वतन्त्रात् समाज्ञय षट्कर्मविधिर्चते॥

पुस्तके लिखिता विद्या येन सुन्दरि ! जप्यते । सिडिर्न जायते देवि ! कल्पकोटिशतैरपि ॥ गुरुं िानाऽपि शास्त्रेऽस्मिनाधिकारः कथञ्चन । श्रथाभिधास्ये शास्त्रेऽस्मिन् सम्यक् षट्कर्मलचणम् । सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगफलसिडिम् ॥ ३ ॥

षय पट्कर्मणां सार्वकालिकत्वम्।

षट्कर्मणां सार्वकालिकत्वमान्द्रयया स्मृतिः।

नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यया तया ॥४

तथाइ मनः।— स्ववीर्य्याद्राजवीर्य्याच स्ववीर्य्यं बलवत्तरम्।

तस्मात् स्वेनैव वीर्य्यंण निग्रह्लीयादरीन् दिजः॥ ॥

श्रय षट्कर्माणि।

शान्तिवश्यस्तमानानि विदेषोच्चाटने तथा। मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनोषिणः॥६।

श्रय षट्कर्मणां लचणम्।

रोगक्तत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता।
वश्यं जननां सर्वेषां विधेयत्वसुदीरितम्॥ ७॥
प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तभानं ससुदाहृतम्।
स्मिग्धानां \* देषजननं सिथो विदेषणं सतम्॥८॥
उच्चाटनं स्वदेशादेश्वेंशनं परिकीर्त्तितम्।
प्राणिनां प्राणहरणं सारणं ससुदाहृतम्॥
स्वदेवतादिकालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधदीत्॥

श्रय पट्कर्मणां देवता:।

रितर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली १ यथा क्रमात् षट्कर्मदेवताः प्रीक्ताः कर्मादी ताः प्रपूजयेत्॥१०।

स्विग्धानां --परस्परित्वभावापन्नानाम्।

<sup>·</sup> कालीति-भद्रकाली।

अय षट् कर्मणां दिङ्नियम:।

ईशचन्द्रेन्द्रनिर्ऋ तिवायुग्नोनां दिशो मताः। क्रमेण कर्मषट्केषु प्रशस्ताः ककुमुः स्मृताः॥११॥ यथ षट्कमेणो ऋतुकालादिनिर्णयः।

स्र्योदयात् समारभ्य घटिका \* दशकं क्रमात्। ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या श्रहोरात्रे दिने दिने॥ वसन्तग्रीसवर्षाश्र शरद्वेमन्तग्रीशिराः॥ १२॥

प्रकारान्तरम्।

वसन्तथैव पूर्वाह्ने ग्रीभो मध्याङ्क उच्यते। वर्षा ज्ञेया पराह्ने तु प्रदोपे शिशिरः स्मृतः॥ अर्बरात्री गरत्काल जषा हेमन्त उच्यते। अन्ये च ऋतवः सर्वे सायाङ्कादी प्रकीर्त्तिताः॥ १३॥ हेमन्तः ग्रान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वय्यकर्मणि। ग्रिशिरः स्तभने ज्ञेयो ग्रीभे विदेष ईरितः॥ प्राहडुचाटने ज्ञेया ग्ररमारणकर्मणि॥ १४॥

चय षट्कर्मणां तिथिवारनियममाह।

प्रयोक्त पानि विधिना स च सम्प्रोचित उधुना।
हितीया च हतीया च पश्चमी सप्तमी तथा॥
बुधे ज्यकाव्यसीमाथ प्रान्तिकर्मणि कीर्त्तिताः॥ १५॥
गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी।
नवमी पौष्टिके प्रस्ता चाष्टमी दश्मी तथा॥
पुष्टिर्धनजनादीनां वर्डनं परिकीर्त्तितम्॥ १६॥
दश्म्येकादशी चैव भानुशुक्रदिने तथा।
ग्राकर्षणे त्यमावास्था नवमी प्रतिपत्तथा॥१०॥

घटिका-अव दण्डक्पा।

पौर्णभासी मन्दभानुयुक्ता विदेषकर्मणि।

षष्ठी चतुर्दशी तद्दष्टभी मन्दवारकाः॥

उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषेषु विशेषतः॥१८॥

चतुर्दश्यष्टभी कृप्णा अभावास्या तथैव च।

मन्दारार्कदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि॥१८॥

वुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चभी दश्मी तथा।

पौर्णभासी च विज्ञेया तिथिःस्तभनकर्मणि॥२०॥

ग्रभग्रहोदये कुर्याद् शुभान्यश्रभकोदये।

रौद्रकर्माणि रिक्तार्के सृत्युयोगे च मारणम्॥२१॥

भय पर्कर्मणां नचविनयममाह ।
स्तभानं मोहनञ्जेव वशीकरणमुत्तमम् ।
माहिन्द्रे वार्णे चैव कर्त्तव्यमिह सिहिदम् ॥ २२ ॥
ज्येष्ठा चैवोत्तराषाढ़ा चानुराधा च रोहिणी ।
माहिन्द्रमण्डलं द्येतत् सर्वकर्मप्रसिहिदम् ॥ २३ ॥
स्यादुत्तरभाद्रपदा मूना शतभिषा तथा ।
पूर्वभाद्रपदाऽश्लेषा ज्ञेया वार्षणमध्यगाः ॥
पूर्वाषाढ़ा तु तत्कर्मसिहिदा शन्भुना स्मृता ॥ २४ ॥
विदेषोच्चाटनं विद्ववायुयोगे च कारयेत् ।
स्वाती हस्ता सगिश्ररा चिव्रा चोत्तरफल्गुनी ॥
पृष्या पुनर्वसुर्वद्विमण्डलस्थाः प्रकोत्तिताः ॥ २५ ॥
श्रिष्ठानी भरणी चार्द्रा धनिष्ठा श्रवणा मघा ।
विश्राखा क्रित्तका पूर्वफल्गुनी रेवती तथा ॥
वायुमण्डलमध्यस्यास्तत्त्वम्परिसिहिदाः ॥ २६ ॥

कालविश्ययः।

वश्यं पूर्वेऽक्ति मध्याक्ने विदेषोचाटनं तथा। शान्तिपृष्टी दिनस्यान्ते सन्ध्याकाले च मारणम् ॥२०॥ अय षट्कर्मणां लग्ननियममाह।

कुर्याच स्तभानं कर्म इथ्येचे व्यविकोदये। हेषोचाटादिकं कर्म कुलीरे वा तुलोदये॥ मेषकन्याधनुर्मीने वश्यशान्तिकपौष्टिकम्। मार्गोचाटने चासी रिपुभेदविनिग्रहे॥ २८॥

अय भृतीदये षट्कर्मनियमी यथा।

जलं ग्रान्तिविधी ग्रस्तं वश्ये विक्तिरहितः।
स्तम्भने पृथिवी ग्रस्ता विदेषे व्योम कीर्त्तितम्॥
उचाटने स्मृतो वायुर्भूस्यग्नी मारणे मती।
तत्तक्ष्तोदये मस्यक् तत्तन्मण्डलसंयुतम्।
तत्तत् कर्म विधातव्यं मन्तिणा निश्चितात्मना॥ २८॥
परचक्रभयादी वा तीव्ररूपे महाभये।
न काल्नियमो गम्यः प्रयोगाणां कदाचन॥३०॥

श्रय षट् कर्मदिङ्नियममु तन्नान्तरे।

इन्द्रे स्तभानमुचाटमग्नी सर्वाभिचारकम्। याम्ये रच्चिम विदेष: शान्तिर्वाक्णवायवे॥ कुलोत्सादं मरुद्वागे यचे कलहविग्रही। कुर्वीत नोदितं कर्म यचान्यद् ब्रह्मण: पदे ॥ ॥ १॥

सथ षट् कर्मणां वर्णभेदमाइ।
वश्ये चाकर्षणे चोभे रक्तवर्णं विचिन्तयेत्।
निर्विषीकरणे शान्ती पृष्टी चाप्यायने सितस्॥
पीतं स्तभानकार्योषु धूम्बमुचाटने स्मृतम्।
उन्माटे शक्रगोपाभं के क्षरणवर्णन्तु मारणे॥ ३२॥

त्रह्मणः पदे—ऐशान्यामित्यर्थः ।

श्रक्रगीप:,--रक्तवर्णकीटविशेष:।

श्रय उत्थितसुप्तीपविष्टादय:।

उत्यतं मारणे ध्यायेत् सुप्तमुचाटने प्रभुम्।
उपिवष्टं सुरेशानि ! सर्वचैवं विचिन्तयेत् ॥३३॥
ग्राभीनं खेतरूपन्तु सात्त्विके समुदाहृतम्।
पीतवर्णं राजसे तु रक्तं ध्याममुदाहृतम्॥
यानमार्गस्थितं तूर्णं क्षःशां तामस उच्यते ॥३४॥
सात्त्विकं मोचकामानां राजसं राज्यिरःच्छताम्।
तामसं शत्नुनाशार्थं सर्वव्याधिनिवारणम्॥
सर्वोपद्रवशान्त्यर्थं तामसन्तु विचिन्तयेत्॥३५॥

श्रथ मन्त्रस्थाधिष्ठात्रदेवतामाह।

त्रारताच्येगंन्यवेयचरचोऽहिकिन्नराः।

पिणाचभृतदैत्येन्द्रसिद्धाः किंपुरुषासुराः॥

सर्वेषामपि मन्त्राणाम् एते पञ्चद्य स्मृताः।

केचिदष्टादण्पाहः समाग्राणां नृणां मताः॥ ३६॥

प्रथ मन्त्राणां वर्णसंख्याभेदे संज्ञा, कार्यविष्णेषु च तेषां प्रयोगय।

क्रूरः शनिः पञ्चवर्णैः षड्भिवर्णैस्तु शृङ्खनः।

क्रक्तचः सप्तभः शूलश्राष्टाभिनेवभिः पविः॥

शक्तिश्व दश्भिश्वेकादश्भः परग्रः स्मृतः।

चक्तं द्वादश्भिवर्णैः कुलिग्रः स्याच्योदशैः॥

चतुर्दश्रस्तु नाराचो सुषुण्डी पचवर्णिका ॥।

पद्मं षोड्श्मिवर्णैर्मन्त्रच्छेदे तु कर्त्तरी॥

भेदे तु कियता सूची भञ्जने सुद्गः स्मृतः।

मुषलं चोभणे बन्धे शृङ्खलः क्रकचिष्ठिदि॥

घाते शूलं पविं स्तुभे श्रितां बन्धे च कर्मणि।

विद्षेषे परग्रञ्चक्रं सवक्रमेसु योजयेत्॥

पचवर्णिका—पचदशवर्णात्मिका।

उत्सादे \* कुलिशः शस्तो नाराचः सैन्यभेदने।
भुषुण्डो मारणे पद्मं शान्तिपुष्ट्यादिकर्मणि॥
चक्रन्तु रञ्जकं कर्म सर्वेत्रैवं प्रयोजयेत्।
क्वचिदेवं दर्शितन्तु वामाचारविरोधनम्॥
सहस्राचरमन्त्रादेः प्रयोगो विधिदर्शनात्॥३०॥

श्रय कार्यविशेषे योजनपत्तवादिनिर्णय:।

पञ्चाग्रदर्णक्पाता माहका परमेखरी। तवीत्पना महाक्रत्या वैलोक्यभयदायिनी। यथा कामो जपः कार्यो मन्त्रणामपि मे शृण ॥३८॥ मन्वादी योजनं नामः पन्नवः परिकीर्त्तितः। मारणे विखसंहारे ग्रहभूतनिवारणे॥ उचारने च विद्वेषे प्रज्ञवः परिकीर्त्तितः। मन्त्रान्ते नामसंस्थानं योग इत्यभिधीयते ॥ ग्रान्तिके पौष्टिके वश्ये प्रायस्तितिक्योधने। मोइने दीपने योगान प्रयुज्जन्ति मनीषिणः॥ स्तमानीचाटनोच्छेदविद्वेषेषु स चीचते ॥ ३८॥ नाम ग्राचन्तमध्येषु मन्त्रः स्याद्रोध उचाते 🕆 । मन्ताभिमुख्यकरणे सर्वव्याधिनिवारणे॥ ज्वरग्रहविषाद्यार्त्ति-शान्तिकेषु स चीचते। सम्मोहने स एवाय मन्त्राणामचराणि च ॥ ४०॥ एकौकान्तरितं यत्तु ग्रयनं परिकीर्त्तितम्। तच्छान्तिके विधातव्यं नामाद्यन्ते यथा मनुः॥

जलादि—जबाटे। नाम शादौ—सनुजीमन, सन्ते विजीसक्रमेण द्रति भावः।

तत् सम्पुटं भवेत्तत्तु कीलने परिभाषितम् । स्तम्भे सत्युष्त्रये दृच्छेद्रचादिषु च सम्पुटम् ॥ ४१ ॥ पुनः सम्पुटमाइ भइध्तम् । मन्त्रमादी वदेत्सवें साध्यमंज्ञामनन्तरम् । . विपरीतं पुनद्यान्ते सम्पुटं तत्स्मृतं बुधैः ॥

दित वचनानुसारात् साध्यनामादी अनुलोमेन तत्पशा विलोमेन मन्याचराणि लिखितव्यानि दत्यर्थः॥ ४२॥

मन्त्रार्णेदन्द्रमेकैकं साध्यनामाचरं क्रमात्। कप्यते सविदर्भस्तु वश्याकर्षणपौष्टिके॥ ४३॥ अथ कर्मविशेषे हुं कट्वबडादीनि।

बन्धनीचाटने देषे सङ्गीर्णं हुं पदं जपेत्।
फट्कारं छेदने हुं फट् रिष्टिग्रहनिवारणे॥
पुष्टी चाप्यायने वीषट् बोधने मिलनी क्रती।
ग्रान्तिवार्यो जपेत् खाहां नमः सर्वत्र चार्चने॥ ४४॥
ग्रान्तिपृष्टिवग्रदेषाक्षट्युचाटनमारणे।
खाहा खधा वषट् हुं च वीषट् फट् योजयेत् क्रमात्॥
वश्याकर्षणसन्तापच्चरे खाहां प्रकीर्त्तयेत्।
क्रोधोपग्रमने ग्रान्ती प्रीती योज्यं नमो वृधैः॥
वौषट् सम्मोह्ननोद्दीप-पृष्टिम् त्युद्धयेषु च।
हुंकारं प्रीतिनाग्रे च छेदने मारणे तथा॥
उचाटने च विदेषे वीषट् चान्धीक्रती वषट्।
मन्त्रीद्दीपनकार्येषु लाभालाभे वषट् स्मृतम्॥४५॥

त्रय स्तीपुंनपुंसकमलनियममाइ।
स्तीपुंनपुंसकात्वेन तिथा स्युमेन्त्रजातयः।
स्तीमन्त्रा विज्ञायान्ता नमोऽन्ताश्व नपुंसकाः॥
हुं फट् पुमांस दत्युक्ता वश्यशान्यभिचारके।
चुद्रित्रयाद्यपध्वंसे स्तियोऽन्यत्र नपुंसकाः॥ ४६॥

त्रय त्राग्रेयसौम्यत्यादिमन्त्रधर्मः।

तारान्त्याग्निविषप्रायो मन्त्र श्राग्नेय उच्यते। सौम्याय मनवः प्रोक्ता भूयिष्ठेन्द्रस्ताचराः॥ श्राग्नेयमन्त्राः सौम्याः स्यः प्रायशोऽन्ते नमोऽन्विताः। मन्त्रः शान्तोऽपि रौद्रत्वं हुं फट् पञ्चवितो यदि॥॥४०॥

श्रय मन्ताणां सुप्तप्रबुद्धकालाः।

सुप्तः प्रबुध्यमानोऽपि मन्तः सिद्धिं न गच्छित । खापकालो वामवहो जागरो दिच्चणावहः ॥ खापकाले तु मन्त्रस्य जपो न च फलप्रदः । ग्राग्नेयाः सम्प्रबुध्यन्ते प्राणे चरित दिच्चणे ॥ वामे चरित सीम्यास प्रवुद्धा मन्त्रिणां सदा । नाड़ीहयगते प्राणे सर्वे बोधं प्रयान्ति च । प्रयच्छिन्ति फलं सर्वे प्रवुद्धा मन्त्रिणां सदा ॥ ४८ ॥

अय आसनानि।

श्रासनानि प्रवच्यामि कर्मणां विह्नितान्यपि।
पद्मासनं पौष्टिके तु शान्तिके स्वस्तिकासनम्॥
श्राक्तष्टे पौष्टिके तद्वद्विदेषे कुकुटासनम्।
श्रद्धस्तिकमुचाटे श्रद्धस्यापनपाणिकम्॥
मारणे स्तभने तद्वद्विकटं परिकीर्त्तितम्।
वस्ये भट्रासनं तेषां कथ्यते चाय भावना॥ ४८॥

षय विकटकुक् टासनयीर्लचण यथा।
जानुजङ्कान्तरालेषु भुजयुगमं प्रवेशयेत्।
विकटासनमेतत् स्यादुपविश्योत्कटासने॥
कत्वोत्कटासनच्चेव समपादद्वयं ततः।
वश्ये मेषासनं प्रोक्तम् श्राक्षष्टिर्श्याच्चर्मण्॥
उट्टासनं तथोचाटे विदेषे तुरगासनम्।

मारणे माहिषं चर्म मोचे हस्यजिनं भवेत्। अथवा नम्बलं रक्तं सर्वनर्मसु नारयेत्॥ ५०॥

श्रथ षण्तुद्रा:।

षर्मुद्राः क्रमशो च्चेयाः पद्मपाश्गदाह्वयाः । मुषलाशनिखङ्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु ॥ ५१ ॥

श्रय देवध्यानमाह।

प्रान्तिपौष्टिकवश्येषु सौन्दर्यातिग्रयान्विताः।
सर्वाभरणसन्दीप्ताः प्राप्तकालमनोरयाः।
ध्यातव्या देवताः सम्यक् सुप्रसन्नाननाम्बुजाः॥
ग्राकर्षणेऽपि तद्दच विङ्ग्रीरिव मत्स्यकान्।
साध्यमाकर्षणे देषे भत्स्यमानं जनैरिव।
बध्यमानो जनैदिण्डैदीरितस्तस्करो यथा॥
उल्को वा यथा रिष्टमेन्तव्योचाटने रिपुः।
यिकञ्चित् श्वमारुष्ट सन्दृष्टीष्ठपुटः क्र्षा।
कर्म कुर्यात् ततो मन्त्री यथा क्रूरेषु कर्मसु॥ ५२॥
इति श्रीकृष्णानन्दिव्यावागीश्रभद्दाचार्यक्रतायां षट् कर्मदीपिकायां
सानान्यधर्मः प्रथमीदिशः।

# अय रचार्धम्।

ग्रामे च निर्जने देशे विदध्यादिभचारकम् । यत्नाभिचारहोमन्तु कुर्य्याच भुवि साधकः ॥ तत्नाभितो भटैः रचां कारयेदात्मभिद्यये । न चेचान्यः चितिपतियारैज्ञीत्वा निहन्त्यमुम् ॥ १ ॥ ॥

अभितः, — चतुर्दिच ; भटैः, — योड्भिः निकटे रचितव्यः। चारैः, — ट्र्तैः।

यय कुख्डम्।

विदेवे चाभिचारे च विकोणं कुण्डमिष्यते। दिमेखनं कोणमुखं \* इस्तमात्रन्तु सर्वतः॥ उचारनन्तु नैक्ट त्यां शतुपचस्य कारयेत्। उत्साटनन्तु वायव्यां देवानामपि कार्येत ॥ शत्णां तापने शस्तं योन्याख्यमग्निकोणगम्। ऋर्डचन्द्रन्तु यास्यायां 🕆 शव्णां मारणे स्थितम् ॥ विकोणं नैऋ ते कुण्डं रिपूणां व्याधिवर्डनम्। दाहायाग्नी च विदेषे कुण्डं पूर्णेन्दुसिनभम्। चत्रसञ्च कर्त्रव्यं देषादी तु विचच्यौ:॥ कुण्डं सुलचणं क्रत्वा तन कर्माणि साधयेत। चतुरस्रे भवेदस्यमाकर्षः स्थात विकोणके ॥ कर्षणस्तभाने देवि। विहेषञ्च विकोणके। श्रयैवोचाटनं प्रोत्तं पट्कोणे मारणं स्मृतम्॥ उदीचां # पौष्टिके कुण्डं वाक्ष्यां शान्तिकादिषु। उचारे चानिले कुग्छं याम्ये च मारणं भवेत॥ मानहीनादिकां § दोषं नास्ति कुग्डेऽभिचारके। श्रमेषु स्य्विवाहान्ताः क्रियास्ताः क्रूरकर्मणि। मारणान्ताः समुहिष्टा वक्करागमवेदिभिः॥ २॥ ततो राज्ञातिविद्वांसमयर्वश्रुतिपार्गम। वहुभिद्रविणैर्वस्त्रैनीनारत्नैर्विभूषणै:। पूजयित्वा ततः पश्चाद् विधिना वृण्याद्विजम् ॥

<sup>\*</sup> कोषसुखं-नैऋं यादि।

<sup>+</sup> यान्यायां मण्डपस्य द्रति शेष:।

<sup>‡</sup> उदीचां मख्पस्य ग्रामस्य वा इति ग्रेष:।

<sup>§</sup> मानं — इसादिमानम्।

वतोऽप्युत्साहसंयुक्तः सर्वरचापरायणः।
यत्नतो मारणं कमे कुर्य्याद्राज्ञो हितेच्छ्या॥
वित्तगाळां परित्यच्य सर्वकर्माणि कारयेत्।
वित्तगाळां निहन्त्याग्र पुत्रमायुर्यगोधनम्।
देग्ररचणधर्मण न स्वयं पापभाग् भवेत्॥
तेजोनाग्रो भवेदादौ बलनाग्रस्ततो भवेत्।
सपत्नस्य ततो नाग्रस्तिस्रश्वावृत्तयस्ततः।
विरावृत्तौ फलालाभे तिरावृत्तं पुनश्चरेत्॥ ३॥

श्रय यथीत्तरं प्रयोगीत्कर्षः।

वध्यात् स्तभानमुत्कृष्टं स्तभानामोहनं महत्।
मोहनाहेषणं श्रेष्ठं हेषादुचाटनं वरम्॥
उच्चाटनादिष महन्मारणं सर्वतोमहत्।
मारणादिधकं कमे न भूतं न भविष्यति॥
तत्वैव दिच्लो चित्तं कत्वा भारणमारभेत्।
शान्तिपुष्टी दिनस्थान्ते सन्ध्याकाले तु मारणम्॥ ४॥

#### श्रय कुभस्यापनम्।

वाहिरने। शान्तिके खर्णकुभाञ्च नवरत्नै विभूषितम्।
तदभावे रौष्यकुभां ताम्नं वापि सुलचणम् ॥
श्रभिचारे लोइकुभां खापयेत् सुममाहितः।
उत्सादे काचकुभाञ्च मोहने रैत्यकुभाकम् ॥
उच्चाटने च मृत्कुभां कालमण्डलमंखितम्।
सर्वकर्मणि वा कुर्य्यात् कुभां ताम्ममयं तथा॥ ५॥
तत्तत्कुभाञ्च मंखाष्य रुद्रं देवीञ्च पूजयेत्।
उपचारक्रमेणैव देवं ध्यायेद् यथाविधि॥
शूलहस्तं महारीद्रं सर्ववैरिनिस्दनम्।

पूर्णचन्द्रसमाभासं रुद्रं हषभवाहनम् । श्रयवान्यप्रकारेण ध्यानं कुर्य्यात् समाहितः ॥ ६ ॥ काश्मीरस्फटिकप्रभं त्रिनयनं पञ्चाननं शूलिनम् खट्टाङ्गासिवरप्रसादडमरुं चक्राज्ञवीजाभयम् । विभ्नाणं दशदोर्भिरचजटिलं वीरासने संस्थितम् गोरीश्रीसहितं सदैवमखिलं ध्यायेच्छिवं चर्मिणम् ॥ ७ ॥

रुद्रमन्त्रेण कुर्याच उपचारान् पृथग्विधान्। भद्रकालीञ्च सम्पुच्य नैवेदौय पृथग्विधै:। पट्टवस्त्रैरलङ्कारैविलिदानैः प्रथाविधैः॥ यव न स्याद्पायोऽन्यः श्रवोर्भयनिवृत्तये। तदाऽनन्यगतिलेन मारणादीनि कारयेत्॥ ८॥ दीपादिग्नं समानीय धूपाद्वा चान्यजादिष । विद्वेषणाभिचारे च क्रव्यादंशं न सन्त्यजीत्॥ त्रव चैव विधायागिनं परिस्तोर्थ शरैस्त्यै:। विभीतकपरिध्या च कल्पयेट् यस्य मारणम्॥ जुद्यात्रिस्वतेलाक्तेः काकोल्कीयपचकैः। दारयैनं शोषयैनं मारयेत्यभिधाय च। अष्टोत्तरमतिनैव मनसा जुहुयाहचा ॥ होमान्ते विधिवत् क्तत्यामाराध्याग्नेश सिन्धी। यो मे च काएकं दूराट् दूरं वा चान्तिकेऽपि च॥ पिव ह्यमस्क् तस्येख्वा साधु निवेदयेत्। संरच्याम्नं विधानेन नवरात्रं समापयेत्॥ मतिस्तष्ठति ज्ञालैवं तावदस्य रिपोर्मृति:। वमनं लोहितं प्रोक्तम् उश्लीशं लोहितं स्मृतम्। मङ्गल्पा जपहोमादौ तदावरणमार्भेत ॥ ८॥ हेकरे -- स्वापकाले तु मन्तस्य जपो न च फलप्रदः।

स्वापकालो वामवहो जागरो दिच्चणावहः।
श्रान्तिकर्मणि मित्रं वा जपेनान्तं प्रसिद्धये॥ १०॥

श्रय मालानिर्णय:।

प्रवालवज्रमणिभिवध्यपौष्टिकयोर्जपेत्। मत्तेभदन्तमणिभिर्जपेदाक्षष्टिकर्मणि॥ साध्यकेशसृत्रयुक्तैस्तरङ्गदशनोद्भवै:। अचमालां परिष्कृत्य विदेषोचाटने जर्पत्॥ मृतस्य युडशून्यस्य दशनैगर्दभस्य च। क्तवाच्यमालां जप्तव्यं शत्रमारणिमच्छता॥ क्रियते शङ्कमणिभिर्धर्मकामार्धिसद्ये। पद्माचै: प्रजपेनान्तं सर्वेकामार्धिसङ्ये ॥ रुट्राचमालया ज्ञा मन्त्रः सर्वेफलप्रदः। स्फाटिकी मौक्तिकी वापि रौद्राची वा प्रवालजा ॥ मारस्वताप्तये गस्ता पुचजीवैस्तयाप्तये। पद्मसूत्रक्तता रज्जः शस्ता शान्तिकपौष्टिके ॥ त्राक्षष्ट्यचाटयीर्वाजिपुच्छवालसमुद्भवा। नरस्नायुविशेषेसु मारणे रज्ज्तमा॥ ग्रन्यासाञ्चाचमालानां रज्जुः कार्पासिकी मता। सप्तविंशतिसंख्याकै: क्रता मुर्तिः प्रयच्छति ॥ अचौस्त पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा। अच्माला विनिर्दिष्टा तन्त्रादी तत्त्वदर्शिभः। अष्टोत्तरशतेनैव सर्वकर्मसु पूजिता॥ ११॥

श्रय जपाङ्गुलिनियम:।

शान्यादिस्तभवश्येषु वृडाग्रेण च चानयेत्। श्रङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु जपेदाकर्षणे मनुम्॥ श्रङ्गष्ठतर्जनीभ्यान्तु विदेषोच्चाटयोर्जपेत्। कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन मारणे जप ईरितः॥ १२॥

त्रय जपदिङ्नियम:।

जपेत् पूर्वमुखं वश्ये दिचणञ्चाभिचारके। पश्चिमं धनदं विद्यादुत्तरं शान्तिकं भवेत्। त्रायुष्यरचां शान्तिञ्च पुष्टिं वापि करिष्यति॥ १३॥

भय जपलचणं वाचिकादिमन्वाय।

यूयतेऽन्यै: स तु वाचिकः स्यादुपांग्रसंज्ञो निजदेइवेदाः। ष्कम्पदन्तीष्ठमयाचराणां यचिन्तनं स्यादिह मानसाख्यः॥ ाभिचारे किन वाचिकः स्यादुपांग्रह्तोऽप्यय ग्रान्तिपृष्टी। चेषु जापः किन मानसाख्यः संज्ञा विधा पापनुदे तयोक्ता॥१४॥

श्रय कुर्इदिङ्नियम:।

ग्रान्तिके पौष्टिके चैव होमः स्याद् योग्यसाधनैः।
कार्यं प्राग्वदनेनाय सौम्येन वदनेन वा॥
ग्राक्तष्टौ वायुकुण्डे च कौवेरीदिझुखेन तु।
नैक्ट तीदिझुखस्तिस्मन् कुण्डे विदेषणे हुनेत् ॥
ग्राग्नेयीदिझुखस्त्वेतत् कुण्डे मार्तकेऽपि वा।
उच्चाटने हुनेन्नन्तो भारणे याम्यदिझुखः॥
जुहुयाद् याम्यकुण्डे तु मन्त्रो तत्साधनैस्ततः।
वज्रलाव्कितकुण्डे पे वा ग्रहभूतिनवारणे॥
वायव्यदिझुखो वग्ये कुण्डे योन्याक्रतौ हुनेत्।
वज्रलाव्कितकुण्डे वा स्तभे प्राग्वदनो हुनेत्॥ १५॥

अय शान्यादौ द्रव्यनिवम:।

द्रवाख्य प्रवच्यामि तत्तव्तमीनुसारतः।

जुह्यादियत हुनेदियागमप्रयोग:।
वज्ञलाञ्क्तिकुछ इति —श्चं हीरकं षट्कीणं, तथा च षट्कीणंकुछ।
हु— २ ७

शान्तिके तु पयः सर्पिस्तिलची रहमेण वा॥ ग्रमृताख्या लता चैव पायसं तत्र कीर्त्तितम्। पौष्टिके तु प्रवच्चामि होमद्रव्याखतः परम्॥ विल्वपतेय ग्राज्ये: स्याज्ञातीपुष्पेस्तयेव च। कन्यार्थी जुद्दुयाल्लाजैः श्रीकामः कमलैस्तया ॥ दभा च श्रियमाप्रोति चान्नेश्वानं प्रतप्न्तैः। सम्बी जुडुयानान्ती महादारिद्राशान्तये॥ लचहोमासभेच्छान्तिं प्टतविस्वतिलैभिधिम्। ग्राकर्षणे च हवनं प्रियङ्गविल्वकं फलम्॥ जातीपलाशकुसुमैः सैन्धवैश्वैवमेव च। राजिकालवर्णवीप वध्यं वा पौष्टिकोदितै:॥ वध्यार्थी जातिकुसुमैराक्षष्टी करवीरजै:। कार्पासनिम्बैस्तक्रात्तैः साध्यकेशैरयापि वा॥ उच्चाटने काकपचैरयवा मोहने पुनः। उन्मत्तवीजैर्जुहुयादिषरतोन \* मारणम्॥ ग्रजापयस्तया सपिः कार्पासास्य नृणामपि। तनांसञ्चापि साध्यस्य नखलोमगणैरपि॥ १ एकीक्तत्य हुनेनान्त्री शत्रुमारणकाङ्मया। जुद्द्यात् सार्पपैस्तै लैरयवा शतुमारणे ॥ रोहीवीजैस्तिलोपेतैरुलादे जुहुयाद् यवै:। तुषकग्टकसंयुक्तैवीजैः कार्पासिकैरपि॥ सर्वपैर्लवणोपतैर्ड्नेत् सर्वाभिचारके।

विषरत्तेनिति—विषंरत्तिमिथतं क्रवा हीमयेत्।

<sup>†</sup> कार्पासास्त्रि इति—कार्पासवीजम्। रुणामपीति—नरास्त्रि।

काकोलूकक्कदैः क्रूरैः कारस्करिवभीतकैः ॥ \*

मरीचैः सर्पपैः सिक्यैरर्कचीरैः करुत्रयैः ।

करुतैलैः सुहीचीरैः कुर्यानारणकर्मणि ॥ †

प्रायुष्कामो प्रतिलेर्दूर्वाभिराम्यपर्णकैः ।

प्रयोक्तैराम्यपर्णैय च्वरं सद्यो विनामयेत् ॥

गुड्रूची मृत्युज्यने तथा मान्ती गजाख्योः ।

गौरेस्तु सर्पपैर्हुत्वा सद्यो रोगं हरेहवाम् ॥

वृष्टिकामो वैतसीभिः समिद्धिः पत्रकेस्तया ।

हुत्वा पृष्टिमवाम्नोति पृत्रजीवैस्तु पृत्रकम् ॥

पृत्रगुगुजुहोमेन वाक्पतित्वं प्रजायते ।

जातीविद्रुमम्ब्रीभिः नागपुन्नागसम्भवैः ॥

पृष्पैः सरस्वतीसिहिस्तथा सर्वार्थसाधनम् ।

पयसा लवणैर्वापि हुनेहिष्टिनिवारणे ॥ १६ ॥

भय वक्रेजिक्का: । यथा शारदायाम् ।—

पद्मरागा सुवर्णाच्या तृतीया भद्रलोहिता ।

लोहितानन्तरं खेता धूमिनी च करालिका ॥

राजस्थो रसना वक्रेविहिता: काम्यकर्मसु ।

विख्वमूर्त्तिस्म् लिङ्गिन्यौ धूमवर्णा मनोजवा ॥

लोहिताच्या करालाच्या काली तामस्य ईरिता: ।

एता: सप्त नियुज्यन्ते क्रूरकर्मसु मन्त्रिभ: ॥

स्वस्रनामसमाभा: स्युर्जिक्का: कनकरेतस: ।

हिरच्या गगना रक्ता क्रच्णाऽन्या सुप्रभा मता ।

बहुरूपाऽतिरका च साच्चिक्यो यागकर्मसु ॥ १०॥

काकीलूकच्छदैः,—काकपेचकपचैः। कारस्तर इति—कुँचिखा इति

कटुवयैरिति—मरीचिपण्लीग्रखीक्ष:। कटुतैलैरिति—सार्वपतैलै:।

#### अन्यवापि वक्रीर्जिह्या यथा-

मद्रस्या रूद्रभागे द्रुतकनकिमा कर्षणादी हिरखा वैदूर्या पूर्वभागे प्रभवति गगना स्तभानादी रसज्ञा। रक्ता वालार्कवर्णा हुतवहविदिश्चि देषणादी प्रशस्ता कृष्णा नोलास्वुजाभा दिश्चि दनुजपतिर्मारणे सुप्रशस्ता॥ \* वारुखां सुप्रभा सा प्रतिदिश्चि रसना शान्तिके शोणवर्णा हैमाभा चातिरक्ता पवनदिश्चि गतीचाटने सस्प्रशस्ता। मध्ये कुण्डस्य चान्तः प्रभवति बहुरूपा यथार्थाभिधाना प्रोक्ता जिह्वा विभिन्नाः शिवनिगमपरैः तान्तिकैः कार्थ्यसिंडैग॥१९

#### अय अग्रेनीमानि यथा-

पूर्णां हुत्यां सड़ो नाम ग्रान्तिके वरदस्तथा।
पौष्टिके बलदसैव क्रोधोऽग्निसामिचारके॥
वश्यार्थे कामदो नाम वरदाने च चूड़कः।
विक्रिनीम लचहोमे कोटिहोमे हुताग्रनः॥ १८॥

#### त्रय होमव्यवस्था।

द्रव्यासक्ती घृतं होमे त्वस्क्ती सर्वतो जपेत्।

मूलमन्त्वाइसांसा स्यादङ्गादीनां जपित्रया॥

प्रस्तावृक्तहोमस्य जपस्तु दिगुणो मतः।

येषां जपे च होमे च संस्था नोक्ता मनीषिभिः॥

तैषामष्टमहस्राणि संस्थोक्ता जपहोमयोः।

स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण कुर्यादोमं बिलं तथा॥

नमोऽन्तेन नमस्कारमर्चनञ्च समाचरेत्।

मन्त्यान्ते नाम संयोज्य तर्पयामीति तर्पणम्।

संस्थानुक्ती जपे होमे चाष्टोत्तरसहस्रकम्॥ २०॥

क्ष्यस्या रसज्ञा च—जिह्वा। क्द्रभागे—द्र्यानकोणे। हुतवहविदिशिः
 अग्निकोणे।

#### भय सुक्सुवनियम:।

षट्तिंगदङ्गुला सुक् स्थाचतुर्विंगाङ्गुलः सुवः। मुखं कर्छं तथा वेदीं सप्त चैकाष्टभिः क्रमात्॥ त्रायामानाहती \* दण्डो विंगतिय षड्ङ्ग्लः। वेदरामाङ्गुलैः कुण्डो गर्त्ती हि चतुरङ्गुलः ॥ खातं वेदाङ्गुलैर्वृत्तमङ्गुलित्रतयं खनेत्। मेखना दाङ्गुना तदत् शोभाश्रेषं 🕆 विचिन्तयेत्॥ वेदी चंग्रीन विस्तारं कुर्यात् कुरू मुखाययोः। किष्ठायमितं रस्यं सुची ष्टतविनिर्गमे ॥ कार्षिकद्वप्रङ्गलं खातं पद्गे सगपदास्तिः। # दाविंगत्यङ्गलो दण्ड यानाह्य कताङ्गलः॥ दण्डमूलाययोर्गण्डी सुवै कङ्गणवद्भवेत्। सुवर्णकृष्यतामीर्वा सुक्सुवी दार्जाविष ॥ आयसीयी सुक्स्वी वा कारस्करमयावि। नागेन्द्रलतयोविद्यात् चुद्रकर्मणि संस्थिती॥ चन्दनं खदिराख्य-प्रचच्तविकङ्गताः। चम्पाऽमलकसारश्च पलाशाश्वीत दारवः॥ २१॥

#### त्रय ही ममुद्रा:।

न देवा: प्रतिग्रह्णन्ति मुद्राहीनां यथाहुतिम्।
सुद्रयैवेति होतव्यं मुद्राहीनं न भुज्यते॥
मुद्राहीनञ्च यो मोहाहोमिमच्छिति मन्दधी:।
यजमानं स चात्मानं पातयेत् तेन निश्चितम्॥

श्रायामानाहत दति—दैळें विसारच।

<sup>†</sup> शीभागेषमिति - मेखलावहिभागस शीभागंजा।

<sup>‡ &</sup>quot;कार्षिकदाङ्गुलं दण्डीनाहतसस्य तेऽङ्गुलः" इति वा पाठः।

तिस्रो सुद्राः सृता होमे स्गो हंसी च शूकरो।
शूकरी करसङ्कोची हंसी मुक्तकनिष्ठिका॥
स्गी किनष्ठा तर्जन्योहींमसुद्राचयीरिता।
श्रामिचारिककार्य्येषु शूकरी परिकीर्त्तिता॥
नमः स्वाहा वषट् वीषट् हं फड़न्ताश्च जातयः।
शान्ती वश्ये तथा स्तभो विदेषोच्चाटमारणे॥ २२॥
इति श्रीक्षणानन्दिवयावागीश्रभद्याचयंक्रतायां षट्कमंद्वीपिकायां
कुखादिनियमी हितीयोहेशः।

### अय शान्तिकर्म।

ऋषय जनुः । नामत्रयस्य माहात्मंत्र त्योतुकामा वयं प्रभो ! ।

भगवन् ! त्योतुमिच्छामि वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ १ ॥

बक्षीवाच । न्य्रतिगृह्यतरं मन्त्रं वर्षकोटिश्यतैरिप ।

न शक्यं विस्तरं वक्तुं संचेपाच्छृणुत दिजाः ! ॥ २ ॥

अय अचुतादौ पूजादिः ।

यचुतानन्तगोविन्दै यतुर्धन्तै स्त्रिभः पदैः ।
नमोऽन्तैर्जपकाले तु मूलमन्त्र इतीरितः ॥
ययवाऽिप समस्तैस्त् चतुर्धन्तैकमन्त्रता ।
तद्दिषः शौनको ज्ञेयः प्रयक् पचे परागरः ॥
व्यासय नारदयैव विराट्छन्द उदीरितः ।
परं ब्रह्म तथा प्रोक्तं इरिर्वा देवतित्यपि ॥
जपकाले तु पूजायां नमः ग्रन्दं प्रयोजयेत् ।
तपेणे तपेयामीति दितीयान्तं प्रयोजयेत् ॥
स्वाहान्तं होमकाले तु चतुर्धन्तं तु योजयेत् ।
पड्डमन्तैरतैस्तु हृदयादिक्रमेणं तु ॥

नेत्रान्ताः स्वयमेवैते प्रयोज्या मन्त्रवित्तमेः।
ग्रविदित्वा ऋषिं कन्दो देवताङ्गान्यपि दिजः॥
केवलं स्वयमेवैतज्जप्तारं रचिति भ्रवम्।
साङ्गञ्च योजयिनित्यं सप्त सप्त च सप्त च॥
सप्तवारं कते जापे न सिध्यति यदा पुनः।
सप्तवारं सप्तवारं तदा कुर्य्यात् प्रयोगकम्॥ ३॥

भय इरिध्यानम्।

त्रय ध्यानं प्रवच्यामि सर्वपापप्रणाशनम्। "शङ्कचक्रधरं देवं चतुर्वाहं किरोटिनम्॥ सर्वायुधेरुपेतञ्च गरुड़ोपरि संस्थितम्। शनकादिमुनीन्द्रैसु सर्वदेवैक्पासितम्॥ त्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसिन्नभम्। पातर्यसहसांश मण्डलोपरिसंस्थितम्॥ सर्वलोकस्य रचार्यमनन्तं नित्यमेव च। श्रभयं वरदचीव प्रयच्छनां मुदान्वितम्"॥ एवं ध्याला हरिं नित्यं परं ब्रह्मखरूपिणम्। प्रातमध्यन्दिने चैव सायाक्ने च विशेषतः॥ अर्चयेहेबदेवेगं घतपुष्पजलादिभि:। इविषाग्नी जलै: पुप्पैर्मनसा दृदये हरिम्॥ अर्चयनां च यो नित्यं जपेन रविमण्डले। किञ्चिद्यानार्चनं क्रता जपिन्नत्यमत्न्रितः॥ त्रग्रचिश्वासनी वापि मनसा पापमाचरेत्। गुचिरेव जपेत्रित्यं नामत्रयजपाहिजाः !॥ विनियोगान् प्रवच्यामि यथावह्विसत्तमाः !। नास्नात् परतरा रचा रोगार्त्तानां विधीयतं ॥ श्रष्टोत्तरसद्दसं वा शतं वा जपसंख्यया।

रविवारे तथाऽष्टम्यां रीगार्त्तान् मूर्डि मार्जयेत्॥ नित्यमेव पिवेत् तोयमष्टाविंगतिसंख्यया। हुनेद् धतैस्ति नैर्दूर्वा-गुड़्चीभः पृथक् पृथक् ॥ लक्तकेव जपेमान्तं महारोगप्रशान्तये। यीहचाखत्यमूले वा रोगिणं संस्प्रमन् जपेत्॥ स्ट्रम् ज्ञा निरीचेत चादित्यं मनसा सारन्। एवं क्षतवतः पुंसी रोगशान्तिभविष्वति॥ कन्यां वा लाजहोमेन स्त्रियं वा विख्वपत्नकै:। पुत्रार्थी प्रतहोमेन चारोग्यच तिलैर्घतै:॥ गुड़्ची ष्टतदूर्वाभिस्तिलै विंखैः कुर्यैः गरैः। यथाकामी तु जुडुयात् तत्तत्कामस्य सिडये॥ ग्रहापसारकुषाण्डाः पिशाचाः प्रेतसंस्थिताः। लचे चुते च दूर्वाभिस्तेषां शान्तिर्भविष्यति॥ रविवारे जले खिला नाभिमाने जपेतर:। अष्टोत्तरसहस्रन्तु ज्वरशान्तिभीविष्यति ॥ सृष्टाऽख्यं जपेद्वषं रविमग्डलमध्यगम्। ध्यायन् क्षणां लभेत् काममनुरूपं कुट्म्बिनाम् ॥ ग्रचुतानन्तगोविन्द-नामोचारणभोषिताः। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्चिप्य भुजमुचते। विदशास्त्रात् परं नान्यत् न देवः केशवात् परः॥ ज्वरग्रहादिग्रस्तस्तु सप्ट्वा लचं जपेजाले। ग्रसाध्योऽपि भवेत् सुखो भस्राना ताड्येट् वुधः॥ मूर्भि चैव ललाटे च न्यसेनान्वत्यं हृदि। ग्रारोग्यं सर्वजन्तूनां यथेच्छं गच्छति खयम्॥ मोच्कामो जपेन्यन्वमष्टोत्तरसहस्रकम्।

यावज्जीवं करे तस्य स्थिता मुक्तिर्न मंग्रयः ॥ ब्राह्मणाः चित्रया वैश्याः शूद्राय विविधास्तया । सर्वे भवन्ति वै मुक्ता नामत्रयजपाद दिजाः ! ॥ दूर्वाभवाय समिधो गोटुग्धेन समन्विताः । होतव्याः शान्तिके देवि ! शान्तिर्येन भवेत् स्फुटम् ॥ ४ ॥ इति सनन्तुनारसंहितायां शान्तिक्यो नाम कत्यवयं सम्पूर्णम्।

## अय आयर्वणोत्तज्वरशान्तिः।

त्रस्य मन्त्रस्य त्रगस्य ऋषिरनुष्टुप् छन्दः कालिका देवता बरस्य सद्यः शान्त्यर्थे विनियोगः।—

"श्रीं कुविरन्ते मुखं रीद्रं निन्दिमानिन्दिमावहन्।
ज्वरं सत्युभयं घोरं ज्वरं नाग्रयते ध्रुवम्॥१॥ \*
सहस्रमयुतं वापि जपेत् ग्रान्तिर्भवेद् ध्रुवम्।
श्रास्त्रपत्रस्य होमेन ज्वरग्रान्तिर्भवेदृ ध्रुवम्।
प्रण्वं पूर्वमुचार्थ्य ग्रान्ते युग्मं तथैव च।
सर्वारिष्टनाग्रिनी तु तदन्ते विक्ववस्रभा॥
"श्रीं ग्रान्ते ग्रान्ते सर्वारिष्टनाग्रिनि! स्वाहा"॥३॥
एकलच्चजपेनापि सर्वग्रान्तिर्भवेद् ध्रुवम्॥४॥
अयुतजपेन सिहि:। अस्य मनस्यायुतजपेन सिहिं क्रवा प्रयोगः कार्थः।
स्माहितमना भूत्वा मनसा चार्यचिन्तनात्।
विद्येया मानसी भक्तिः ग्रान्तिकर्मणि योजयेत्॥५॥

के विच्तु।—"श्रीं कुवेरन्त मुखं रावं नन्दिकानन्दमावहन्।
 ज्वरं खत्युभयं घीरं ज्वरं नाश्यते ज्वरम्॥" इति पठिन।

श्रय तन्तीत्राज्वरशान्ति:।

कथयास्यथ लोकानां हिताय सर्वशान्तिकम्।
विधानं यसमादृष्टं तन्तराजे मयोत्तरे॥
गुडस्फिटिकसङ्काग्रं देवदेवं तिलोचनम्।
चन्द्रमण्डलमध्यस्यं चन्द्रचूड़ं जटाधरम्॥
चतुर्भुजं वृषाक्रद्रं भैरवं तुस्बुक्ं \* विभुम्।
गूलमालाधरं दत्ते वामे पुस्तं सुधाघटम्॥
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम्।
सितवस्त्रपरीधानं नागहारविराजितम्।
मानसे भावयदेवं सर्वशान्तिकरं शिवम्॥ ६॥

अथ तुम्बुरुभैरवमन्त्र:।

श्रस्य मन्तं प्रवच्यामि देवानामिष दुर्लभम् । येन विज्ञानमात्रेण जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ श्रादौ तारं समुदृत्य ततः तुम्ब्र्भरव-पदं दत्त्वा शिवं वीजम् श्रमुकस्य पदं वदेत् ॥ सर्वशान्तिपदं दत्त्वा पदं देयं कुरुद्धयम् । ईशानं विज्ञमारूढं दितीयस्वरभूषितम् ॥ नादविन्दुसमायुक्तं विज्ञमायामनन्तरम् । श्रीन विज्ञमादयादन्नादिकसमन्तितम् ॥

अव मनः।—"ग्रीं तुम्बुरुभैरव ! हीं ग्रमुकस्य सर्वशान्तिं कुरु कुरु इतं रं इति"॥ ७॥

> पूजयेत् खेतदूर्वाभिनीनापुर्योविशेषतः । धूपदीपादिसंयुक्तैः सहस्रं प्रजपेनानुम् ॥ यस्य नाम्ना भवेत् तस्य सर्वशान्तिरनुत्तमा । साध्यमीनी सुधाधारं तस्य सूर्धि प्रवर्षिणम् ॥

<sup>\*</sup> तुम्बुरं -तुम्बुरसंज्ञकम्।

यहर्निगं स्मरेदेवं ग्रान्तिपुष्टिकरं ग्रिवम्। होमं वा कारयेदेभिर्दूर्वापुष्पाचतादिभि:॥ तिलजीरसमायुक्तैर्द्रव्येय ष्टतसंयुत्तै:। तिकोणके ततः कुण्डे विद्धं प्रज्वाच्य होमयेत्। दशाङ्गकस्य होमेन ततः ग्रान्तिर्भवेदिति॥ ८॥

श्रयवापि महादेव्याः सञ्जीवन्याः क्रमादिह। जपेन कारयेच्छान्तिं सर्वीपद्रवनाशिनीम् ॥ "श्रीं नमी भगवति सतसञ्जीवनि ! श्रमुकस्य शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा"॥ ८॥

यनन मनुना मन्ती भावियत्वा सुचैतसा।
गोचीरशिशिमयाभामर्डेन्दुक्ततशेखराम्॥
तिमुखीं षड्भुजां त्राचीं नृत्यन्तीं यमपृष्ठगाम्।
जटाज्रटसमायुक्तां रक्तवस्त्रपरिच्छदाम्॥
खड्नं तिशूनं कर्तींच दचिणे दिशि वामके।
खेटकं डमर्रं चक्रं धारयन्तीं श्रवासनाम्॥
प्रत्याचीद्रपदास्थोजां सुख्डमालावलस्विनीम्।
काञ्चीमञ्चीरहाराद्यैभूषणै: परिभूषिताम्।
यस्यास्र ध्यानमाचेण तन्नास्ति यन्न साध्येत्॥ १०॥

श्रय स्तिकाशिवलिङ्गपूजाविधि:।

म्हिक्या श्विलिङ्गपूजा कालीचरे नारदवाक्यम्।—
असारे खलु संसारे सारमेतचतुष्टयम्।
काम्यां वास: सतां सङ्गो गङ्गाभा: प्रामुसेवनम्॥ ११॥
सन्दुराणे।—

श्राग्नहोत्रं तिवेदाय यज्ञाय वहुदिच्णाः । श्रिवलिङ्गार्चनस्यैते कोट्यंशिनापि नो समाः ॥ हिस्ता भित्ता च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत्। यजेहेवं विरूपाचं न स पापेन लिप्यते ॥
श्रनेकजन्मसाइसं भाग्यमाणस्तु योनिषु ।
कः समाप्नोति वै मुक्तां लिङ्गार्चनम्दते नरः ॥
पातरुष्टाय यो लिङ्गं भक्त्या सम्पूज्येत् सकत् ।
कपिलाऽसंख्यदानस्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥
सम्पूर्णं प्रथिवीं दत्त्वा यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥
वारुणीमाश्रिते सूर्ये शिवं सम्यक् समर्पयेत् ।
गवां शतसहसस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥ १२॥
श्राकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका ।
प्रलये सर्वदेवानां लयनाज्ञिङ्गमुच्यते ॥ १३॥

षय लिङ्ग्रमाणम् ; यथा शिवतन्ते ।—
मृत्तिकातोलकं याद्यमयवा तोलकदयम् ।
तिस्त्रस्य प्रमाणेन गठनं कारयेद् वुधः ।
स्वाङ्ग्रष्टपर्वमानन्तु कत्वा लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥
मृदादिलङ्गगठने प्रमाणं परिकोत्तितम् ।
फलं मृत्तिमवाप्नोति चान्यया चेत् तथाऽन्यया ॥ १४ ॥

तथा अन्यप्रमाणं कालीनर ।—
लिङ्गे विद्यां तथा पीठे स्ववयनिपातनात् ।
समानञ्चेदिजानीयाचिस्त्वीकरणन्विदम्।
मारकतस्फाटिकादि पञ्चस्त्वीप्रमाणकम् ॥ १५ ॥

तथा धन्यप्रमाणं लिङ्गपुराणे।—

शिवलिङ्गस्य यन्मानं तन्मानं दत्तसन्ययोः।

योन्ययमपि यन्मानं तदघोऽपि तथा भवेत्॥ १६॥

तथा प्रमाणमन्यत् तन्तान्तरे।—
. लिङ्गस्य याद्टग्विस्तारः परिणान्नोऽपि तादृशः।

निङ्गस्य दिगुणा वेदी योनिस्यादर्डमिमाता ॥ सर्वतोऽङ्गष्ठतो इस्सं न कदाचिद्यि कचित्। रत्नादिषु च निर्माणे मानिमच्छावशाङ्गवेत्॥ १०॥

प्रमाणान्तरं शिवधमें।— नित्यं शुभं लिङ्गं शिला

ब्रह्मा पूजयते नित्यं ग्रभं लिङ्गं शिलामयम्।
तस्य सम्पूजनात्तेन प्राप्तं ब्रह्मत्वमुत्तमम्॥
दन्द्रनीलमयं लिङ्गं विष्णुरर्चयते सदा।
विष्णुत्वं प्राप्तवांस्तेन सोऽभूद् भूतेकशासनः॥
स्फाटिकं निर्मलं लिङ्गं वर्षणोऽर्चयते सदा।
तेन तदरुणत्वं हि प्राप्तमूर्जवलान्वितम्॥ १८॥

वयाइ विङ्गुराये।—
मिणिसुक्ताप्रवालैस रत्नैरप्यर्चनं मतम्।
न ग्रह्लामि विना देवि ! विल्वपनैर्वरानने ! ॥ १८॥

भाग च मन्ततनप्रकाश ।—
लिङ्गह्यं तथा नार्चं गणेश्रह्यमेव च ।
शिक्तह्यं तथा स्थाह्यमेकत्र नार्चयेत्॥
हे चक्रे हारकायास्तु शालग्रामशिलाह्यम्।

एतेषामचेनात्रित्यमुद्देगं प्राप्नुयाद् ग्रही॥ २०॥

षय शिवपूजाविधानम्।
सदाहरणसंघट-प्रतिष्ठाद्वानमेव च।
स्मपनं पूजनचैव विसर्जनमिति क्रमात्॥
इरो महेम्बरचैव शूलपाणिः पिनाकप्टक्।
शिवः पग्रपतिचैव महादेव इतिक्रमात्॥ २१॥

तथा अग्निपुराखे।--

विना भसाविपुण्ड्रेण विना स्ट्राचमालया। विना मालूरपवेण त्रिवपूजा द्या भवेत्। पूजितोऽपि महारुद्रो न स्थात्तस्य फलप्रदः॥ २२॥

तथा च भैवागमे।--

जिर्द्वपुष्टुं तिपुष्टुं वा कत्वा सन्धां समाचरेत्।
शिवपूजाविधी मन्त्री तिपुष्टुमिष \* धारयेत्॥
श्राम्बोत्तभवं भस्म श्रीवमन्त्रभवन्तु वा।
श्रूद्रस्तु तेन मन्त्रेण भस्मान्यिप च धारयेत्॥
न प्राचीमग्रतः श्रमोनींदीचीं शिक्तसंयुताम्।
न प्रतीचीं यतः पश्चादती दच्चं समाश्रयेत्॥
सर्वी भवश्च रुद्रथ तथैवीगः स्मृतः पुनः।
भीमः पश्रपतिश्वैव यजमानस्तथैव च॥
दंशानस्त्र्थे दति च महादेवस्तु सोमकः।
मूर्त्तयोऽष्टी शिवस्यैताः शिवसिन्निधिकारिकाः॥ २३॥

मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्थैताः शिवसिवधिकारिकाः ॥ २३ लैक्के:-मूर्त्तयोऽष्टी शिवस्थैताः पूर्वादिक्रमयोगतः ।

ग्राग्नेयान्ताः प्रप्रच्यास वैद्यां लिङ्गे शिवं यजेत् ॥ २४ ॥

त्रय लिङ्गमुद्रा यथा।—

दत्ताङ्गुष्ठं समुद्रस्य वामाङ्गुष्ठेन वेष्टयेत्। श्रङ्गुजीभिर्निपीद्यैव शिवस्थाग्रे प्रचालयेत्। लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ॥ २५ ॥

श्रय मुखवाद्यफलमाह।

भूमिदानेन यत् पुर्खं कन्यादानेन यत् फलम्। मुखवाद्येन तत् पुरखमुभयं लभते नरः॥ तदेव पुर्खं गीतस्य नृत्यस्य च विशेषतः॥ २६॥

तवैव। सहस्रमर्चयेत्तिङ्गं निरयं स न पश्यति। शिवदेहमवाष्ट्रोति सुक्ता भोगाननुत्तमान्॥ नुचं सम्पूजयेद् यस्तु शिवत्वं नुभते ध्रुवम्।

<sup>\*</sup> अव अपि एकार्थकः।

श्रायुरारोग्यसम्पत्तियुक्तान् पुत्तानवाष्ट्रयात् ॥ श्रयद्भेन सभेत् पुत्तान् सर्वोत्कृष्टगुणान्वितान् । सचैदेशभिरिन्द्रत्वं ब्रह्मत्वं विंशतिः \* स्मृतम् । सद्रत्वन्तु चतुभिस्तु कोट्या च शिवतां ब्रजेत् ॥ २०॥

श्रय लिङ्गस्तवः भविष्यपुराणे।-

सर्वज्ञानप्रविज्ञानप्रदायैकमहात्मने ।
नमस्ते सर्वदेवेश ! सर्वभूतिहते रत ! ॥
प्रनन्तभोगसम्पन्न ! यनन्तासनसंस्थित ! ।
यनन्तकान्तिसम्पेग ! परमेश ! नमोऽस्तु ते ॥
यनन्तकान्तिसम्पन्न ! यनन्तासनसंस्थित ऐ ! ।
परापरपरातोत ! उत्पत्तिस्थितिका्रक ! ॥
सर्वार्थसाधनोपाय ! विश्वेश्वर ! नमोऽस्तु ते ।
सर्वार्थनिमेलामोग ! सर्वव्याधिविनाशन ! ॥
योगियोगिमहायोगि-योगीश्वर ! नमोऽस्तु ते ।
कत्वा लिङ्गप्रतिष्ठाञ्च ध्यात्वा देवं सदाशिवम् ॥
पूजियत्वा विधानेन स्तवमितदुदीरयेत् ।
लिङ्गस्तवं महापुखं यः स्रणोति सदा नरः ॥
नोत्पद्यते च संसारे स्थानं प्राप्नोति शास्वतम् ।
पापकञ्चकनिर्मृतः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २८ ॥

इति भविष्यपुराणे लिङ्गस्तवः समाप्तः।

विंशतिरित्यव विंशत्या इति वीडव्यन्।

<sup>†</sup> भनन्तामनसंस्थित ! इत्यस्य दिवारसुचारणमय सुजङ्गेशासनासंस्थासनाय-पर्य्यवसायकमिति न दीषावद्यम ।

### अय शैववर्जनीयानि।

यथा शिवधर्मीत्तरे।

हिंसां परकलतञ्च निष्ठुरामनृतां गिरम्। स्तेयं केशवनिन्दाञ्च शिवभक्तो विवर्जयेत्॥१॥

चय शिवलिङ्गपूजाप्रयोग:।

ग्रची देशे समुपिवश्य दर्भपाणिराचान्तः कामनाभेदेन सङ्कल्पं काला पूजामारभेत्। "श्रीं हराय नमः" द्रित स्ट्रा-हरणम्। "श्रीं महेश्वराय नमः" दित सङ्घटनम्। "श्रीं शूल-पाणे! दह सुप्रतिष्ठिती भव" दित प्राणप्रतिष्ठा। तती ध्यायेत्।

ध्यायितित्यं महेगं रजतगिरिनिमं चार्चन्द्रावतंसम्
रत्नाकल्योज्ज्वलाङ्गं परग्रमगवराभौतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रक्कत्तिं वसानम्
विश्वाद्यं विश्ववीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्तं त्रिनेत्रम् ॥ २ ॥
श्री पिनाकप्टक् ! इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इत्याद्यावाहनं क्रत्वा । श्री पश्चपतये नमः, इति स्नापनम् । श्री नमः श्वाय इति पाद्यादिभिः पूजयेत् । ततो वामावर्त्तनं पिण्डिकायां प्राच्याद्याग्नेय्यन्तं "श्री सर्वाय चितिमूर्त्तये नमः ।
श्री भवाय जलमूर्त्तये नमः । श्री स्ट्राय श्राग्नमूर्त्तये नमः ।
श्री उत्राय वायुमूर्त्तये नमः । श्री भीमाय श्राकाशमूर्त्तये नमः ।
श्री पश्चपतये यजमानमूर्त्तये नमः । श्री महादेवाय सीममूर्त्तये नमः । श्री ईशानाय सूर्य्यमूर्त्तये नमः" । इति गन्धपुष्यैः सम्यूजयेत् । "श्री महादेव ! चमस्व" इति विसर्जयेत् ।

तथाइ लेक्ने।-

एकीक्षत्य च लिङ्गानि दशपञ्चश्रतानि वा। प्रत्येकमथवा देवि! विल्वपत्नैः प्रपूजयेत्॥ एकं पाग्रपतं लिङ्गं सिच्छलादिविनिर्मितम्। शालग्रामशिलामेकां ग्टहस्थयैव पूजयेत्॥ ३॥

भय भिवनिर्मात्वभीजनम्। यथा भिवरहस्ये—
यथा यथा च खाटूनि ग्रुभानि सुरभीणि च।
निवेद्य पिष्टपानादि तत्फलानि नथा तथा।
भक्त्या निवेद्य भुज्जानः फलमच्चयमाप्रुयात्॥ ४॥
अथ हारीतोक्तनच्चदोषाज्ज्वरशान्तिर्लिख्यते।

नचत्रेस्त ज्वरोऽसाध्यः साध्योऽपि स चिकित्सितः। रिष्टिर्हारीतनिर्दिष्टा सा चात्र लिख्यते मया॥ जन्माधाने च निधने प्रत्यरौ च विपद्गते। यदि व्याधिः समुत्पनः क्लेशाय मरणाय वा ॥ ज्योतिसक्रे धनिष्ठादिनचत्राणां विचेष्टितम्। दशरात्रं धनिष्ठासु ज्वरो भवति देहिनाम्॥ षडाचं वा दशाहं वा भवेत् शतभिषाज्वर:। तथा भाद्रपदास्वेतत् पूर्वासु मरणं ध्रुवम्॥ उत्तरासु भवेन्सोची दिवसीऽईचतुर्दशे। षडातं पञ्चराचं वा रेवत्यां वत्तते ज्वर:॥ ग्रिषिन्यामपि पड़ात्रात् सुखं सम्पदाते ध्रुवम्। भरखाञ्च यमस्तिष्ठेत् मरणं पञ्चमेऽहिन ॥ क्तिकायां ग्रहीतस्य सप्तरातं भवेज्वरः। न मुचेद् यदि सप्ताहादेकविंगतिमे सुखम्॥ रोहिखामहराचेण सुखमकादशेन वा। सगशीर्षे ज्वरोऽप्येतन्नवरात्रमधापि वा॥ याद्रीयामुपखष्टस्य पञ्चाहानमृत्युमादिशेत्। जड्डें यद्यपि वर्त्तत त्रिपचान्म्रत्मादिशेत्॥ पुनर्वसूपसृष्टेन ज्वरेण परिपोडितम।

वयोदशाहतो मुञ्चेत् सप्तविंगेऽयवाऽहिन ॥ पुष्ये विराचं ज्वरितं सप्ताहानातिवर्त्तते। अञ्चेषायां भवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमादिष ॥ मघायां दादशाहिन सत्युर्भवति देहिनाम्। जर्इं ततो मघायान्तु पुनरेव सुखी नरः॥ पूर्वासु चोपसृष्टस्य फलानीषु भवेद् \* यमः। उत्तरासु तथाष्टा हं नवरात्रमथापि वा ॥ एकविंगतिरात्राद्वा ज्वरगान्तिं समृच्छति। हस्तेषु सप्तमे मोच्यिवायामष्टमेऽक्कि च॥ जर्इ वियुज्यमानोऽसी मुचेचित्रागमे पुनः। स्वातीयोगे दशाहेन मुचेत् पचत्रयेण वा॥ विशाखासु भवेनमृत्य्रेकविंशतिमेऽइनि। ज्वरस्त दिवसानष्टावनुराधास वर्त्तते॥ श्रत ऊर्द्धं न मुक्तस्य नापि तस्य चिकित्सितम्। ज्येष्ठायां पञ्चमे सत्युरुईं वा दादशे सुखम्॥ मूले समुपसृष्टस्य दशरातं भवेज्वरः। त्रत जड्डीं न मुत्तस्य नापि तस्य चिकित्सितम्॥ याषादायान्तु पूर्वायां नवरात्रात् प्रमुच्यते । यत अर्डं न मुक्तस्य नापि तस्य चिकित्सितम्॥ उत्तरासु आषाढासु मासमेकं हि क्लिप्यते। श्रष्टी वा नव मासान् वा ततीऽस्य सुखमादिशेत्॥ अवणे त्वष्टरात्रं वा क्षास्यते ज्वरपीडित:। एतद् भगवता प्रोत्तं नच्चताणां विचेष्टितम्। य एनं वित्ति तत्त्वेन स राजा ही भिषम्बरः ॥ १॥

<sup>\*</sup> भवेद दत्यनेन प्रभवेदिति बीध:।

भय हारीतीक ज्वरशानिविधानम्।

हारीते ज्वरशान्यर्यं विधानं लिख्यतेऽधुना।
"अग्निर्भूर्डेति" वक्कग्रार्चे दिध वै जुडुयादसी॥
"हिरख्यगर्भः" रोहिख्यां सर्ववीजमयं इविः।
सर्पिर्भासं स्रगे "सोमं राजानम्" दति होमयेत्॥

श्रय सर्वसिद्धि:।

"श्रीं इसा रुद्राय तवसे कपर्दिने चयदीराय प्रभरामहे ती:। यथा प्रमसद हिपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे श्रिस्निनातुरम्"। (ग्र० य० ऋक् १६।४८) इति श्राद्रीस मधु जुडु-त् । "श्रों महोमूषु मातरम्" इति पुनर्वसी तण्डुलान्। विज्ञान । "श्रों महोमूषु मातरं सुत्रतानास्तस्य पत्नीमवसे हुवेम। विज्ञाम जरन्ती मुरूचीं सुप्रमीणमदितिं सुप्रणीतिम्" ग्र० य० ऋक् २१।५)। "श्रों वहस्यते श्रति यदय्यीं श्रहीद् मिद्द भाति क्रतुमज्जनेषु। यहादयच्छवस ऋतप्रजात तद्रास द्रविणं घेहि चित्रम्। उपयामग्रहीतोऽसि वहस्यतये । एष ते योनिर्वृहस्यतये ला" (ग्र० य० ऋक् २६।३)। ति प्रथे द्यतपायसम्।

"श्रीं नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये श्रन्तरीचे ये वि तिभ्यः सर्पेभ्यो नमः" (श्र॰ य॰ ऋक् १३।६) इति श्रश्लेषासु वींषिधम्। "श्रों इदं पित्रभ्यः" इति मघासु शालितण्डुलान्। "श्रों इदं पित्रभ्यो नमोऽस्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुव्जनासु विच्च"। (श्र॰ य॰ ऋक् १८।६८)

"श्रों प्रातर्जितम्" दति पूर्वफलानीषु कङ्कं हुनेत्। "श्रों प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुचमदिते यीं वधर्त्ता। श्राष्ट्रियद्यं मन्यमानस्तुरिबद्राजा विद्यं भगं भची- त्याह" (ग्र॰ य॰ ऋक् ३४।३५)। "श्रों पुरो यमस्य स्वाहा" इति "तत्सवितुर्वरेख्यम्" (ग्र॰ य॰ ऋक् ३।३५—२२।८) इति च ष्टताहुतिम् उत्तरफलानीषु जुहुयात्। तत्सवितुरिति हस्ते दिध। "श्रों द्यावा पृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभीते अज्ञे भूरिरेतसा" इति चित्रासु मधुपायसम्।

"ग्री वायुरग्रेगा यज्ञपीः साकं गन्मनसा यज्ञम्। शिवे नियुद्धिः शिवाभिः" (ग्र॰ य॰ ऋक् २०।३१) दति स्वातीः ष्टताक्तान् तिलान्।

"श्री इन्द्राग्नी श्रागतं सुतं गीर्भिर्नभी वरेखम्। श्रस् पातं धियेषिता उपयामग्रहीतीऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वा। एष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा" (श्र॰ य॰ ऋक् ७११) इति विशाखार् नवीदनम्। "श्रीं महिभूपाम्" इति श्रनुराधासु लसुनम्। "श्रे फलाुनान्ने" इति ज्येष्ठे कलायम्।

"श्री श्रयं ते योनिक्स ित्यो यतो जातो श्ररोचयाः। त जानव्रग्न श्रारोहाया नो वर्धयारियम्" (श्र० य० ऋक् २।११ --१२।५२) इति मूलेषु मूलकम्।

"श्रीं इदमापः प्रवहतावद्यञ्च मलञ्च यत्। तचाभिदुद्रोहा तृतं यच श्रेपे श्रभीरुणम्। श्रापो मा तस्मादेनसः पवमानश् मुञ्जतु" (शु॰ य॰ ऋक् ६।१७)। इति पूर्वाषाद्रासु शालिम् "श्रीं विश्वेभ्यो मारुत" इति उत्तरासुरजतम्; तदभावे कुन्द पुष्पम्। "श्रीं इदं विशाुर्विचक्रमे वेधा निदधे पदम्। समूद्रमस् पांसुरे स्वाहा" (शु॰ य॰ ऋक् ५।१५) इति श्रवणे सर्वं रक्तम्

"श्रीं वायुरग्निर्वसु:श्रवाः श्रचतानयमुत्तमम्। रियम् मनी बोधिसुधीहवं सुरस्थानी श्रचायतमस्मात्" इति धनिष्ठार वटग्रङ्गम् ।

"श्रीं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानं

है:। अहेडमानो वक्षे ह बोध्युक् ग्रंस मान आयु: प्रमोषी:"
कि ऋक् १८।४८—२१।२) इति प्रतिभिषायां जलपुष्पाणि।
अत्री उत्तराहिव्रभ्रः" इति पूर्वभाद्रपदे प्राच्योदनम्।
श्री अहिरिव भोगैः पर्य्यति बाहुं ज्याया हितं परिवाधइस्तन्नो विख्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परिवेख्वतः" ( ग्र॰ य॰ ऋक् २८।५१ ) इति उत्तरभाद्रपदे
दनम्।

भी यस्तो तार इन्ह ष्ठासि इति रेवत्यां फलान्य चतानि।
अभा पिबतमि विनेभानः समे येच्छतम्। स्विद्रितिभिः (स्व य व ऋक् ३४।२८) इति स्रिक्षिन्यां चीरमेत्। "स्री मासंयमः" इति भरण्यां तण्डुलान् जुन्डइति वर्विचिद्धः॥ १॥

#### भय हारीतीक्षज्यरहरणविलममः।

ों क्रीं क्षीं ठः ठः भो भो जूर ! ऋणु ऋणु हम इन गर्ज काहिकं द्याहिकं त्राहिकं चातुराहिकं साप्ताहिकं ं त्राईमासिकं वार्षिकं दैवार्षिकं मौहर्त्तिकं नैमेषिकं ट भट भट हुं फट् त्रमुकस्य ज्वरं इन इन मुच्च मुच्च गच्छ गच्छ स्वाहा"॥

ज्वरामयग्टहीतस्य मुष्टिभिर्नविभिः क्वतः । तग्ड्नैर्वर्णभेदेन कुर्य्यात् पुत्तन्तकं ग्रभम् ॥ तं हरिद्राविन्तप्ताङ्गं चतुःपीतध्वजान्वितम् । हरिद्रारसपूर्णभिः पुटकाभिस्वतस्रभिः ॥ मण्डितं गन्धपुष्पाचीरवतार्थः विसर्जयत् । एतिहन्त्रयं कुर्यात् ज्वररोगोपशान्तये ॥ २ ॥

भय पुत्तलकविसर्जनम्।

र्गे अयोलादि अमुकगोत्रस्य अमुकस्य उत्पद्मज्वरचयाय

तत्रचत्राय एष रिचतपुत्तलकवित्तर्भः" द्रत्युत्सृज्य नि यित्वा उत्तरस्यां दिशि पुत्तलकविसर्जनं कर्त्तव्यम् ॥ ३॥

यत पुत्तलकं गर्गोत्ततुत्वसिति। एतत्कृत्वा आचमन् नचताय दद्यात्। जुरहृदयं मार्जियष्यामि। "भो भो मृणु मृणु हन हन गर्ज गर्ज ऐकाहिकं द्याहिकं त्रा चातुराहिकं साप्ताहिकं मासिकं यार्डमासिकं वार्षिकं दैव मौह्निकं नैमेषिकं यट यट भट भट ह्ं फट् वज्रपाणी यों यिरो मुच कण्ढं मुच बाहं मुच उदरं मुच कटिं उक्तं मुच भूम्यां गच्छ मृणु मृणु अमुकस्य जुरं हन ह फट्"। एतदलक्तरसेन पित्रकायां लिखित्वा अन्यजाय दानपूर्वकं थिरसि बन्धनीयम्॥ ४॥

श्रय गर्गीतज्वरहरणवलिर्यथा।--

चिष्विन्यां दशरावेण जुरितः कल्यतां व्रजेत्। तदाष्टिन्ये इमं दयात् पत्युर्जीवनहेतवे॥

तत्र इस्तप्रस्थं ग्रहीततग्डुलक्षतिपष्टकरिचतं तुरगं पात्रे चतुर्भिः पुरुषेर्गृहीतं प्रत्येकं कपर्दकैकक्रीतैर्गन्धपुष् दीपैर्वेष्ट्यित्वा पताकाभिरलङ्कत्य वास्तुप्रदेशे सन्ध्यायां हरणविन्तं दद्यात्। एवं सकलनचत्रे। एतेन सुस्थो मानवः॥ ५॥

#### त्रय गर्गीताञ्चरहरणविलमन्त्र:।

"त्रीं क्लीं ठिः ठः भी भी जूर ! ऋणु ऋणु हन हा गर्ज ऐकाहिकं द्वर्शाहिकं त्रराहिकं चातुर्थिकं साप्त मामिकं त्राहिमासिकं वार्षिकं हैवार्षिकं मीइर्त्तिकं नैं त्रट त्रट भट भट क्रमुकस्य जुरं हर हर हन हन मुच्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा"।

गर्गप्रोक्तो मन्त्र एषः सर्वज्वरहरः स्मृतः॥ ६॥

अथ ज्वरहरणवित्तमत्वसु प्रकारान्तरेण।

श्रीं नमयण्डवज्रपाणये महासुषेणाधिपतये श्रीं ज्वर!

गुण कर्द कर्द शिरो मुच मुच हृदयं मुच मुच उदरं मुच

हिं मुच मुच जरुं मुच मुच हृदयो मुच मुच गाताणि

हुच श्रीं हुं हुं फट् श्रमुकस्य सर्वज्वरं नाशय स्ताहा"।

हमारीकल्पितस्रतेण संवेष्ट्य पत्निकां लेखियत्वा ज्वरिणः।

बन्धयेत्॥ ७॥

भय वाराहीमायातन्वयीय खीपाठफलम्। <sup>उवाच ।</sup> चण्डीपाठफलं देवि ! ऋणुष्व गदतो सस । एकाइत्यादिपाठानां यथावत् कथयामि ते॥ मङ्गल्या पूर्वं सम्यूच्य न्यस्याङ्गे च मन् सकत्। पाठाइलिप्रदानाडि सिडिमाप्नोति मानवः॥ उपसर्गोपशान्यर्थं विराहत्तं पठेन्तरः। यहोपशान्ती कर्त्तव्यं पञ्चाहत्तं वरानने !॥ महाभये समुत्पन्ने सप्ताइत्तमुदीर्येत्। नवाव्यताद् भवेच्छान्तिवीजपेयफलं लभेत ॥ राजवस्थाय भूत्यै च रुट्राइत्तमुदीरितम्। अर्काहत्ते: काम्यसिडिवैरिहानिय जायते॥ मन्वावृत्तादिपूर्वस्य तथा स्तीवस्यतां नयेत्। मीखं पञ्चदशाहत्ताच्छियमाप्रोति मानवः॥ कलाहत्तात् पुत्रपीत्रधनधान्यागमं विदः। राज्ञां भीतिविमोचाय वैरस्योचाटनाय च॥ कुर्यात् मप्तद्शाहत्तं तथाऽष्टादशकं प्रिये !। महाव्यविमोचाय विंशाहत्तं पठेन्ररः॥ पञ्चविंगावर्त्तनात् भवेदस्वविमोत्त्णम्। सङ्ग्टे समनुष्राप्ते दुचिकित्स्यामये तथा॥

जातिध्वंसे कुलोच्छेदे श्रायुषोनाश श्रागते। वैरिवृद्धी व्याधिवृद्धी पुरनामे प्रजाच्ये॥ तथैव विविधीत्पात महोत्पातीपपातके। क्याद् यदाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते ग्रुभम्॥ नम्यन्ति विपदस्तस्य अन्ते याति परां गतिम्। श्रियो हृष्टिः गताहृत्ताद्राज्यहृष्टिस्तयाऽपरे ॥ मनसा चिन्तितं देवि ! सिध्येदष्टीत्तराच्छतात्। यताखमधयज्ञानां फलमाप्रीति सत्रते ।॥ सहस्रावर्त्तना इसीराष्ट्रणीति स्वयं स्थिरा। भुक्का मनोरयं कामान् नरो मोचमवाप्रयात्॥ यथाखमेधः क्रतुराड् देवानाच यथा हरिः। स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशती स्तवः॥ प्रथवा बहुनीक्तेन किमेतेन वरानने !। चग्ड्याः शताव्यत्तिपाठात् सर्वाः सिध्यन्ति सिषयः संस्कृत्य भूमिं संस्थाप्य कलसं तीर्थवारिणा। पूर्यावा खर्णेक्स चिपेदष्टमृदस्त्या ॥ धर्मकामः चिपेद् भस्र धनकामस्त मौक्तिकम्। श्रीकामः श्रीफलं न्यस्य कामात्मा रोचनं न्यसेत्॥ मोच्चनामो न्यसेइजं जयकामोऽपराजिताम्। उचारनार्यं व्याघ्रीच वध्यार्थं शिखिमूलकम् \*॥ मारणाय मरीचञ्च कितवं के मोहनाय च। माकर्षणार्थं पावन्तीं क प्रचिपेत् कलसोदरे ॥

<sup>\*</sup> शिखिमृलकम्-षपामार्गम्।

<sup>+</sup> कितवं-धुसूरम्।

t पावन्तौ-पिचली द्रति भाषा।

जपेनान्तं महेशानि ! शृणुष्व गदतो मम । चिप्तञ्च कलसे इस्तं तमादाय जपेनानुम्॥ नक्कांशांस्तया वामकर्णमर्डेन्द्रशेखरम्। दिवांगभवं समुचार्थ्य मायावीजं ततो वदेत्॥ चाम्ग्डाये पदं पश्चाह्विठान्तो मनुरीरितः। जिपत्वा दशलचन्तु सायात्तेनैव वारिणा॥ इनेत् सर्पिः प्रलिप्तां स्वत्वधान्याञ्चतण्डुलान्। धर्मार्थकामसंसिद्धैर मोचाय पायसं हुनेत्॥ मारणे मोहने चैव तथोचाटनकर्मम्। हुनेनांसं विमध्वतं मोहने मधुपायसम्॥ स्तभने मातुलफलं वश्ये तु खेतसर्षपै:। धर्मार्थकाममोचार्थी पूर्वाशाभिमुखं हुनेत्॥ एवं शताहत्तफलं मयोत्तं ते विधानत:। श्राधारे स्थापयित्वा च पुस्तकं वाचयेत् स्फ्टम्॥ हस्तसंस्थापनादेव हरत्यईफलं यतः। यावन पूर्व्यतेऽध्यायः तावन विरमेत् पठन्। अनुक्रमं पठेद् देवि ! शिर:कम्पादिकं त्यजेत्॥ प्रमादतोऽध्यायमध्ये विरमेत्तु यदि प्रिये !। पुनरध्यायमाद्यस्य पठेत् सर्वस्तवे विधि:॥ नात:परतरं स्तोत्रं किञ्चिदस्ति वरानने ।। भुतिमुतिप्रदं पुर्खं पावनानाञ्च पावनम् ॥ ८॥

त्रय दाचिषाव्यसमदायमते चिष्डीपाठक्रमः। वेदादिवाग्भवञ्चेव मायाकामस्तयेव च।
पृथ्वी शिवं वामनेत्रं नादिबन्दुविभूषितम्॥
मायाकामो नमः पञ्चान्त्रसम्ब दति स्मृतः।
लच्चं जिपस्त्रसम्बं सर्वेकामायसिद्वये॥

एतनान्त्रं ग्रादी लचं जप्ता चण्डीपाठः कार्यः।
"ग्रीं ऐं झीं क्रीं ह्वीं झीं क्रीं नमः"। सृष्टिस्थितिसंचार
भेदा भवन्ति। स्टिक्षमसु।—"सावर्णिः सूर्य्यतनयः" इत्यादि।

"सूर्याज्जना समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः"। इत्यन्तं शान्तिकर्मणि ज्ञेयम्। स्थितिक्रमसु।—

"चिष्ठवाच। पुरा ग्रुक्शनिग्रुक्शाभ्यामसुराभ्यां ग्रचीपते! दत्यादि ग्रुक्तादिस्तवसमाप्तिपर्य्यन्तं स्थितिकर्मणि ज्ञेयम् चंहारक्षमसु। — एवं देव्या वरं सब्धा सुरयः चित्रयर्षभः। सूर्याज्ञन्म समासाय सावणिर्भविता मनुः॥

दति स्रोकः संहारक्रमेण "सावर्णिः सूर्य्यतनयः" दत्वन् पठनीयः। एवं संहारक्रमः स्त्रीवित्तपुचचेत्रापहारकर्मणि बोध्यम्॥ ८॥

#### तथा च वाराहीतन्ते।-

श्रादिमारभ्य प्रजपेत् सृष्टिक्रम दृशेच्यते ।
पुरा ग्रुक्सिनग्रुक्साभ्यामारभ्य प्रजपेत् सुधीः ॥
श्राद्याच्छक्रादिपय्येन्तं स्थितिक्रम उदाहृतः ।
श्रेषमारभ्य श्राद्यन्तं संहारोऽयं क्रमो भवेत् ॥
स्थिति पाठः सर्वकामे मुक्तिकामे च संहृतिः ।
स्थीकामे पुत्रकामे च सृष्टिक्रम उदाहृतः ॥
श्रतमादी श्रतञ्चान्ते जपेन्मन्त्रं नवाच्चरम् ।
चण्डीसप्तश्रतीमध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृतः ।
सकामे सम्पुटो जाष्यो निष्कामे सम्पुटं विना ॥ १०॥

#### श्रय ध्यानम् ।

या चा का मधुकैटभप्रदलनी या माहिषोन्मूलिनी या धूमेचणचा उमुण्डमयनी या रक्तवीजाशिनी। यितः ग्रमानिग्रभदैत्यदमनी या सिडिलक्सीः परा सा देवी नवकोटिमूर्त्तिमहिता माम्पातु विश्वेखरी ॥११॥

अय चखीपाउक्रमः।

"श्रस्य श्री संप्तग्रतीमहास्तोत्रस्य मेधातिथि ऋषिगीय स्त्रानुष्ट्व-हतीपङ्जित्रिष्टु जगत्य श्रुल्टांसि महाकाली महालच्यी महा-रस्त्रती देवताः स्तवकं ऐं क्लीं कीं जीजानि चूौं ग्रां श्रमुक-प्तामना सिंद्वये विनियोगः"। दत्यादिक्रमेण पठनीयम्॥ १२॥

अय वाम्यकविधानम्।

त्रयात त्रास्वकं मन्त्रमभिधास्यास्यनुष्ट्भा। यं भजन्तं नरं कालः ख्वयं वीचितुमचमः॥ विशिष्ठोऽस्य ऋषिः प्रोत्तम्छन्दोऽनुष्टवदाहृतम्। देवतास्य समुद्दिष्टा त्रास्वकः पार्वतीपतिः॥ विभक्तैर्मन्तवर्णैः स्यात् षड्ङ्गानां प्रकल्पना । • हृदयं विभिराख्यातं चतुर्भिः शिर ईरितम्॥ शिखाष्टाभिः समुहिष्टा नवभिः कवचं मतम। पञ्चभिनेत्रमाख्यातमस्तं तिभिरुदाहृतम्॥ पूर्वपिश्वमयाम्येन्द्वत्नेषु तदनन्तरम्। उरो गलास्येषु पुनर्नाभिच्चत्पृष्ठकुचिषु॥ लिङ्गपायूरुमूलान्तर्जानुयुग्मं ततः परम्। तहत्तयुग्मस्तनयोः पार्ष्वयोः पादयोः पुनः॥ पाखोर्नासिकयोः शीर्षं मन्तवर्णान् न्यसेत् क्रमात्। पदान्येकादम न्यसेत् मिरो भ्रुयुगलाचिष् ॥ वत्ने गण्डयुगे भूयो हृदये जठरे पुनः। गुद्योक्जानुपादेष न्यासमेवं समाचरेत्॥ १३॥

श्रथ व्यक्तकप्रयोग:।

गनैयरदिने अन्यदिने वा अख्यवृत्तं स्पृष्टा जपेत्।

तथान—ग्रनैसरदिनेऽखत्यमूलं स्पष्टा तु संजपेत्।
साचान्मत्योर्विमुच्येत कासान्याः चुद्रिकाः क्रियाः॥
तत्रादो स्वस्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्य्यात्। यथा अद्येत्यादि अत्राखत्यमुले अमुक्तगोत्रस्य सीस्रमुकदेवशर्मणो भटित्युत्पन्नरोगप्रसमनपूर्वकदोर्घजीवित्वकामोऽहम्।

"त्रीं त्रास्वनं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्डनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुचीयमासृतात्" ॥

( ग्र॰ य॰ ऋक् ३।६० )।

इति मन्त्रस्य इयलांख्यकजपं करिष्ये। इति सङ्कल्प्याश्वत्य-मूले आसने शिवलिङ्गं यथाविधि खापयित्वा भूतगुडगादिकं क्रता अर्घ्यपाचं संस्थाप्य क्रताञ्जलिन्येसेत्। "त्राम्बकमन्त्रस वशिष्ठऋषिरनुष्ट्प्छन्दस्यग्बको देवता अमुकस्योत्पन्नरोगप्रश-मने विनियोग:। शिरसि वशिष्ठ ऋषये नम:। मुखे अनुष्ट्प-क्रन्दमे नम:। हृदि त्राय्वकाय देवतायै नम:"। वय कराङ्ग्यासी।-"त्रास्वत्रं ग्रङ्गुष्टाभ्यां नमः। यजामहे तर्जनीभ्यां स्वाहा। सुगन्धि पुष्टिवर्डेनं मध्यमाभ्यां वषट्। उर्वोक्त्वमिव बन्धनात् अनामि-काभ्यां हं। मृत्योर्म् चीय कनिष्ठाभ्यां वीषट्। मासतात् करतत्त-पृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। नाम्बनं हृदयाय नमः। यजा-महे शिरसे खाहा। सुगिन्धं पुष्टिवर्डनं शिखायै वषट्। उर्वास-कमिव बन्धनात् कवचाय हुं। सृत्योर्भुचीय नेत्रत्रयाय वीषट्। मास्तात् अस्ताय फट्"। फड़ित्युईाईतालत्रयं दत्त्वा कोटि-काभिर्दश्दिशो बभीयात्। अय मलवर्णनामः। — "चंत्र पूर्वमुखे। म्बं पश्चिमसुखे। कं याम्यसुखे। यं उत्तरसुखे। जां वचिस। मंगले। हें जड्वीमुखे। सुंनाभी। गं हृदि। स्थिं पृष्ठे। पुं कुची। ष्टिं लिङ्गे। वं वायी। इं दचीरुमूले। नं वामीर-मूले। उंदचीरुपान्ते। वीं वामीरुपान्ते। रुं जचजानुनि।

कं वामजानुनि । सिं दचगुल्फे । वं वामगुल्फे । वं दचस्तने । स्यं वामस्तने । नां दचिणपार्खे । स्यं वामपार्खे । त्यों दच-पारे । भुं वामपारे । चीं दचहस्ते । यं वामहस्ते । मां दचिणनासायाम् । स्यं वामनासायाम् । तां शोर्षे । त्रास्वकं शिरिस । यजामहे भूयुगले । सुगन्धिं श्रचियुगले । पुष्टिं वक्ते । वर्डनं गण्डयुगले । उर्वाहक हृदये । सिव जठरे । वन्धनात् गृह्ये । सत्यो उहदये । भृचीय जानुदये । सास्तात् पादयोः" । इति विनस धार्ये ॥

हस्ताभ्यां कलसदयास्तरसैराष्ट्रावयन्तं ग्रिरो दाभ्यां तौ दधतं स्गाचवनये द्वाभ्यां वहन्तं परम्। श्रङ्गन्यस्तकरदयास्तघटं कैलासकान्तं ग्रिवं खच्छाभोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

एवं ध्यात्वा शिवलिङ्गं संस्थाप्यावाद्य षोड़शोपचारैराराध्य सङ्गानि पूजयेत्।—"श्री सर्कमूर्त्तये नमः; एवं दन्दुमूर्त्तये; वसुधामूर्त्तये; तोयमूर्त्तये; विद्यामूर्त्तये; सामाये द्रामाये द्रामाये प्रभाये च्योत्साये पूर्णाये उमाये पूषाये स्वधाये विखाये विद्याये सिताये सहाये साराये सन्ध्याये शिवाये निशाये स्वाये प्रज्ञाये मेधाये कान्त्ये काल्ये छत्ये मत्ये उमाये पावन्ये पद्माये शान्ताये मेधाये ज्याये समलाये" सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्।

एवं—"श्रों इन्द्राय वजहस्ताय नमः। श्रों श्रग्नये शिक्त-हस्ताय नमः। श्रों यमाय दण्डहस्ताय नमः। श्रों निऋं-तये खड़हस्ताय नमः। श्रों वक्षाय पाशहस्ताय नमः। श्रों वायवे ध्वजहस्ताय नमः। श्रों सोमाय गदाहस्ताय नमः। श्री ईशानाय शूलहस्ताय नमः। (ऊर्ड्ड) श्रों ब्रह्मणे पद्महस्ताय नमः। (ग्रधः) ग्रीं ग्रनन्ताय चक्रहस्ताय नमः"। एवं पूजियत्वा समापयेत्॥

एवं क्रते प्रयोगार्ही जायतेऽसी महामनुः।

ततः स्तुत्वा वामहस्तेन अखत्यमूनं संस्थ्य "श्री तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्" दित गायन्नी यथाशिक जम्रा ऋषादिकं स्मृत्वा यथाशिमलितं सूल-मन्त्रं सहस्रं अयुतं लच्चं वा जपेत्। ततीश्र्यं जलेन "श्री गृह्याति" दत्यादिना जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणमेत्। तती विस्रज्य दिचणां दत्त्वा शान्त्याशीर्वादच कत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्। व्याच—शनैश्वरदिनेश्वत्थसमूनं संस्थ्यस्य संजपेत्।

साचान्मृत्योविमुच्येत ितं पुनस्वपसत्युतः ?॥
साला सहसं प्रजपेदादित्याभिमुखो मनुम्।
ग्राधिव्याधिविनिर्मृत्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥
प्रत्यहं जुहुयान्मन्तो दूर्वया त्र्युताविध।
ग्रामयान्निखिलान् जिला दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥
वटव्रचस्य समिधो जुहुयादयुताविध।
धनधान्यसस्दः स्यादिचिरणैव साधकः॥ १४॥

#### भय सतसञ्जीवनी।

श्रादी प्रासादवीजं तदनुष्टतिहरं तारकं व्याहृतीश्व प्रीचार्थ्य त्रास्वकं यो जपित च सततं सम्प्टं चानुलोमम्। सिध्येयुः तस्य सम्यक् स्वहृदयनिहिताः कामनाः शुहसत्त्वाः देहं सन्यज्यसिदः हरिहरसहितं स्थाणुलोकं प्रयाति॥

मनन्-"हों श्रों जुंसः श्रों भूभुंवः स्वः त्राय्वकं यजामहे। सुगन्धिं पृष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकिमव बन्धनान्मृत्योर्भुचीयमा-सृतात् हों श्रों जुंसः"। व — वेदादिभूरादिपदत्रयञ्च मध्ये जपेनमृत्यु इरं त्रियम्बम् ॥ । जपेत् फलार्थी विधिवत्रजाय प्रासादमृत्युञ्जयसम्पुटेन ॥ मनल् — "ग्रीं भूर्भुवः स्वः ग्रीं जुंसः त्राय्वकिमत्यादि हीं ग्रीं सः" ॥ १५॥

श्रथ ग्रक्रीपासितस्तसञ्जीवनी विद्या।

गायती प्रथमं पादं त्रास्वनपादैनम्। गायती दितीयपादं स्वनितीयं पादम्। गायती त्वतीयपादं त्रास्वनशिषपादम्।

मनी यथा—"श्रीं तत्सवितुर्वरेखं त्रास्वनं यजामहे भर्गी देवस्य

प्रहि सुगन्धिं पुष्टिवर्डनं धियो यो नः प्रचोदयात् उर्वास्तन
व वन्धनान्मृत्योर्मुचीयमास्तात्"॥ १६॥

अय अन्यप्रकारस्तसञ्जीवनीविद्या।

"ग्रीं जं सः मां जीवय पालय"।

तथाच कल्पस्त्रे—प्रणवकाष्टमं सदचत्रुतिबिन्द्भ्रगु घोड्ग्र-स्मापदाज्जीवय पालयेतिदशार्णी सत्योरपि सत्युरेषा विद्या।

"स्रच्छं स्रच्छारिवन्दस्थितमुभयकरे मंस्थिती पूर्णकुम्भी दाभ्यामेणात्तमाले निजकरकमले दी घटी नित्यपूर्णी। दाभ्यां ती च यवन्ती शिरिस ग्रिकला चास्तै: प्लावयन्तम् देहं देवो दधानो विदिशतु विश्रदां कल्पकालं यियं नः"॥ एवं ध्यात्वा कल्पितसूर्त्तीवावाद्य "श्रीं त्रास्वकाय महा-

श्रय मृत्यु झयप्रयोगः।—

तत्र प्रथमं स्वस्तिवाचनपूर्वेकं सङ्गल्पं कुर्यात्। यथा— प्रदोत्यादि त्रमुकगोत्रस्य श्रीत्रमुकदेवग्रमेणो जीववच्छरीरा-

वियम्बिस्यव वाम्वकम् इति बीद्वयम्।

विरोधेन भटिति उत्पन्नरोगोपशमनकामनया त्राचरस् ज्ञयमन्त्रलचत्रयजपमहं करिष्यामि"। ततो भूतापसार् सनादिशोधनं भूतशुडिप्राणायामं कत्वा ऋषादिन्यामं कुर्या "शिरिस कहोलऋषये नमः। मुखे गायचोच्छन्दसे नम् हृदि सृत्युज्ञयाय देवताये नमः"। वतः कराङ्गन्यासौ। "सां श्र ष्ठाभ्यां नमः" द्रत्यादि। एवं "सां हृद्याय नमः" द्रत्यावि तती ध्यानम्।—

"चन्द्राकाग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्यान्तःस्थितम् मुद्रापायसगाचस्त्रविलसत्पाणिं हिमांग्रप्रभम् । कोटोरेन्दुगलत्सुधाझ्ततनुं हारादिभूषोज्ज्वलम् कान्त्या विश्वविमोहनं पग्रपतिं सत्युञ्जयं भावये"॥

एवं ध्यात्वा खिश्रिरिस पुष्पं दत्त्वा मानसपूजां क्रत्वा वि षार्घ्यं स्थापनं ग्रैवोक्तपोठपूजान्तं विधाय पुनर्ध्यात्वा आवा यथाशक्त्युपचारै: सम्पूज्य आवरणदेवता: पूजयेत्। "सां हृदय नमः" इत्यादि षड़क्तं सम्पूज्य इन्द्रादीन् वजादीं य पूजयेत् ततो जपेत्। मन्तु — "श्रीं जुं सः"। अस्य पुरश्वरणं लज्जजपः ततस्तह्शांशक्रमेण होमादिकं कुर्थ्यात्। होमद्रयन् —

> "गुण्बचं जपेमान्तं तह्यांग्रं विशालघी:। जुहुयादसृताखण्डै: \* ग्रुहुरुधाच्यमित्रितै:"॥ १८

जुहुयादस्ताखण्डः \* ग्रुहदुग्धाज्यामात्रतः "॥ १८ अय ग्रुहरागप्रतिकारः ।—"ग्रोमदोत्यादि ग्रमुकगोत्रस्य श्रीत्रमुद्देवग्रमणः श्रूलरोगप्रतिकारकामनया 'ग्रीं मोढुष्टम' इत्या "पिनाकं विभ्रदागिह्न" इत्यन्तं मन्त्रं "सहस्रम् श्रयुतं लच्चं जपमहं करिष्यामि" इति सङ्गल्या श्रिवलिङ्गे त्रास्वकविधाने सम्पूज्य इमं मन्त्रं जपेत्।—"श्रीं मोढुष्टम शिवतम शिवी ।

<sup>\*</sup> असता—गुडुचीति यस प्रसिद्धिः।

सुमना भव। परमे वृत्त श्रायुधं निधाय क्वत्तिं वसान श्राचर पिनाकं विश्वदागह्ति" ( য়ৢ৽ य॰ ऋक् १६।५१)। इति जक्षा इचिषां कुर्यात्॥ १८॥

त्रथ गर्भजननीपाय:। "श्रीं मुक्ताः पाशा विपाशास मुक्ताः स्र्योण रक्ष्मयः। मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एद्योहि मारीच मारीच स्राह्मः। श्रानेन मन्त्रोण जलमष्टवारमभिमन्त्रा गर्भिष्यै देयम्। तदा सुखप्रसवी भवति। मन्त्रान्तरम्।—"श्रीं मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुच्च मुच्च स्राह्मः"। एवं जपनात् सुखप्रसवी भवति॥ २०॥

चय निगड़भड़नम्। "श्रीं नमः सु ते निक्ट ते तिगमतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमितम्। यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके चिधिरोहयेनम्" (ग्र॰ य॰ ऋक् १२।६३)। अस्य निगड़भञ्जन-मन्त्रस्य प्रजापतिक्ट विनिक्ट तिर्देवता चिष्टुप्छन्दो बन्धनादि-व्यसनपरिहारार्धे विनियोगः। निगड़बन्धनोपरुहो व्यसन-पतितो वा अयुतजपेन व्यस्नामुच्यते, निगड़ादिस्वलनञ्च भवति।

"श्रीं उच्छुषा श्रोषधीनां गावी गोष्ठादिवेरते।

धनं सनिष्यन्ती नामात्मानं तव पूरुष"(ग्र॰य॰ऋक्१२।८२)। वन्धनस्थो जपेदयुतं तदा मुक्तो भवति॥ २१॥

भवान्यप्रकारिनगड्भक्षनम्। "श्रीं श्रद्योत्यादि श्रमुकागोत्रस्य भटिति निगड्भक्षनकामनया 'श्रीं क्लीं निगड्भक्षनि महामाये! ईं' एतन्मन्त्वमद्यारभ्य निशायामष्टोत्तरसहस्रजपमहं करिष्यामि" इति सङ्कल्पा प्रत्यहं निशायां एतन्मन्तं जपेत्ततो निगड्भक्षनं भवति॥ २२॥

अय दृष्टिकरणम्।

श्रीं पुष्करावर्त्तकौर्मेघै: प्लावयन्तं वसुन्धराम्।

विद्युद्गर्जितसन्नद्वतोयात्मानं नमास्यहम्॥
यस्य केग्रेषु जीमूतो नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुचौ समुद्राश्ववारस्तसौ तोयात्मने नमः॥

इति ध्यात्वा श्रावाद्य वरुणसुपचारैः पूजियत्वा सृलमन्त्रं जपेत्। प्रजापितऋ विस्तिष्ट्रप्कन्दो वरुणो देवता एतद्राज्यः मभित्याप्य सुदृष्ट्यर्थं जपे विनियोगः। मनस्—वं गुरुसुखाज्ज्ञेयः।

नाभिमात्रजले स्थित्वा जपेनान्तं प्रसन्नधीः। जपेत् वसुसहस्रञ्च त्रिदिनं व्याप्य यंत्रतः॥ अथवा—षट्सहस्रं जपेनान्तं तदा व्रष्टिभेवेद् ध्रुवम्॥ २३॥

> भय शीर्वादिरीगनिवारणम्। तत्र श्रायर्वणीक्तमन्ताः।-शीर्षामयं शीर्षशिक्तां कर्णशूलं तृतीयकम्। सर्वशीर्षाखन्तरे तं वहिर्निर्मन्त्रयामहे॥१॥ कुर्पाखन्ते कङ्ग्रेभ्यः शक्तिवश्यं विलोहितम्। सर्वशीर्षाखन्तरे तं वहिर्निमन्त्रयामहै॥२॥ यातं प्रमदबस्ब क्षणोति पुरुषश्च यः। सर्वशीर्षाण्यन्तरे तं विहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ३ ॥ यस्य होतोः प्रचावते यद्मा नासात श्रास्यतः। सर्वशीर्षाखन्तरे तं वहिनिर्मन्त्रयामहे॥ ४॥ शीषेरोगमङ्गरोगं विम्बाज्ञानं विसर्पेकम्। सर्वशीर्षाखन्तरे तं वहिर्निर्मन्वयासहे ॥ ५ ॥ यस्य भीमप्रतीकाशं तद्दपयन्ति पृरुषाः। तलं शीतकवातञ्च वहिनिर्भन्त्रयामहे॥ ६॥ जातकेऽनुपसर्गीभूतेऽचेति गवीनिके। वेलासमन्तरङ्गेभ्यो वहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ ७॥ यदि कामातुरः कामं ऋदयार्थतयोपरि । हृदो बलासमङ्ग्रेभ्यो वहिनिर्मन्त्रयामहे॥ ८॥

त्रासी वलासी भवतु स्त्रे भवतु चामयम्। यस्मादीनां हि सर्वेषां सहन्तु च निग्ने विषम्॥ ८॥

इत्यायर्वेषीक्तसर्वेरागप्रतीकारः।

द्रति श्रीक्रणविद्यावागीशभद्याचार्यकतायां षट्कसंदीपिकायां नानाप्रकारशान्तिनियमहतीयीद्देश:।

# अय वशीकरणम्।

श्रय वच्चामि मन्ताभ्यां वशीकरणमुत्तमम्। येन विज्ञानमात्रेण वशीक्त्रयात्ररं स्तियम॥ क्रताञ्चलि: शिखिशिखा विभीता गिरिकणिका। चाण्डालीमहिताः पिष्टा पट्टे चीरपरिप्नता ॥ तेन संलिप्य पङ्गेन पदृवस्त्रस्य वर्त्तिकाम। कारियत्वान्नसूत्रेण पूर्णगर्भा सुरचिताम ॥ एकवर्णागवीदुग्धक्तताज्यदीपपूरितम्। कज्जलं ऋजुके कार्थ्यं कज्जलं नरसङ्ग्ले॥ सम्पुच्य भैरवं देवं चतुर्द्ध्यां निशागमे। कज्जलं पातितं याद्यं तेन वश्यं जगद्भवेत ॥ नरञ्च वनिताञ्चैव यमिच्छति नरोत्तमम । श्रतः परतरं वध्यं न भृतं न भविष्यति॥ भाषितं भैरवे तन्त्रे गोपनीयं प्रयत्नतः। क्रारे च चुम्बके \* दुष्टे निन्दके चपलेष्वपि। अस्य वश्यप्रभावं हि वर्णितं न च शकाते॥ देवदेवेन देवेभ्यो वशीकरणमुत्तमम्। एतर् योगप्रभावेण ब्रह्माद्या मुनयः सुराः॥१॥

चुम्बने इति पर्दन तत्त्वचुम्बिनि इठकामुके इति वा निष्कर्षार्थः।

अन्यां वच्चे महाविद्यां मोहिनीं वश्यकारिणीम। यस्याः प्रभावमात्रेण वशीक्तर्याज्ञनं नरः॥ तारं प्रथममुड्ख मायावीजमनन्तरम्। मोहिनीपदमादाय ग्रैषे पावकवन्नभाम्॥ ज्ञाला मन्त्रिममं मन्त्री मन्त्रं पठित सिंडिदम। श्रनेन मन्त्रराजेन संस्पृथ्य जापितं यदा॥ दीयते च जलं पुष्पं दुकूलमुत्तमं फलम्। अष्टोत्तरमतं जक्षा पाणी येषां प्रदीयते। ते सर्वे वशमायान्ति नाच कार्या विचारणा॥ २॥ तारं चिटिइयं \* पश्चाचाग्डालीं तदनन्तरम्। महापदाभ्यां तां ब्र्यादमुकं मे ततःपरम्॥ वश्मानय ठइन्हं चिठिमन्त उदाहृत:। सप्तिर्दिवसैर्भपान् वश्यीदिधिनाऽसुना ॥ विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनामविगर्भितम्। निचिष्य चीरसंमिश्रे जले तत् काययेत्रिशि । वश्यो भवति साध्यस्तु नाव कार्या विचारणा॥ ३। तालपत्रे लिखिलैनं भद्रकालीग्रहे खनेत। वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगीऽयमुदाञ्चतः ॥ ४ ॥ मूर्धिभाले कामकलां जपतो बिन्द्धारणात्। योनिसुद्राप्रयोगेण करोति वश्गं जगत्॥ ५॥ रेफहुङ्कारयोर्मध्ये सर्वलोकं ततःपरम्। वग्रमानय ठइन्हं जपन् सम्पज्य साधकः ॥ ६॥ राजमुखि पदाद्राजाभिमुखि वश्यपूर्विके 🕆 !

 <sup>&</sup>quot;श्रीं चिटि चिटि चाण्डाली महाचाण्डाली अप्तुकं में बग्रमानय ठः ।
 स्वाहा" इति मन्तः।

<sup>†</sup> वश्यपूर्विके इति स्थाने मन्त्रयीजनायां वश्यमुखि ! इति पठनीयम् ।

तत्र भुवनेशानी-श्रीकामान् देवि देवि ! च । तदन्ते च महादेवि ! पदं पदमतः परम् ॥ देवाधिदेवि ! सर्वस्य \* मुखं वश्यं कुरु हिठः । प्रणवादिरयं मन्तः श्रीवश्यसम्पदावहः ॥

"श्रों राजमुखि राजाभिमुखि वश्यमुखि ! क्रीं श्रों क्रीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि ! सर्वजनस्य मुखं वश्यं कुरु ठः ठः स्वाहा"।

मायाह्रदोरथान्ते च ब्रह्म श्रीराजिते ततः।

प्रोक्का राजाञ्चितेऽर्णान् वै जये च विजये तथा।

गीरि गान्धारि त्रिभुवनवग्रङ्करि वै ततः॥

ततः परं प्रयोक्तव्यं सर्वजीकवग्रङ्करि!।

ततः प्रयोजयेस्वर्वस्त्रीपुरुषवग्रङ्करि!॥

वीप्यया योजनीयानि सुदुर्घीराच्चराणि वै।

मायाद्विठान्तकः प्रोक्त एकषष्ट्यर्णको मनुः॥

मली यथा—" इतीं नमी ब्रह्म सीराजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवश्रङ्गरि सर्वे लोकवशङ्गरि सर्वस्ती-पुरुषवशङ्करि! सुदुर्घीर सुदुर्घीर इतीं स्वाहा ठः ठः"। अयुतं प्रजपेत्।

जुड्याद्ष्टतसंप्रत्तैः पायसभागैर्दशांशकैर्विहितैः।
ग्राराधयेत्तदङ्गैः दिशीऽधिपैर्माटिभित्र निशितमनाः।
तिलतण्डुलकैर्लोमैः खादुयुतैः सत् फलैश्व मधुरतरैः॥
ग्राज्येररणकुवलयैः तिदिनं हवनं वशङ्करीं विद्याम्।
नित्यं सूर्थगतां तां देवीं प्रतिपद्य तन्मुखो जपति॥
ग्रष्टोत्तरशतसंख्यां सर्वमकस्मादशीकरोत्यचिरात्।
वर्णादर्वाञ्चकी यथानिगदितं प्रयोजयेत विधिम्॥
साध्यान्न कर्मयुक्तं प्रजपेदा मन्त्रकं सुहवनविधी।

सर्वस दित स्थाने मलयोजनायां सर्वजनस्य इति पठनीयम्।

वाञ्छितसिडिविधाता गिरिवरकन्ये ! तदा मन्तः ॥ ऋषिरस्थस्या योनिः प्राह्मट्कन्दोऽस्ति देवता गौरी । स चतुर्दश्माः दश्माः स्थाभाः सादरं ततोऽष्टाभाः ॥ दश्मिस्वैकादश्माः क्रमशः संयोजितैः सुमन्त्रिवरैः । मन्त्राचरैस ग्रुचिभाः सुषड्ङ्गविधः समुच्यते क्रमशः ॥

ध्यानम्

अमलग्रिविराजनीलिराबडपागा-ङ्ग्यर्शचरकराजा बस्यजीवार्णाङ्गी। श्रमरनिकरवन्या त्रीच्रणा शीणवर्णा-उंग्रुककुसुमयुता स्यात् सम्पदे पार्वती वः॥ ७॥ मद मद पदमादी मादयिति दिवारम् तदन च पठनीयं ज्ञींपदं तत्र पश्चात। वशय पद्युता स्थात् नामरूपादिसंज्ञा भवति मदनमन्तः खाह्या संयुतोऽयम्॥ कनकरचितमूर्त्तः कुर्इलाक्षष्टचापो युवतिच्चदयमध्ये निश्चलारोपिताचः। इति मनसि मनोजं चिन्तयन् यो जपस्थो वश्यति स समस्तं भूतलं मन्वसिडः ॥ श्तश्तपरिजापात् स्थादयं सिंबिदाता दश्शतक्षसमानां लोहितानाञ्च दानात्। इइ तु सकलकार्यं वामहस्तेन क्रयात उपदिश्रति समस्तं ज्योतिरीशः समन्तात्॥

भव मनः:—"मद मद मादय मादय क्रीं वशय अमुकं स्वाहा"॥८॥

तथा मन्तः।

चामुण्डे प्रथमं जयिति कथितं सम्बीधने मोहय ज्ञातव्यं वशमानयेत्यपि पदं साध्यं दितीयान्वितम्। खाहान्तं प्रणवादिरेष कथितैस्तत्त्वैर्महामोहनः सन्मन्तः कविराजसेवितपदो नास्नाहितीयोत्तरः॥

ध्यानम् ।

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटा सुवदना सान्द्रान्धकारे स्थिता खट्टाङ्गासिनिगृढ़दिचिणकरा वामेन पाग्रं शिरः। श्यामा पिङ्कुलमूर्डजा भयकरी शार्दूलचर्मावता चामुण्डा ग्रववाहिनी जपविधी धेया सदा साधकैः॥ ध्यात्वा तां मुक्तकेशीं हरिहरविधिभः स्वर्चितां विश्ववन्याम् पद्यादस्या विभूतीरतुलितविभवाः चिन्तयन्मन्त्रमुख्यम्। लच्चं जष्वा दशांग्रं ग्रकतक्जुसुमैर्विक्नमध्ये च होमः साध्वेवं पूजितास्वा स्ववहितविधिना सर्विसिंहं ददाति॥ श्वन मनः।—"श्रीं चामुण्डे जय चामुण्डे मोह्य वशमानय श्रमुकं स्वाहा"॥ ८॥

"श्रीं नमः कामाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वालय प्रज्वालय सर्वजनस्य हृदयं मम वर्ष कुरु कुरु स्वाहा"।

एतनान्वजपादेव वशी भवति मानवः॥ १०॥

"श्रों नमो भगवित स्चिचाण्डालिनि ! नमः स्वाहा"। एतन्मन्तेण मधूच्छिष्टस्य पुत्तलिकां क्रताञ्चलिं क्रतयुग्मपादाम् श्रङ्गप्रत्यङ्गमहितां क्रता तत्र साध्यस्य प्राणप्रतिष्ठां क्रता एतन्मन्तं जपन् श्रङ्गारेषु पुत्तलिकां प्रतापयेत्। ततः साध्यो वस्यो भविति ॥ ११ ॥

> द्गति यौक्त चानन्दिविद्यावागीशभद्दाचार्यकतायां षट्कर्मदीपिकायां शालिकत्ये वस्त्रकर्म चतुर्थोद्देश:।

### अय स्तक्षनम्।

प्रभो । त्वं भैरवश्रेष्ठः सर्वमन्त्रार्थजीवकः। यीदेव्युवाच। नानारहस्यसार्च लहते न शृणोम्यहम ॥ दिव्यतन्त्रं महातन्त्रं पूर्वपश्चिमसंज्ञकम्। दिचणोत्तरमूर्ड्य उपायाः कथिताः प्रभो !॥ वध्याकर्षणदिव्यञ्च मारणोचाटनादिकम्। विदेषं मोहनं चान्यं विविधं कामनादिकम् ॥ विस्तारं कथितं पूर्वं ज्ञातव्यं सर्वसंज्ञया। इटानीं स्तभानं देव ! क्ययस्व प्रसादतः। क्ययस्व सरश्रेष्ठ । यदाहं तव वन्नभा ॥ १ ॥ यीभैरव उवाच । साधु साधु त्वया प्रान्ते । सर्वमन्द्रार्थसाधिके । । न कस्यचिनाया खातं ऋणु सुन्दरि ! यत्नतः ॥ गुच्चाद् गुच्चतरं देवि ! स्नेहात्ते प्रकटीक्षतम् । ययातः सम्पवच्यामि सृश चैकाग्रमानसा । विद्या या परमा गुप्ता महास्त्रभनकृषिणी॥ २॥ योङ्गारं पूर्वमुचार्थ स्थिरमायामयोचरित्। संखोधनपदं चोत्ता ततः श्रीवगलामुखि !॥ तद्ये सर्वदृष्टानां ततो वाचं मुखं पदम्। स्तम्भयिति पदं पञ्चात् की लयिति पदद्वयम् ॥ बुद्धिं विनाशय पश्चात स्थिरमायां पुनर्लिखेत । लिखेच पुनरोङ्कारं खाहेति पदमुत्तमम ॥ षट्चिंग्रदचरा विद्या देवानामपि दुर्लभा। वक्किहीनेन्द्रयुद्धाया स्थिरमाया प्रकीर्त्तता॥ गजस्य च रथानाञ्च दिजानां शीघ्रचेतसाम। स्तिभाताञ्च महावाचां वृहस्पतिमुखोद्गताम् ॥

महापर्वतहचाणां सरितां सागरस्य च। स्तभायेत्तानि दिव्यानि मानुषेषु च का कथा ?॥ वैलोकामोहिनी विद्या तस्याय वगलामुखी। शृणु देवि । प्रवच्यामि विविधं कामनागतम् । न्यासं ध्यानं जपं होमं मन्त्रमेव पृयक् पृथक् ॥ ३ ॥ ग्रङ्गन्यासं प्रवच्यामि कराङ्गविधिपूर्वेकम्। ग्रों स्थिरमायाञ्च हृदये मूर्धि श्रीवगलामुखि॥ शिखायां सर्वेदुष्टानां वाचं मुख्च स्तम्भय। कवचे कीलयद्दन्दं नेचे वुद्धं विनाशय॥ ह्वीं श्रीं खाहा तथा चास्त्रे षड्ङ्गविधिरीरितः। युग्मकालेषु सप्तर्तुदशार्षेश्व मनूद्भवै:॥ करणाखासु तलयोः कराङ्गन्यासमाचरेत्। नारायण ऋषिर्मू भि तिष्टुप्कन्दस्त तसु से॥ यीवगलामुखीं देवीं हृदये विन्यसेत्ततः। क्लीं वीजं गुह्यदेशे तु खाहा शित्रय पादयो: ॥ दृष्टार्थे विनियोगसु ऋषादिन्यास एव च। मूर्भि भाले हशी: श्रुत्योर्ग ख्योर्न सयी: पुन: ॥ श्रोष्ठयोर्म्खगण्डे च दिचणांश च कूर्परे। तयैव मणिबन्धे च तया चाङ्गुलिमूलके॥ गलमूले स्तने दचे स्तने वामे तथा हृदि। नाभी कट्यां गुद्धदेशे वामांशे कूर्परे तथा॥ मणिवन्धेऽङ्गुलीमूले विन्यसेत्तु समाहित:। दचोरुमूले जानी च गुल्फे चाङ्गिलमूलके ॥ मूलमन्बाचरैर्विद्वान् विन्यसेत् क्रमयोगतः। एवं न्यासविधिं कत्वा ततो ध्यानं ऋणु प्रिये ! ॥ ४ ॥ यानम्। गस्भीराच्च मदोन्मत्तां खर्णकान्तिसमप्रभाम्।

चतुर्भेजां विनयनां कमलासनसंस्थिताम्॥ मुद्गरं दिच्णे पाशं वामे जिह्वाञ्च वजनम्। पीताम्बरधरां देवीं दृढ़पीनपयोधराम्॥ हेमकुण्डलभूषाञ्च यीतचन्द्राईशेखराम्। पीतभूषणभूषाञ्च खर्णसिंहासने स्थिताम्॥ एवं ध्याला तु देवेशीं शतुस्तमानकारिणीम्। महाविद्यां महामायां साधकस्य फलप्रदाम्। यस्याः सारणमात्रेण तैलोकां स्तभायेत च्णात ॥ ५॥ साधनं सम्प्रवच्यामि साधकानां हिताय वै। सर्वं पीतोपचारेण पीतास्वरधरो नरः॥ जपमालाञ्च देविशि ! हरिद्रायन्यिसम्भवाम् । पीतासनसमारूढः पीतध्यानपरायणः॥ पीतपुष्पार्चनं नित्यमयुतं जपमाचरेत्। दशांशैय कतो होमः पीतद्रवीः सुशोभनैः॥ संज्ञामुचारयेलाध्यं स्तभनच महाऽइतम्। गृणु प्राज्ञे ! महागुद्धं प्रकटीकृतसाधनम्। एकान्ते निर्जने स्थाने शुची देशे गरहे पुरे ॥ ६ ॥

श्रय कर्मविशेषे कुर्छलच्यम ।

कुण्डं सुबच्चणं क्वत्वा मेखबात्रयशोभितम्। योनिव्चत्तं तिमात्नैः स्थात् तत्र होमन्तु साधयेत्॥ श्राकर्षणे तिकोणं स्थात् वस्ये तु चतुरस्रकम्। तथैवोचाटने प्रोक्षं षट्कोणं मारणे स्मृतम्॥०॥

भय भासनभेदा:।

वश्चे मेषासनं प्रोक्तं कर्षणे व्याघ्रचर्मणि । शान्ती सगासनं प्रोक्तं गोचर्म स्तम्भने स्मृतम् ॥ उष्ट्रासनं तथोचाटे विदेषे तुरगासनम् । मारणे महिषीचर्म मोच्चचैव गजाजिने। नानाविधानि ते देवि ! क्रमाद्रव्यं समाचरेत्॥ ८॥

त्रय कर्मविशेषे यज्ञीयसामगी।

मधुलाजतिलाज्येन वश्यलाभानि साधयेत्। त्राकर्षणे तथा लोधं सतिलं मधुरान्वितम्॥ निम्बपत्रञ्च तैलाक्तं विदेषणकरं परम्। हरितालं हरिद्राञ्च लवणेन च संयुताम ॥ स्तभये चैव देवेशि ! प्रजाचैव गतिं मतिम्। वाजिनायस्य सारेण रुधिरेणैव होमयेत्॥ मारणे तु रिपोर्देवि ! श्मशानाग्नी इनेनिशि । चुट्राणां काकपचाणां ग्टइध्मेन संयुताम् ॥ लाजां विमधुसंयुक्तां सर्वरोगप्रशान्तये॥ ८॥ लचमेकं जपेकान्त्री ब्रह्मचारी दृढ्वतः। पर्वताग्रे महारखे सिडिग्रैवालये ग्रहे॥ सङ्गमे च महानद्याः साधकः साधयेत् स्वयम् ॥ १०॥ खेतव्रह्मतरोर्म्ले पादुकाचैव रञ्जयेत्। श्रलताकेन रागेण रिञ्जता नवमुद्रया॥ षट् चिंग्रदच्रा विद्या लचैकेन च मन्त्रिता। ग्रतयोजनमात्रन्तु मनिश्चन्तितमागता ॥ ११ ॥ रसं मनःशिलां तैलं माचिकेण समन्वितम्। इति मन्त्रं लच्चमेकां सर्वाङ्गे लेपनं क्षतम ॥ श्रदृष्यकारकं देवि ! लोके च महदद्गतम् ॥ १२ ॥ एकवर्णगवाञ्चेव धारी णां चीरमाहरेत। शर्करामधुसंयुत्तं विश्तिर्मन्वितं प्रिये !। पीला च हरते शीघ्रं विषं स्थावरजङ्गमम ॥ १३ ॥ दारिद्रामीचनं देवि ! लच्चमेकं जपेनरः ।

दशांग्रेन क्वतो होमो द्रव्येरीभर्घृतप्लतेः॥ लच्मीयुक्तो भवेद्देवि ! दारिद्रंग्र नाग्रयेद् ध्रुवम्॥ १४॥

अय अन्यप्रकारसम्भनम्।

ग्रयान्यं सम्प्रवच्यामि कामना मन्त्रिकोपरि। पत्ने वाष्यय पाषाणे संज्ञानाम तु कारयेत्॥ याद्यन्ते स्थिरमायाञ्च हरिद्रातालके विषेत्। गर्भस्तभाकरीं देवीं चमत्कारकरीं पराम्॥ भूजीपत्रे समालिख्य तालोन्मत्तरसैनिशि ! षट् कोणमध्यमालिख्य विद्यां वलयतो लिखेत्॥ मध्ये संज्ञाञ्च देवेशि ! पीतस्त्रेण वेष्टयेत्। चक्रं भाग्यत्कुलालस्य विपरीतच सत्तिकाम्॥ तनाध्ये विलिखेदीजं तिवलीकारतः प्रिये ।। षष्ठान्तं साध्यनामाणं मुखं स्तम्भय चोच्यते ॥ वाह्ये वेद्य महावीजं चतुःसाध्याख्यमालिखेत्। साध्यनामाच्रं देवि ! ग्रभिमन्त्रा च विद्यया ॥ षष्ठान्तं चोचरित् साध्यं ससम्बोधनदैवतम्। मा सुप्तेति पदं पञ्चात् वदेदास्त्रेडितान्तरम्॥ पीतोपचारैः सम्पूज्य मुखस्तभनमीरितम् ॥ १ ॥ एतनान्तं वरारोहे ! श्मशानाङ्गारके लिखेत । भेकस्य वदने चिम्ना पीतस्त्रेण वेष्टयेत्॥ भूमिष्ठं मण्डलं क्षता पीतपुष्पैः समर्चयेत्। उचारयेत् सर्वमन्त्रपदमुचार्यः चालय ॥ वासपादेन सम्पूर्णां कुलालस्य च सित्तकाम्। पूरकस्य प्रयोगेण प्रयोगं प्रतिपद्यते॥ २॥ यन्योऽन्यं लिखितत्वेन क्षतीनदं समन्ततः। वामदिचिणसम्बन्धात् दी दी पादी प्रकल्पयेत्॥

नाम साध्यस्य च गतं गतिञ्च स्तभायेति च। पूर्ववत् पदमालिख्य पाषाणस्य च पद्दते॥ पूर्ववत् समाखीकत्य पीतस्त्रेण वेष्टयेत्। श्यां पातालसंस्थाञ्च खनेत् खातं प्रयत्नतुः॥ वामहस्ते न्यसेत् खातं पीतपुष्पेण पूजयेत्। महदायर्थजनकं गतिस्तभानम्त्रमम्॥३॥ श्मशानिऽक परियाद्यं श्मशानाङ्गारमाहरेत्। मायावीजं त्रिधा लिख्य साध्यसंज्ञाञ्च मध्यतः॥ पिपमध्ये च ललना सा च विवलयालिका। वामहस्ते खनेत् खातं खपरेश्व अधोमुखम्। पूरयेद्वामपादेन पुरुषः सः तथोपरि । स्तमानचैव देवेशि ! रिपूणां मुखबन्धनम् ॥ ४ ॥ ताडुङ्गपत्रमादाय लिखेत् साध्यं खनामत:। भाद्यन्ते विलिखेदीजं त्रिविधोचारकं लिखेत्॥ वामहस्ते पुरङ्गत्वा करपीड़ितकण्टकान्। सप्तसंख्यकण्टकानि भित्त्वा चैकं प्रटीक्ततम ॥ पृथग्विधं समुचार्य नाम साध्यच साधकः। भाग्डमध्ये चिपेत्तञ्च सीवीरेण च पूजयेत्॥ गतिमत्योः स्तम्भकरं प्रयोगं प्रत्ययाव हम्। दिव्यस्तभकरी देवी नानागुणस्दीरितम्॥ वकीत्या क्ययिष्यामि ऋणु तत् प्रियमुत्तमम्। यत स्थाने भवेहिव्यं देवालयग्रहोऽपि वा। तत्रस्यां विलिखेदियां साधकात् साध्यनामतः॥ ५॥ अटरूपस्य पत्नेण परिमार्थ्य तथोपरि। स्तभयेत् सप्तदिव्यानि क्तवा दोषविग्रुडये॥ उत्तरावार्णोमूलं सप्त विद्याऽभिमन्वितम्।

महाक्तत्यादिदोषस्य क्ततिद्यो विग्रुडये॥ श्रयवा दीपमार्गे च रात्री क्रत्वा तु मण्डलम्। भूजीपत्रे समालिख्य पूर्वीत्तद्रव्यमेव च॥ दीपं प्रज्वालयेद् यतात् कपिलाज्येन पूरितम्। तावहीपो दहन् दोषं खयं दग्ध्वा प्रशास्यति॥ समयाय साधकाय पुचिकां कुशिकां घटम्। कन्याभियोगिनीनान्त यथाशक्ति च तर्पयेत ॥ एवन्त कथितं भद्रे ! कामनाप्रत्ययावहम् । इयन्तु परमा विद्या किमन्यत् परिष्टच्छिम ?॥ साधनं कथितं देव ! महा अर्थेप्रदायकम्। ग्रधुना योतुमिच्छामि ग्रर्चनां विधिपूर्विकाम्॥ भैरव ज्वाच । पूजनं ऋणु देवेशि ! साधके सिडिदायकम् । नित्ये नैमित्तिके काम्ये तिविधं पूजनं सातम् ॥ भूपदेशे मनोरम्ये पुष्पामोदप्रपूरिते। गोमयेनाय संलिप्य पुष्पप्रकरशोभितम्॥ कामापेचावधियेत्र श्रासनञ्च समाचरेत्। सीवर्णं राजतं तास्त्रं पैत्तलं भूर्जपत्रकम्॥ कर्परागुरुकस्त्री श्रीखण्डकुङ्गमेन च। लिखेत्तत्र प्रयतेन लेखन्या हैमया ततः॥ मध्ये योनिं समालिख्य तदाच्चे तु षड्सकम्। तदाह्ये षोडशदलं चतुर्दारोपशोभितम्॥ पूर्वदारे गणेशच दक्तिणे वट्टकं यजेत्। पश्चिम योगिनी पूज्या चेत्रपालं तथोत्तरे॥ ईशानादिषु सोमान्ते रुद्रपीठं प्रपूजयेत्। वगला पूर्वपत्रे च स्तिभिन्याद्यास्ततःपरम्॥

स्तिभानी मोहिनी वध्या अवनी कालिका तथा।

ग्रधरा कम्पिता धीरा कम्पना कायदर्शिनी॥ भामिका मन्दगमना भोगिनी चैव भोगिका। भोगाः षोड्गपत्रेषु गन्धपुष्पाचतैर्यजेत् ॥ षोड्गस्वरसंयुक्ताः सम्प्रदाय कुलागमे। लिखेनाध्येषु पीठेषु कल्पयेत् चेत्रपद्मकम्॥ ब्राह्मग्राद्यायैव पूर्वादी भैरवाष्टकसंयुता:। स्थिरमायादिकाः सर्वाः परिपूज्याः कुलोइवे॥ यादिचान्ताः षड्सेषु सप्तधातुषु माहकाः। योनिमध्ये मूलविद्यां विभिरञ्जलिभिर्यजेत ॥ पुष्पधूपादिनैवेद्यैगेन्धताम्बूलदीपकैः। नीराज्य विधिना पश्चात् जपसंख्यां निवेदयेत्॥ पवितारोपणं देवि ! वदनेषु यथाविधि । विलवयं ततो दद्यात् पूजनादि महोसवै:॥ एवन्तु कथितं भद्रे ! गुरोरान्नाञ्च पालयेत् । संसिडिलीं किकी तस्य यथा निगमसारतः। अपरा चैव शाक्तेयी सा चासयप्रदा भवेत्॥

अय मितः।—श्रस्य श्रीवगलामुखीस्तोत्रमन्त्रस्य नारदऋषिः विगलामुखी देवता मम मित्रिहितानां दुष्टानां विरोधिनां अधुखपदिजिह्वावर्णानां स्तभानार्थे विनियोगः।

> मध्ये सुधाव्यिमणिमण्डपरत्नवेदी-सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् । पीताम्बराभरणमात्यविभूषिताङ्गीम् देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥

जिह्वायमादाय करेण देवीं वामेन ग्रवृन् परिपीड़यन्तीम् । गदाऽभिघातेन च दिच्चणेन पीतास्वराच्यां दिभुजां नमामि ॥ विश्रूचधारिणीमस्वां सर्वसौभाग्यदायिनीम् । सर्वाभरणवैशाब्यां देवीं ध्यात्वा प्रपूजयेत्॥ चलकानका उड़ लो सितचा रूग उड़ खला म लसलानकचम्पकद्युतिमदिन्दुविम्बाननाम्। गदाइतविपचनां कलितलोलजिह्वाञ्चलाम सारामि वगलामुखीं विमुखवाद्मुखस्तिभानीम्॥ पीयूषोदधिचारमध्यविलसद्रतोज्ज्वले मग्डपे तिसं हासनमी लिपातितरि पुप्रेतासनाध्यासिनीम्। खर्णाभां करपीड़ितारिरसनां भाग्यद्गदाविभ्रमा-मिस्रं पश्चति स्यान्ति तस्य विलयं सद्योऽय सर्वापदः॥ देवि ! त्वचरणाम्बुजे.वितनुते यः पीतपुष्पाञ्जलिम् मुद्रां वामकरे विधाय च पुनर्मन्त्री मनोज्ञाचरम्। पीठध्यानपरोऽपि कुश्वकवशाहीजं सारेत् पार्थिवम् तस्यामितमुखस्य वाचि हृदये स्तभो भवेत्तत्चणात्॥ मन्त्रस्तावदलं विपचदलने स्तोतं पवित्रञ्च ते यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां जैतं न चित्रं भवेत्। मातः ! श्रीवगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तीर्मखे तन्नामयहणेषु संसदि मुखस्तको भवेदादिनाम्॥ वादी मूकति रङ्गति चितिपतिर्वैश्वानरः शीतित क्रोधी शास्यति दुर्जनः सुजनति चिप्रानुगः खञ्जति । गर्वी खर्वित सर्वविच जड़ित लमन्तिणा यन्तितः श्रीनित्ये ! वगलामुखि ! प्रतिदिनं कच्चाणि ! तुभ्यं नमः दुष्टस्तक्षनमुग्रविघ्रशमनं दारिद्राविद्रावणं भूभृत्स्तभानकारणं सगदशां चेत:समाकर्षणम्। सीभाग्यैकनिकेतनं मम दृशोः कारुखपूर्णास्तम्

<sup>\*</sup> कुविच्डायति इति पाठी दृश्यते।

श्रवोर्मारणमाविरस्त पुरतो मातस्वदीयं वपुः॥ मातभे ख्रय में विपच्चवटनं जिह्ना खलां की लय ब्राह्मीं सुद्रय नागयाग्र धिषणासुयां गतिं स्तन्भय। शव्यक्षय देवि! तीच्णगदया गौराङ्गि! पौतास्वरे! विघ्रीषं वगले ! हर प्रतिदिनं कारुखपूर्णेच्णे !॥ मातभैरिव ! भद्रकालि ! विजये ! वाराहि ! विश्वायये ! यीनित्ये। समये। महेशि। वगले। कामेशि। रामे। रमे।। मातङ्कि ! त्रिपुरे ! परात्परतरे ! खर्गापवर्गप्रदे ! दासोऽहं ग्ररणागतं कर्णया विश्वेश्वरि ! त्राहि माम ॥ संरम्भे चौरसङ्घे प्रहरणसमये बन्धने वारिमध्ये वक्की वादे विवादे प्रकुपितनृपती दिव्यकाले निशायाम। वश्ये वा स्तमाने वा रिपुबधसमये निर्जने वा बने वा गच्छंस्तिष्ठंस्तिकालं यदि पठित शिवं प्राप्न्यादाशु धीरः॥ नित्यं स्तोविमदं पवित्रमिह यो देव्याः पठत्यादरात धृत्वा मन्त्रिममं तथैव समरे बाही करे वा गले। राजानी हरयो मदान्धकरिणः सर्पा स्रोन्द्रादिका एते यान्ति विमोहिता रिपुगणा लच्मी: स्थिरा सिह्य: ॥

विद्या लच्ची: सर्वसीभाग्यभाजः
पुत्राः सम्पद्राज्यमिष्टार्यसिहिः।
मानं स्त्रीणां सर्वसीभाग्यभोगम्
प्राप्तं तत्त्रज्ञते तत्त्रणेन॥
यत् कृतं जपसन्धानं चिन्तितं परमेखिरि!।
रिपूणां स्तमानार्यं हि तद्ग्रहाण नमोऽस्तु ते॥
ब्रह्माम्बिमिति विख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्वतम्।
गुरुभक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित्॥
पीताक्ष्वरां हिइन्हाञ्च तिनेत्रां गात्रकोञ्च्यलाम्।

शिलामुद्गरहस्ताञ्च सारेत् तां वगलामुखीम् ॥
सिद्धिं साध्येऽवगन्तुं गुरुवरवचनेष्वार्ह्णविखासभाजाम्
स्वान्तः पद्मासनस्थां वररुचिवगलां ध्यायतां तारताराम् ।
गायत्रीपूतवाचां हरिहरसनने तत्पराणां नराणाम्
प्रातर्मध्याक्नकाले स्तवपठनिमदं कार्य्यसिद्धिपदं स्थात् ॥ १

इति षट्कर्मदीपिकायां शान्तिकल्पे समानकर्मण पश्चमीदेश:।

अथवान्यप्रकारेण्रित्सानं कारयेत् सुधी:। सर्वविघ्रप्रमनं सर्वशान्तिकरं परम्॥ , देवगन्धर्व्ययचाणां पिशाचानां तथैव च। भूतानाञ्च तथा नृणां सगाणां पचिणां तथा ॥ चित्तप्रमोहनकरं जीवाकर्षणकारकम्। सर्वेषां स्तभानकरं दृष्टिमार्तयोस्तया ॥ सेनायाः स्ताभानञ्चेव व्यवहारगणैस्तथा। मग्निस्तमां जलस्तमां विविधायुधकस्य च॥ वाक्सतमां सर्वविद्यानामहितानाच सर्वेश:। गवामप्याखुसपीणां गतिस्तभानमेव च॥ रिपूणां क्रोधमंस्तभां रतिग्रक्रमनन्तरम्। युवतोनां मनःस्तमं यूनाञ्च हृदयं तथा॥ स्तभानं राजकोपस्य श्रमात्यस्य विशेषतः। अन्याषां जीवजातीनां चिप्रं स्तभानकारकम्॥ रिपुणां देवकरणं विश्विष्टं श्विष्टयोभेवेत्। उचाटकरणं तेषासुचादकरणं तथा॥ मर्बभूतवशीकारं सर्वभूतमनो इरम्। त्रायुष्करं धनकरं श्रीसीभाग्यकरं परम्॥

तत्तत्वर्मीतमन्त्राणां भेदां विविधास्तया।
प्रयोगाणि च सर्व्वाणि शृणु संचेपतो मुने!॥१॥
मन्त्रोद्वारं प्रवच्चामि शृणुष्वाविहितो मुने!।
वेदादि प्रयमं प्रोत्तं हुङ्कारं तदनन्तरम्॥
कामान्तं विन्दुसंयुत्तं ढतीयं वीजमुचरित्।
पुनश्च वोजं भूवीजं दिसप्तस्वरभूषितम्॥
एवं वीजं समुद्रुत्य तदन्ते मुनिसत्तम्।
हरिद्रागणप्रव्दान्ते पतये च पदं स्मृतम्॥
वर्श्वव्युगं पश्चाह्कारेण समन्वितम्।
सर्व्वग्रव्दं जनपदं हृदयं स्तभ्यवद्यम्॥
स्ताहान्तं मन्त्रमेवं स्याह्वाचिश्वदर्णसंयुतम्।
स्तम्भयदयकस्थाने श्राक्षप्यपदद्वयम्॥ \* इत्यादि।

मनो यथा—"श्रीं हुं गं ग्लीं हरिद्रागणपतये वरवरद सर्व्वजन-हृदयं स्तक्षय स्तक्षय खाहा"॥२॥

> मदनोऽस्य ऋषिः प्रोक्तश्क्रन्दोऽनुष्ट्व् निगद्यते। देवो हरिद्रागणपः सर्व्यलोक्तविमोहनः॥ वीजेन दीर्घयुक्तेन जातियुक्तेन वुडिमान्। षड्ङ्गमाचरिङ्कत्त्वा सर्व्यकामार्यसिडये॥ ३॥ १ ध्यानमस्य प्रवच्यामि सर्व्यसिडिप्रदायकम्। रत्नमण्डलमध्यस्यं रत्नसिंहासनोपरि॥

য়ातर्षणे कार्ये "सम्भय सम्भय" इत्यादिवत् "बातर्षयं आकर्षय" इति,
 चचाटने च "उचाटय उचाटय" इति बाव्न्या पठनीयमिति बीध्यम् ।

<sup>+</sup> कराङ्ग्यासी यथा,—गां श्रङ्गुष्ठाभ्यां नमः, गौं तर्जनीभ्यां स्वाहा, गूं मध्य-माभ्यां वषट्, गैं श्रनामिकाभ्यां हुं, गैं। कनिष्ठाभ्यां वीषट्, गः करतलपृष्ठाभ्यां फट्। एवं,—गो हृदयाय नमः, गौं ग्रिरसे स्वाहा, गूं शिखायै वषट्, गैं। कवचाय हुं, गीं, नेववयाय वीषट्, गः श्रस्ताय फट्।

पीतवणीं ग्रुकालेपमाल्याभरणभास्तरम्।
वीरं वा विदितं देवं गजवक्कं त्रिलीचनम्॥
पागाङ्गग्रक्तीधमुद्रां परग्रञ्चाभयं वरम्।
दधानं देवदेवेग्रं ध्यायेदेवमनन्धधीः॥
चतुर्थ्यां ग्रक्तपचे तु कन्यका पेषयेत्रिशाम्।
तामालिप्य स्वयं स्नात्वा निजदेशं प्रसन्नधीः॥
भत्त्या गुरून् प्रणम्याय पूजियत्वा यथा 'बलम्।
वस्त्रश्माङ्गरीयायौर्भूषणायौर्विशेषतः॥
तत्रसादादधीयीत हरिद्रानुष्ट्भं मनुम्।
रूपेण पूजयेदेवं गन्धपुष्पाच्चतादिभिः॥
श्रष्टाधिकसन्दसन्तु जक्षा तस्य दशांश्रतः।
हुनेहुङ्गटताभ्यक्तैरपूपैय समाहितः॥
तन्मानं तपयेद्वक्त्या सदाऽऽकषैति कन्यकाम्।
ततः काम्यानि कर्माणि कुर्यादै कर्मसिद्ये॥ ४॥

त्रथ चक्रं प्रवच्यामि गणेशस्य महात्मनः।
स्तम्भनाकर्षण्य्वैव वश्यं विदेषणं तथा ॥
उच्चाटनं मारण्य यन्तः षड्विध उच्यते।
हुङ्कारं विलिखेत् पर्व्यं गं गणेशं हृदि स्थितम् ॥
तद्दहः प्रणवं लिख्य \* तन्मध्ये नाम कर्म च।
तद्दह्यन्द्रभृहत्तं तस्मादष्टदलं लिखेत् ॥
चतुर्दलेषु हुङ्कारं भूवीजस्योदरे लिखेत्।
चतुष्कोणदलेष्वन्ते चतुर्थवीजमालिखेत्॥
भूपूरस्याष्टकोणेषु भूवीजान्तस्य हुं लिखेत्।
कोणाग्रादग्रपर्थन्तं गजमस्तकमालिखेत्॥

<sup>\*</sup> अव लिखिला इति स्थाने लिख्येलाषे पदं ज्ञेयम्।

दन्तकाष्टकमध्येषु गणान्तं वीजमालिखेत्। विलिख्य भूपुरस्थाये वर्णान्तं चोचरेत् क्रमात्॥ भूपरेण च मंवेष्य तस्य कोण चतुष्टये। भूवीजे विलिखेदेतत् स्तभयान्तमुदाहृतम्॥ गुक्रसीम्यदिने सोमवारे वाऽन्यतमेऽपि च। रात्री विविक्तदेशे तु गोमयेनोपलिप्य च॥ देवमारोण्येत् तत्र दृगदं स्थाप्य यत्ततः। यया बलं तथा लब्धो हरिद्रां चालयेत् तत:॥ निस्वग् दशदि निचिप्य पेषयित्वाऽय नन्यना। खरूपस्य चतुर्भागमष्टविष्नसमन्वितम्॥ मदा पिष्टाऽय संयोज्य पञ्चविंगतिवारकम्। मनुना शोधयेत् तान्तु सूच्मवस्ते विलेखयेत्॥ स्तभायन्तं विलिख्याऽय कुर्यात् प्राणनिविशनम्। हारिद्रेण गणेशानं सर्व्वावयवसंयुतम ॥ क्रवा क्रची निवेध्याय यन्तं सन्धाय यत्ततः। पुनः प्राणान प्रतिष्ठाव्य गन्धपुष्पोपहारकैः॥ यस भत्त्या गणेशानं शरीरान्तः प्रणिचिपेत्। जपेदष्टसहसन्तु हेमपुष्यैः समर्बयेत्॥ सिडार्थेञ्च निवेद्याऽय विलं तत्रैव निचिपेत्। सुशालितगड्लप्रस्थं तद् ध सुद्गतिन्दुकम्॥ चतुःपलं गुड्ञेव तन्मानं नारिकेलकम्। मुष्टिमाचं मरीचं स्थात् तदर्डं सैन्धवं रजः॥ तस्याईं जीरकं दद्यात् गुड़स्याईं पृतं विदुः। गोचीरिणाढकेनैव ऋतं मन्दान्निना यतः॥ सिडौदनिमिति ज्ञेयं विन्नेशस्य प्रियावहम्। एतेन इविषा पूपमोदकाचैर्विशेषतः॥

चन्दनाऽगुरुकपूरताम्बूलैः क्षश्रादिभिः । प्रीणियित्वा गणेशानं विलं दत्त्वा समाहितः ॥ श्राविण पिधायात्र स्तोत्रैः स्तुत्वा गणेश्वरम् । एवमेव दिनैकं वा दिवारं वा तिवारकम् ॥ पञ्चाहं वाऽय सप्ताहं पूजयेदिघ्ननायकम् । स्तम्भयेत् सकलान् लोकान् नात्र कार्या विचारणा ॥॥॥

श्रयवा स्थापयेद्राती रणभूमी गणेख्रम्।
सेनास्तभानमायाति चतुरङ्गवलान्विता॥
नगरे नगरान्तःस्थांन् राष्ट्रे राष्ट्रान्तरस्थितान्।
चतुष्पये ग्राम्यजनान् सभामध्येऽय वादिनः॥
वचागे व्रष्टिसंस्तभं जलमध्ये जलस्य च।
सीमायाञ्च महारावे मार्गे चीरं ग्रहे तथा॥
गजाश्वयोश्च शालायां वस्त्रीके पन्नगादिकान्।
वने सिंहवराहाणां क्रोधे च जलमध्यगे॥
श्रायुधानां शालमध्ये व्यवहारे तथैव च।
श्रग्नो तु सर्व्वविद्यानां गीतानाञ्च तथा स्मृतम्॥
खट्टायां श्रत्नसंस्तमं भक्त्यमोज्येषु योषिताम्।
स्थानेष्वेतेषु संस्थाप्य विलं द्यात् समाहितः॥
स्तभ्ययेदचिरादेव तैलीकां सचराचरम्।
श्रमोघमेतत् कर्म स्थात् रहस्यं न प्रकाशयेत्॥ ६॥

श्रयाकर्षणमन्ताखं प्रवच्यामि समाहितः।
यन्ते हरिद्रासंस्कारं कुर्य्यात् पूर्व्वीक्षवर्मना ॥
पूर्ववच समालिख्य मायावीजं गणेखरम्।
मध्ये वहिःस्थितान् सर्व्वान् मायावीजेन वेष्टयेत् ॥
भूपूरदयकोणेषु चतुर्वेवं महासना।
वाणवीजं न्यसेक्ष्मिं इतं क्षीं क्षों व्लुं सक्तमः॥

इतराष्ट्रसु कोणेषु यां क्रीं वर्णेइयं लिखेत्। मस्तकेषु प्रतिदिनं वकारच ठकारकम्॥ विलिखेडिन्द्रनादान्तं मन्त्री मंयतमानसः। भूकोणाग्रेवष्टशूलं हुङ्गारान्तस्वमालिखेत्॥ मग्डलिंदतयेनैव वाक्णेन पुटीक्ततम्। मायावीजं लिखेत् तत्र कोणेष्वपि चतुर्ष्वपि॥ पिष्टसारे जिखेनान्ती यन्तं पूर्वीत्तवर्मना। प्राणसंस्थापनं कृत्वा मध्ये विघ्नेशमर्चयेत्॥ हारिद्रेण गणेशानं क्रता तत् कुचिमध्यगम्। यन्तं विधाय संस्थाप्य पुनः प्राणान् प्रतिष्ठयेत् \*॥ विघ्रेशयन्त्रमुदाच्च सुकीलालिकया स्टा। श्राविद्वतयं क्रत्वा नयोरन्यतरे श्रमे॥ निधाय विघ्नकत्तीरं रत्तपुष्यैः समर्चयेत्। सिडोटनाद्यैः पूर्व्वोक्तप्रकारेण च पूजयेत्॥ मन्ते सर्वजनसाने साध्यनाम प्रयोजयेत्। संस्तभयदयस्थाने त्राक्षयपद्दयम्॥ योजयित्वाऽष्टमाहसं जपेदै साध्यदिक्ष्यः। बलिं द्याइणेशस्य गन्धपुष्पाच्चतादिभिः॥ द्रतरेण शरावेण छादयेत् तदनन्तरम्। एकत्रिपञ्चसप्ताहपर्थन्तं पूजयेदिसुम्॥ शीघं साध्यः समायाति नात्र कार्या विचारणा। पुरुषोऽप्ययवा नारी वैश्या वापारसां गणा: ॥ अचिरेण समायाति हारिद्रस्य प्रसादतः। राजा वा राजनारी वा राजपुत्रीऽयवा मुने !॥ ७॥ तालपत्ने विलिख्यैनं यन्त्रमाकर्षणाह्वयम ।

प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् द्रव्ययः।

गुड़ेनैव यथा पूर्व प्राणान् संस्थाप्य यत्ततः॥ श्रर्चयिता त्वजाचीरे निचिष्य साध्यदिक्ष्यः। काययेनान्वजाप्येन नारी पुर्खाङ्गना तथा। अर्चिता वशमायाति विवशा मदनातुरा ॥ ८ ॥ तप्ताङ्गारे खतं हव्यं लवणं हिङ्गुसंयुतम्। स्वरूपेण च संयुक्तं मधू च्छिष्टेन मेलयेत्॥ साध्यप्रतिक्वतिं क्वता तस्य प्राणान् प्रतिष्ठयेत्। खेताकपत्रयुग्मेन पुटीकत्य तन् ग्रभम्॥ जपेहीपशिखाग्रे च तथा चाष्टसहस्रकम्। शीव्रमायाति युवती मदनाकु ज्वेतना ॥ ८॥ खेतार्कदुग्धं ताम्बूले लिम्पेत् पिट्टा च सर्षपान्। तत्चीरेण च संयुक्तं तैलयन्वं समालिखेत्॥ प्राणसंस्थापनं कत्वा मधुनाऽभ्यज्य संयुतम्। क्षत्वैव तल्रदीपस्य मूले मंस्याप्य वुडिमान्। दीपाय चार्पयेत् श्रीघं समायान्ति बधूजनाः॥ १०॥ ताम्बूलं मधुनाऽभ्यज्य मध्ये यन्त्रं प्रविन्यसेत्। ज्ञातु भच्चयेत् साध्यं शीघ्रमायाति सा च तम् ॥ ११ ॥ गन्धपुष्पेऽयवा भौमे भच्चे यन्त्रं प्रविन्यसेत्। प्राणसंस्थापनं क्रत्वा सा तदायाति तत्चणात्॥ १२॥ अथवा तर्पयेदियां नयां वा सिन्धुसङ्गमे। यागम्य च जलस्याऽभिमुखेनाष्ट्रसहस्रकम्॥ श्राकर्षयेत्र सन्देही योजनानां शतोपरि। किमत बहुनोक्तेन ध्यात्वा देवं मनुं जपेत्॥ सर्वे सत्त्वाः समायान्ति मूर्च्छिता विह्रगोरगाः॥ १३॥

द्रति श्रीक्षणविद्यावागीशभद्याचनर्य्यक्ततायां षट्कसंदीपिकायां शान्तिकल्पे समनकर्मणि षष्ठीदेश:।

### अय आकर्षणम्।

ग्राकर्षणविधानानि कथयामि समासतः। यद्दष्टं त्रेपुरे तन्त्रे यद्दष्टं भूतडामरे॥१॥ यीवीजं मानायं वीजं लज्जावीजं समुद्देत्। प्रथमे प्रणवं दस्वा विपुरिति पदं तत:॥ त्रमुकीति पटं दत्त्वा त्राकर्षय दिधा पदम। खाहान्तं मन्त्रमुद्द्य जपेद्दशसहस्रकम्॥ २॥ षट्कोणचक्रमालिख्य रक्तचन्दनकुङ्ग्मै:। षडङ्गं कारयेन्सन्ती लज्जावीजसमन्वितै:॥ षड्दीर्घस्यसंयुक्तैर्नादिबन्दुविभूषितै:। रक्तपृष्पाचतैर्धपनैवेदी: परिपूच्य ताम्॥ भावयन् चेतमा देवीं विनेवां चन्द्रशेखराम्। वालार्के किरणप्रस्थां सिन्द्रारुणविग्रहाम्॥ पद्मञ्च दिच्णे पाणी जपमालाञ्च वामके। मन्त्रस्थास्य प्रसादेन रसामपि तथोवधाम । श्राकर्षयेत्र सन्देह: किं पुनर्मानुषीमि ह ॥ ३॥ भूजैपत्रे समालिख्य कुङ्गमालत्तवारिणा। कुङ्गागुरुकस्तूरीरोचनामिलितञ्च यत्॥ यनामारत्मियेण कमलाचीमनं लिखेत्। "श्रीं क्लीं कमलाचि त्रमुकीमाकर्षय श्रीं फट्"। इमं मन्त्रं जपेदादी सहस्रेकं ततः पुनः ॥ भूर्जपत्रं समादाय गुलिकां कारयेत्ततः। तेनैव साध्यपादोत्य-सृत्तिकापङ्गविष्टिताम ॥ शोषितां तेजसा भानोवें ष्टयेत् कटुकै: पुन:। प्रतिमां स्त्रीनिभां क्षत्वा चिपेत्तस्यास्त्रयोदरे॥

गुलिकां पातयेत् पाचे प्रतिमां साध्यक्षिणीम। तादृशाभिमुखो भूत्वा निर्जने निश्चि साधकः॥ ततस्तन्नतिचत्तय तावद्रूपं जपेग्मनुम्। यावदायाति सन्त्रस्ता मदनालसवियहा ॥ ४ ॥ अयाऽन्यं कथयास्यच नृपाकर्षणहेतवे। देवस्यापि नरस्यापि मोहिनौमन्वजापतः॥ ५॥ अय मन्त्रं महेशानि । तारमादी ततस्त्रपाम । पञ्चशायकवीजञ्च दत्त्वा तु भुवनेष्वरीम्॥ मोहिनीति च नामान्ते फट्कारं पुनरालिखेत्। खाहान्तं मन्त्रमुद्रुत्यं मध्यवीजेन कारयेत्॥ षड़क्षं दीघंयुक्तेन चक्रेऽष्टदलके यजित्। प्रयमं साध्यनामानि लेख्यानि च कजोदरे॥ माहिषाखेन रत्तेन पूर्वमन्वेण संयुतम्। मोहिनीं पद्मिकञ्चल्के जृिक्यणीं स्तिकिनीं तथा॥ वगङ्गरीं कुलेगीच ततो वै विखवासिनीम्। ग्राकिषीं ततः क्लिनामचेयेदष्टपत्रके॥ गन्धपुष्पादिधूपादौर्भिक्तयुक्तेन चेतसा। लचजापेन सर्वेषां शीघ्रमाकर्पणं भवेत्॥ ६॥

"क्रीं कालिकायें विद्याहे श्राकिष्यें धीमहि तन्नः कालिक प्रचोदयात्। श्रीं श्राकिष्णि वज्जकपालधारिणि हुं फट् खाह श्रमुकीमाकर्षय"॥

> प्रणवं पूर्वमुद्घृत्य उग्रमेनि ततः परम्। नितम्बिनि विज्ञजाया विद्या परमदुर्ज्ञभा॥ ७॥

सिन्ट्रपुत्तलीं कला तस्या नाम हृदि विलिख्य पणमूखेन ताम्बूलं समानीय प्ररावद्ये नैवेयं दत्ता श्रष्टोत्तरप्रतं कणा तस्या मूलं मन्त्रं पठित्वा पुत्तत्था हृदि नामस्थाने ताड़िते तिसासमायाति॥ ८॥

षय विदेषणम्।

ग्रय विहेषणं वच्ये मियो विहेषणं रिपो:। करणीयं महिशानि ! यद्तां मालिनीमते । अन्योऽन्ययु इसंरक्षे रोषितौ समरेषु तौ ॥ १॥ तदीयनखरोड्डीनधूनिमादाय साधकः। धूलिना तेने विदेषस्ताड़नादभिजायते ॥ २ ॥ परस्परं रिपोर्वैंगं मिलेण सह निश्चितम्। महिषाध्वपुरीषाभ्यां गीमूत्रेण समालिखेत्॥ ३॥ ययोर्नाम तयोः शीघ्रं विदेषञ्च परस्परम्। रक्तेन माहिषाखेन रमशानवस्त्रके लिखेत्॥ ४॥ यस नाम भवेत्तस्य काकपचेण लेखितम्। विष्टयेह्विचाण्डालकेशेरेकतरेस्तत:। गर्ते ग्रामगरावस्ये पिरुकाननमध्यतः॥ ५॥ षट्कोणचक्रमध्ये तु रिपोर्नामसमन्वितम्। मन्दराजं प्रवच्चामि महाभैरवसंज्ञकम ॥ "श्रों नमो महामैरवाय रुट्रूपाय समशानवासिने श्रमुका-कयोविदेषं कुरु कुरु सुरु सुरु हुं फट् फट्"। एतसन्तं लिखेलत विदेषो जायते भ्वम्॥ ६॥ अन्ययोगमहं वच्चे दुर्लभं वसुधातले। येन जातेन शत्रृणां विदेषं कुरुते ध्वम्॥ ७॥ "श्रीं नमी भगवति समशानकालिके असुकं विदेषय विदेषय न इन पच पच मय मय हुं फट् खाहा"।

श्रमुना मन्त्रराजिन होमयेत् प्रयतः सुधीः। विज्ञकुण्डे निम्बपत्नैः कटुतैलान्वितैस्तया॥

प्रज्वाल्य खादिरैवीं इं सम्मानीत्यं ततः पुनः। दशसाहस्रसंयुक्तं यवाचततिलान्वितम्॥ भावयेत् कालिकां देवीमिन्द्रनीलसमप्रभाम्। महोज्ज्वलां व्योमनीलां सुरासुरविमर्हिनीम्॥ तिलोचनां महारावां सर्वाभरणभूषिताम्। कपालकर्त्तकाहस्तां चन्द्रसूर्योपरि स्थिताम्॥ श्वजालगताञ्चेव प्रेतसैरववेष्टिताम्। वसन्तीं पित्वकान्तारे सर्व्वसिडिप्रदार्यिकाम्॥ ली हयुवेण संयुक्तं पूर्व्वीक्तं द्रव्यसञ्चयम्। होमयिदिविधैः पुष्पैवैलिच्छागोपहारकैः॥ पूजयित्वा महेशानीं भितायुक्तेन चेतसा। तद्भस च समादाय धारयेदतियत्ततः॥ भमाना तेन यं इन्यादिदे घो जायते नृणाम् \*। विक्तः शीतलतां याति पते हुमी यदा रविः॥ यदि ग्रुष्यति पायोधियन्द्रमाः यदि वै पतेत्। तदा मिथ्या भवेदेव योगराजः सुदुर्ह्मभः॥ महायोगोऽयमुद्दिष्टः शक्षुना त्रिपुरामते। गोपितव्यं प्रयत्नेन यदीच्छेचिरजीवितम्॥ ८॥ श्मशानसभावं वस्त्रमानीय लेखयेदय। तालकेन शिलायोगादिषाभ्यामुक्तमीदृशम्॥ षट्कोणं चक्रराजञ्च ग्रत्नूणां नामटङ्कितम्। पूर्व्वद्रव्येग विदेषं कारयेदय साधकः॥

"ग्रीं च्लीं विदेषिणि ग्रमुकामुकयोः परस्परं विदेषं वृ कुरु स्वाहा"॥ ८॥

<sup>ा</sup>र् लाहा ॥ ८ ॥

अधिन् तविति श्रेषीऽन्वये योजनीय:।

चक्रवाद्ये लिखेदेनं मन्त्रं पूर्व्वीत्तवस्तुभिः।
परस्परं भवेद्देषः कथितः कुिक्रकामते॥
पूर्वं घुर्घृटिके युग्मं ततो मर्किटिके युगम्।
पश्चात्तु विलिखेद्वोरे विदेषोद्देगकारिणि॥
श्रय घोराघोरयोः स्थादमुकामुकयोस्ततः।
विदेषय युगं हुं फट् विद्या घुर्घृटिकेरिता॥ १०॥

इति षट्कुर्मदीपिकायां शान्तिकल्पे विदेष: सप्तमीहेश:।

#### अय उचाटनम्।

उचाटनिविधं वच्चे यथोत्तं त्रीमतोत्तरे। निम्वपत्ने लिखेनाम महिषात्वपुरीषतैः। काकपचस्य लेखन्या लेखनीयमनन्तरम्॥ "ग्रीं नमः काकतुरिष्ड धवलमुखि देवि! श्रमुक्तमुचाटय चाटय हुं फट्"॥१॥

एतक्यन्तं महादेवि ! लिखित्वा पूर्व्वक्तुभिः ।
निम्बद्वचस्थितं सर्वं इनेत् काकालयं सुधीः ॥
सम्मानविक्तमानीय धुस्तूरकाष्ठदीिपतम् ।
होमं कत्वा महातैलैरथवा कटुवस्तुभिः ॥
पूर्व्वोक्तमनुना तस्य पत्रं राजीकटुमुतम् ।
सम्पूज्य धवलमुखीं पञ्चीपचारपूज्या ॥
तद्भस्म प्रचिपेच्छत्नोर्मन्दिरीपरि मन्तवित् ।
ध्यानयुक्तेन चित्तेन सतृचाटकरं भवेत् ॥
धूम्ववर्णां महादेवीं तिनेतां सिर्मिष्दराम् ॥
जटाजूटसमायुक्तां व्याघ्रचर्मपरिच्छदाम् ॥
क्रमाङ्गीमस्थिमालाञ्च कर्त्तृकाञ्च तथाऽस्वुजम् ।

कोटराचीं भीमदंष्ट्रां पातालसहशोदरीम् ॥
एवंविधाञ्च तां ध्याता कुर्यादुचाटनं रिपी: ।
एवं योगविधिः ख्यातो वीरतन्त्रे महेश्वरि ! ।
सङ्गोप्योऽयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यः कदाचन ॥ २ ॥
प्रणवं पूर्वमुचार्थ नमो भगवते पदम् ।
क्राय दीर्घकवचं तथा दंष्ट्राकरालाय ॥
अमुकञ्च ततः प्रोच्य सपुच्चवान्यवैः मह ।
हनयुग्मं दहयुग्मं पचयुग्मं समुचरित् ॥
शीत्रमुचाटय दन्दं हुं फट् खाहाञ्च ठदयम् ।
ततो वै पञ्चवर्गाणां पञ्चमं बिन्दुसंयुतम् ।
वीजपञ्चकमितिह ज्ञातव्यं तन्त्रकोविदैः ॥

"श्रीं नमो भगवते रुद्राय हुं दंष्ट्राकरालाय श्रमुकं सपुन् बान्यवै: सह इन इन दह दह पच पच शीघ्रमुचाटय उचार हुं फट् खाहा छं जं णं नं मं"॥ ३॥ उद्यन्मार्चण्डकोटिप्रतिमतनुरुचिं सोमसूर्य्याग्निनेत्रम् विद्यञ्ज्वालाकलापोञ्ज्वलविपुलजटाजूटबहेन्दुखण्डम्। घण्टाटङ्कामयेष्टान्यपि च निजभुजैर्बिभतं भीषणाङ्कम् श्रीमत्कालाग्निरुद्रं प्रणतभयहरं साष्ट्रहासं भजामि॥

एवं ध्याला प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। "ग्रां ज्ञीं कीं कालाग्निरुष् प्राणा दह प्राणाः" दत्यादि॥ ४॥

श्मशानभस्म चादाय तेनैवीचाटनं मतम्। काकीलृकस्य पचांस्तु हुनेदष्टीत्तरं शतम्। यन्नामा मन्त्रयोगेन तस्य चोचाटनं भवेत्॥ ५॥

द्गति यौक्षणानन्दविद्यावागीशभद्दाचार्यकतायां षट्कर्मदौषिकायां शान्तिकले उचाटनविधिरष्टमोद्देश:।

#### अध मार्गम्।

वराजे। श्रभिचारस्य विषयानाकर्णय वदामि ते। सक्र्रे क्रूरवर्गस्थे चन्द्रे बलिनि ग्रोधने ॥ विष्टियोगे च कर्त्तव्योऽभिचारोऽप्यरिनैधने ॥ १ ॥ पापिष्ठात्रास्तिकांश्चेव देवब्राह्मणनिन्दकान्। यज्ञां य घरतकान् सर्वान् क्षेयकर्मसु संस्थितान् ॥ चेत्रवृत्तिधनस्त्रीणामाहर्तारं कुलान्तकम्। निन्दकं समयानाञ्च पिशुनं राजघातकम्॥ विषाग्निक्ररशस्त्राचै हिंसकं प्राणिनां सुदा। योजयेन्मारणे कर्मण्येताच पातकी अवेत्॥ २॥ दशास्त्रितिञ्च संवीच्य कुर्यान्मारणमात्मवान्। अनवेच्य कृतं कर्म यात्मानं इन्ति ततचणात ॥ ३॥ ब्राह्मणं धार्मिकं भूपं वनितामैष्टिकं नरम्। वदान्यं सदयं नित्यमभिचारे न योजयेत। योजयेद् यदि वैरेण प्रत्यासत्य निहन्ति तम्॥ ४॥ ददानीं खूलहोमन्तु कथयाम्यरिमर्दनम्। तत्तत्वर्मीदिते कुण्डे कुर्याडोममुदीरितम। विधानं देषनिधनरोगोचाटनविग्रहे॥ ५॥ श्रायुर्दायं रिपोर्ज्ञात्वा लग्नोक्तर्जाण वीच्य च। तदात्मकग्रहाणाञ्च संस्थितिञ्चाष्टवर्गकम्॥ वयाणामानुकूल्येन कुर्यात्तदाऽभिचारकम्। अन्यथा क्रूरकर्माणि कुर्वाणं नाग्रयन्ति हि। तान्येव कर्माणि ततस्तव च प्रातिकृत्यताम् ॥ ६ ॥ क्यांत् तद्देवताभिक्तमास्तिकां वचनाद् गुरोः। तत्पार्खवर्त्तिमन्तज्ञो नालोच रिपुनियहम।

विदध्यादन्यया ग्रत्या न फलं चात्मनाग्रनम् ॥ ७ ॥ रिपोरष्टमलग्ने च ऋरे त्वष्टमराशिगे। स्थाने कुर्यादनिष्टानि तिहनाशाय साधनम्॥ ८॥ प्राचां मेषहषी वक्की मिथ्नं दिच्णे तथा। कु लीर सिंह मियुनं निर्ऋ त्यां कन्यका स्थिता॥ तुलाकोटी पश्चिमतो धनुर्वायी तु संस्थित:। नक्रक्यावुत्तरतो मीनो ह्येशे च संस्थितः॥ एवं राशिक्रमं ज्ञाला कुर्यात् कर्म विशेषतः। काले तु पञ्च पञ्च स्युर्घटिका क्रमयोगतः॥ ८॥ चैत्रादिकेषु मासेषु दादग्रेष्वपि भास्करः। मेषादिराशिं यो याति तथाऽन्यैर्यहमण्डलै:। त्रश्रभात्मक्तीमन्तु कुर्यात्रासे समीरिते॥ १०॥ तनानरे। विद्वेषणाभिचारे च त्रिकोणं क्ष्डिमिष्यते। दिमेखले कोणमुखं इस्तमातन्तु सर्वतः। मानहीनादिकं दोषं नास्ति कुर्ल्डेऽभिचारके ॥ ११ ॥ दिचणास्येऽभिचारन्तु गदं विक्रमुखो दिषाम्। उच्चाटनं वायुमुखो विद्वेषो राच्तसी मुखः। विदध्यात् पश्चिमायान्तु क्रूराखन्यानि कत्स्रगः॥ १२। खदेशे ग्रामगेहादौ तानि कर्माणि तहिशि। विदध्यादपि विध्युक्तमन्ययानर्थमाव हेत्॥ १३॥ क्णडादिकरणाश्क्ती खिण्डिले होममाचरेत्। गोमयै: परिसृष्टे च सुषमे भूतले समे॥ बालुकाइस्तविस्तारे चतुरङ्गलमुच्छिते। मध्ये विदध्याडोमन्तु प्रोत्तमेवमग्रीषतः॥ १४॥ व्यावातयोगी हर्षाच्ये विषयोगे च सत्यजे। नाग्रयोगे दीनजे च खत्यी क्रवचयोगके।

चर्डीयचर्डायुधके महाकाले च कालके ॥ १५॥ वृज्ञमूले कण्टकाख्ये स्पूले पञ्चर्चके पुनः। कुर्यात् प्रयोगं प्रत्यर्थिभङ्गाय निधनाय च। निग्रहाय निरोच्चैनं कुर्यात् सिडिमवाप्रुयात्॥ १६॥ वश्याक्षपविद्वेषस्तभोचाटनमार्णे। विदध्यात् पुत्तलीं सम्यक् चतस्रः प्रोक्तयोगतः॥ पिष्टेन सिक्येन तथा चिकाइस्तमृदापि च। साध्यनच्त्रसचिणाप्युक्तनच्त्रसंयुतः॥ त्रासने पादयोः स्थाने क्राग्डमध्ये च साधकः। पिष्टमुत्तरतः कला स्थापयेत् सिक्यमन्तरे। एवं साधारणं कात्वा क्यांत कर्म समीरितम ॥ सर्पशीर्षश्चचा होमं कुर्यादश्वभकर्मणि। वैरिनामा शुचा कला चर् तज्ज हुया तदा। विकोणकुण्डे यमदिक्ष्यो हुत्वाईरावके॥ १०॥ श्मशाने निर्जने देशे विदध्यादिभचारकम्। यचाभिचारिहोमन्तु करोति भुवि साधकः॥ तवाभितो चपी रचां कारयेदालसिडये। न चेदरातिनृपतियारैक्कांला निहन्यमुम्॥ १८॥ सराष्ट्रे तु न कुर्वीत न कुर्वीत समण्डले। यदि कुर्यात् प्रसादेन मान्त्रिकोऽज्ञानमोहित:। तद्राज्यं पीड्यन्येव शनकैररिसृत्यकाः॥ १८॥ त्रचट्टमसमिस्धेरमी तत्पत्तेय करञ्जकै:। हैमोदलरसाक्तेथ होमाच्छतून् विनाशयेत्॥ २०॥ नत्तमालसमिम्बेऽग्नी तलमिद्भिय तत्पली:। वितस्तिमातैस्तेनात्तेईवनादैरिणो सति:॥ २१॥ त्रक्करसमिन्धेऽग्नो तद्दीजैस्तद्षृतप्तृतैः।

होमादरातस्तीव्रेण ज्वरेण स्थानमृतिर्धुवम् ॥ २२ ॥ सीवीराक्तेस्तु कार्पासवीजैहींमात्तु मण्डलात् । ग्ररातीनामयान्योऽन्यं कलहान्निधनं भवेत् ॥ २३ ॥ सर्वपाज्यद्भृतै: ग्रण्ठीमागधीमरिचैर्द्धतात् । वैरिकमीर्चेवचाग्नी मण्डलात्तु स्रतिज्वरात् ॥ २४ ॥

श्रय लवणमन्त्रस्य विधानमभिधीयते। ऋगाद्या कथिता पूर्वे लवणामासि पूर्विका॥ लवणादिर्दितीयान्या दहाद्या परिकोर्त्तिता। संदग्धाद्या चतुर्थी स्थात् याते पूर्वा तु पञ्चमी॥ लवणमन्तः ऋग्वेद-सिइसमिभधीयते। लवणाभिस तीच्णोऽसि उग्रोऽसि हृदयं तव ॥ पृथ्वी लवणमाताऽस्ति तथैव वरुणः पिता । तत्यचित पाचयति तच \* किन्दति भिन्दति ॥ लवणे दश्चमाने तु कुतो निद्रा कुतो रितः। त्रमुकस्य दहाङ्गानि दह मांसं दह त्वचम्॥ दह लगस्यिलोमानि ऋस्थिभ्यो मिज्जिकां दह। वसतियोंजनगते 🕆 नदीनाञ्च गतान्तरे॥ नगरे ली हपाकारे क्षणसपीक्तिर्गले। सन्दग्धानय से शीघं लवणस्य च तेजसा॥ तचैव च समायाति ति क्ष किन्दति भिन्दति। या ते राविर्मेहाराविः सा ते राविर्मेहानिशा॥ या रातिः श्रत्यविषय श्रुलायारोपितस्य च।

श्रव लवणम् द्रति स्थाने क्ल्दीऽनुरोधात् तत्यदद्यं प्रपाठतम् ।

<sup>·</sup> अव वस्तियों जनशतेत्वव प्रयोगे प्रयस्तः "यदि" योजनीयम्।

<sup>🗜</sup> भवापि तत्परेन जवणं बीध्यम्।

श्रक्षिरामुनिराख्यातम्बन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥
श्रग्नीरानिः पुनर्दुर्गा भद्रकाली च देवता ।
चिटिमन्त्राचरैः कुर्य्यात् षड्ङ्गानि समाहितः ॥
पञ्चभिर्हृदयं प्रोक्तं तिभिर्वर्णैः श्रिरः स्मृतम् ।
पञ्चवर्णैः शिखा प्रोक्ता कवचं करणाचरैः ॥
पञ्चभिनेत्रमुहृष्टं युगलेनास्त्रमीरितम् ।
तारं चिटिह्यं पश्चाद्याखालि तदनन्तरम् ॥
महापदाख्यां तां ब्रूयादमुकं मे ततः परम् ।
वश्मानय ठहन्दं चिटिमन्त्र उदाहृतः ।
चतुर्विश्रत्यचरात्मा सर्वकामफलप्रदः ॥

अव मनः।—श्रों चिटि चिटि हृदयाय नमः। चाण्डालि शिरसे स्वाहा। महाचाण्डालि शिखाये वषट्। श्रमुकं मे कवचाय हं। वशमानय नेत्रत्रयाय वीषट्। स्वाहा श्रस्ताय फट्"। इति षड्झं विन्यस्य ध्यायेत्।

नवजुङ्गमिनभमिनं रुचिराकल्पश्रतमाश्रये व्यच्चम् । सुवशक्तीवरमभयं दोभिर्दधतं स्थितच्च रक्तेऽक्वे ॥ कालाम्बुवाह्युतिमिन्दुवक्कां तालावलीशोभिपयोधराव्याम् । कपालपाशाङ्गश्रनागहस्तां नीलाम्बराव्यां युवतीं नमामि ॥ कालाम्बुदाभामरिशङ्गशूलखङ्गाव्यहस्तां वरुणेन्दुचूड़ाम् । भीमां विनेत्रां जितशतुवर्गां दुगीं स्मरेहुगैतिभङ्गदचाम् ॥ टङ्गं कपालं डमरुं विश्वलं संविभ्वती चन्द्रकलाऽवतंसा । पिङ्गोर्ड्वकेशी शितभीमदंष्ट्रा भूयाहिभूत्ये मम भद्रकाली ॥

न्द्रक् पञ्चकं यजित् सम्यग्युतं स्वात्तह्यांग्रतः। इविषा प्रतसिक्तेन जुहुयादर्चितेऽनले॥ एवं क्रते पुरस्रयाप्रयोगे कुग्रलो भवेत्। ग्रम्निः यामवती ध्येया वश्याकर्षणकर्माणोः॥ स्मरेद् दुर्गां भद्रकालीं मन्त्री मारणकर्माण । जानुप्रमाणे सलिले स्थिता निशि जपेनानुम्। श्रनेन वाञ्कितः साध्यः किङ्करो जायते चणात् ॥ २५ ॥ नाभिमात्रोदके स्थिला जपेनान्त्रमिमं सुधीः। श्रष्टीत्तरसहसं यस्तस्य साध्यो वशो भवेत् ॥ २६ ॥ ऋक्पञ्चकं जपेनान्त्री कण्डमात्रामास स्थितः। सप्तभिदिवसैभेपान् वश्यीदिधिनाऽसुनाः॥ २०॥ विलिख्य तालपत्ने तं साध्यनामा विदर्भितम्। निचिष्य चीरसंमिश्रे जले तत् काथयेतिशि। वश्यो भवति साध्योऽसौ नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २८ ॥ तालपत्रे लिखिल्वैनं भद्रकालीग्रहे खनेत्। वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयसुदाहृतः ॥ २८ ॥ ताम्वपात्रे समालिख्य मन्त्रं साध्यविदर्भितम्। तापयेत खादिरे वक्की मासाद्यों भवेत्ररः ॥ ३०॥ विकोणं कुण्डमासाय सम्यक् शास्त्रोत्तलचणम्। तिसान् होमं प्रकुर्वीत संस्कृते ह्यावाहने। प्रचाल्य गव्यदुग्धेन संशोध्य लवणं सुधीः। सुचूर्णितं प्रजुद्धयात् सप्ताहादशयेज्जनान् ॥ ३१ ॥ द्धिमध्वाज्यसंसित्तैः सैन्धवेर्नुहुयात्तया। वश्येदिखिलान् देवान् चिरात् किमुत पार्थिवान्?॥३२॥ विग्रुङ्गं लवणप्रस्यं विभन्नं पञ्चधा पृथक्। एकैकया प्रजुहुयात् पञ्चपञ्चाहमादरात्। यस्य नाम स वश्यः स्थादनेन विधिना चिरात्॥ ३३॥ ग्रइं लवणमादाय जुहुयान्मधुरान्वितम्। जनपञ्चाग्रदाहुत्या वर्गं नयति वाञ्छितम् ॥ ३४ ॥ मधुरत्यसंयुत्तीर्ज्वणत्रयसंयुतीः।

जुच्चयाद्दशयेवारीं नरावरपतीनपि। मन्तं क्षणात्तीयादि प्रजपेद् यावदष्टमीम् ॥ ३५ ॥ पुत्तलीः पञ्चकुर्वीत साङ्गोपाङ्गाः समाः ग्रुभाः । एका साध्यद्रमेण स्यादन्या पिष्टमयी तथा। चित्रहस्तम्दान्या सादन्या सिक्थमयी साता। लवणप्रोक्तसम्भूतं चूर्णितं परिशोधितम्। कुड़वं प्रोत्त्येत् चीरदध्याज्यमधुभिः सह ॥ गुड़ाज्यमधुभिः सम्यक् मित्रितेनाऽसुना ततः। कुर्वीत पुत्तलीं सौम्यां सर्वावयवशोभिताम्॥ प्राणमन्त्रक्ततं यन्त्रमासां हृदि विनिचिपेत्। अस्यां प्राणान् प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् कुसुमादिभिः॥ पश्चात् क्षणाष्टमीरात्री याममात्रे गते सति। विधाय माहकान्यासं मन्त्रन्यासमनन्तरम्॥ चिटिमन्त्रसमुद्भूतान् चतुर्विंशतिसंख्यकान्। ताराचान् विन्यसेदणीन् स्थानेष्वेषु समाहित:॥ मूर्भि भाले दृशोः श्रुत्योनीसायां चितुके तथा। कर्छहृत्स्तनयुग्मेषु कुची नाभी कटिइये॥ मेट्टे पायौ प्रविन्यस्य शिष्यं वर्णचतुष्टयम्। जर्हये जानुयुगे जङ्गायुग्मे पदहये॥ एवं विन्यस्तमवीङ्गो रक्तमाच्यानुलीपनम्। रत्तवस्त्रधरः ग्रुडः पुत्तलीं दारुणा कताम ॥ अधोमुखीं खनेत् कुण्डे पिष्टजामासनाद्धः। मनायीं प्रतिमां पाददेशे न्यस्येत् तथाऽऽतानः। मधृच्छिष्टमयीं व्योक्ति कुण्डस्योर्ड प्रलम्बयेत्॥ लवणेन क्तां पश्चात् प्रतिमां संस्पृशन् जपेत्। ऋक्पञ्चकं यथा न्यायम् ऋष्टोत्तरसहस्रकम्॥

संह्रत्य चिटिमन्वाणीन् पुनस्तस्यास्तनी व्यसेत्। अङ्ग्रहसन्धिप्रपदजङ्वाजानूरुपायुष् । लिङ्गदेशे पुनर्नाभी जठरे हृदयाम्बुजे॥ स्तनइये कन्धरायां चिवुके वदने पुनः। ब्राणयोः कुणयोरच्णोर्ललाटे मूर्वनि क्रमात्॥ अग्निसादाय सन्दीप्य साध्यलचप्रदार्भाः। श्रसिन्ध्यर्थं सद्तित्तदेवतां रूप्यपावने ॥ क्रशीदजातीप्रधीय दत्त्वार्ध्य प्रसमेत् सुधीः। मन्त्रेरतैः प्रजोगादावन्ते संयतमानसः॥ श्रीं त्यसनेनात्यसिवञ्च ! निशायां हव्यवाहन !। हविषा सन्त्रज्ञान त्या भव तया सह॥ श्रीं जातवेदी सहादेव तप्तजाम्बूनदप्रभ !। खाडापते विखभच्य लवणं दह शतुहन् !॥ श्री सर्वेषारीये ! सर्वाणि ! यस्तं मुत्तं त्वया जगत्। महादेदि ! नमलुभ्यं वरदे ! कामदा भव ॥ श्री तसीसवि सहारेवि ! महादेवस्य सुवते !। क्रियया पुरुषं इत्या वशमानय सुत्रते !॥ श्री दुर्गे ! दुर्गीदिरिइति ! दुर्गसम्बोधनानुने !। ग्रङ्गवक्रधरे देवि ! दुष्ट्रगतुभयङ्गरि !॥ नसस्ते दच्च झचुं से वशमानय चिष्डिने !। शाककारि ! सहादेवि ! शरणं मे भवानघे !॥ श्री भद्रकाली भवाभीष्टभद्रसिंडप्रदायिनी। सपतान् मे इन इन दह \* शोषय तापय॥ श्रों शूलासिशक्तिवजायौरुक्लाखोत्न्य मारय।

 <sup>&</sup>quot;दइ" इलाव जपप्रयोगे "दइ दइ" एवं पठनीयम्।

महादेवि ! महाकालि ! रचासानचतात्मिके ! ॥
माध्यं संस्कृत्य निर्भिय पुत्तलीं सप्तधातृतः ।
लवणं चूर्णयित्वा तु मधुगव्यसमन्वितम् ॥
समां पुत्तलिकां कृत्वा प्राणमन्त्रेण मन्त्रिताम् ।
श्रष्टाविंग्रतिकत्तन्तु श्रष्टोत्तरग्रतन्तु वा ॥
वहद्दीजसमायुक्तं वायुवीजसमन्वितम् ।
इदये स्थापयित्वा तु साध्यप्राणं विसर्जयेत् ।
श्रक्षपञ्चकं समुचार्थे जुह्यादेधितेऽन्हे ॥

चक्षचकी यथा। — लवणमन्तस्य वक्षचिरनुष्टुप्छन्दो महा-रात्तिर्भद्रकाली देवता क्ली वीजं च्ली ग्रितः बुं कीलकं चीं च्लां च्ली खीं क्लीं यां क्लीं सर्व्वसिद्धये विनियोगः।

लवणाभिस तीच्णोऽसि उयोऽसि हृदयं तव।
पृष्टी लवणमाताऽस्ति तयैव वरुणः पिता॥
तत्पचित पाचयित तच किन्दिति भिन्दिति \*।
लवणे इयमाने तु कृतो निद्रा कृतो रितः॥
त्रमुकस्य दहाङ्गानि दह मांसं दह त्वचम्।
दह त्वगस्थिरोमाणि त्रस्थिभ्यो मिक्कां दह॥
वसितर्योजनग्रते नदीनाच्च ग्रतान्तरे।
नगरे लौहपाकारे कृष्णसर्पाकृतिर्गले॥
सन्दर्भ्यानय मे ग्रीघं लवणस्य च तेजसा।
या ते रात्रिमहारातिः सा ते रात्रिमहानिग्रा॥
या रातिः ग्रन्थविदस्य ग्रूलाग्रारोपितस्य च।
प्रथमे दिचणः पादस्तत्करस्तदनन्तरम्॥
शिरस्ततीयमास्थातं वामहस्तमतःपरम्।

श्रवापि कथितीभयतत्पदस्थाने लवणं पठनीयं, प्रयोगसमये इति सङ्घेप:।

मध्यादृष्ठं पञ्चमं स्थादघोऽंशः षष्ठ देरितः ॥
सप्तमो वामपादः स्थादयं भागक्रमः स्मृतः ।
सप्तसप्तविभागे वा प्रोक्तेष्वेषु यथाविधि ॥
दुत्वेवमर्चियत्वेनं प्रणमेद्दण्डवत् ततः ।
यजमानी धनैर्धान्यैः प्रणमेद् गुरुमात्मनः ॥
प्रद्याद्दिणां तस्मै सहस्रं यतमेव वा ।
गवां सुवर्णनिष्काणां भूमिं वा शस्यशालिनीम् ।
सर्वशान्तिमवाप्नोति सर्वरचाक्ततं भवेत्ं॥

इति श्रीक्षणविद्यावागोशभद्याचार्थ्यविरचितायां षट्कर्मदीपिकायां नवमोद्देश: समाप्त: ।

## सिडनागार्जुनकचपुटम्।

यः शान्तः परमालयः परिशवः कङ्गालकालान्तको ध्यानातीत यनादिनित्यनिचयः सङ्कल्यसङ्गोचकः । याभामान्तरभासकः समरमः सर्वात्मना बोधकः सोऽयं शर्म ददातु नित्यजगतां विद्यादिसिङ्गष्टकम् ॥ या नित्या कुलकेलिशोभितवपुर्वोधोदिता जृश्वते पूर्णाभासतकुण्डला परपरा मन्त्रात्मका सिङ्किदा । मालापुस्तकधारिणीं विनयनां कुन्देन्दुवर्णोज्ज्वलाम् नित्यानन्दकुलप्रकाशजननीं वाग्देवतामाश्रये ॥ येषां वक्ताच्छतं किञ्चिन्यणिमन्त्रोषधादिकम् । तत्कर्मणि रतान् पूर्वं प्रणमामि महात्मनः ॥

संसार बहुविस्तीर्णे विद्यासिडिरनेकधा। प्रोत्तवाञ्चङ्करः पूर्वं यदि पृच्छति पार्वती \*॥ अन्वैर्दवगणैः सिडैर्मनिदेशिकसाधकैः। यद् यदुत्तं हि शास्त्रेषु तसर्वमवसोकितम्॥ शासवे यामले शास्त्रे मौले कौलेय डामरे। खच्छन्दे काकुले शीचे राजतन्त्रे मृतेखरे॥ उड़ीशे वातुले तन्त्रे उच्छिष्टे सिडिशावरे। किङ्गिणी मेरुतन्त्रे च कालचग्डेखरे मते॥ शाकिनी-डाकिनीतन्त्रे रीद्रेऽनुयइनियइ। कीतुके शाल्यतन्त्रे च क्रियाकालगुणीत्तरे॥ हरमेखलके यन्ये इन्द्रजाले रसार्णवे। श्रायर्वणे महावेदे चार्वाके गार्डेऽपि च॥ द्रत्येवमागमोत्तञ्च वतादत्तेग् यच्छतम्। एतत् सर्वे समुद्रत्य दभ्नोष्टतिमवादरात्॥ साधकानां हितार्याय मन्त्रखण्डमिहोच्यते। व्यवयोगाः। वश्यमाकर्षणं स्तमः मोहमुचाटमारणम् ॥ विदेषव्याधिकरणं पशुश्रस्यार्थनाश्रनम्। कौतुकञ्चेन्द्रजालञ्च यचिणीमन्त्रसाधनम ॥ चेटक बाज्जनं दिव्यमदृश्यं पादुकागतिम्। गुटिका खेचरत्वच सतसन्त्रीवनादिकम्॥ तथा कचपुरोसिडाः साङ्गोपाङ्गमनेकधा। मुसाध्यं प्रत्ययोपेतं साधकानां हितं प्रियम ॥ तत्तनमन्त्रमुखं ज्ञावा कर्त्तवा सिंडिमिच्छता। मन्त्रसाधनकं पूर्वं सिडार्थं साधकोत्तमै:॥

अत यदि इत्यव यत्, एवं पृक्किति इत्यव अपृक्किदिलक्ये बीध्यम्।

# विना मन्त्रविधानेन स सिडिं लब्धवान् भवेत्। <u>षध कृसंचक्रम्।</u>

ग्रय मन्तारंशकां वच्चे मेरतन्त्रे शिवोदिते॥ मन्त्रसाधकयोर्वणीन् खरां इ क्रमतः पृथक्। विधाय सिइसाध्यादीर्गणयेत्रान्त्रवित्तमः॥ यनुस्तारं विसर्गञ्ज जिल्लामूलीयसंज्ञकम्। सहितोचारणात् प्राप्तं कीवलाचरसंयुतम्॥ ग्रपभंशाच्तरं त्यक्का साधकायात्र शोधयेत्। व्यञ्जनैर्वञ्जनं ग्रोधं खरैनीम खरास्तवा॥ श्राद्यमाद्येन संशोध्यं दितीयन दितीयकम्। श्रनेनैव प्रकारेण शेषा शोध्या यथाक्रमम ॥ मायं यदचरं नामा गोपनेन तदादित:। एवं मन्बाच्रं स्थानं मावाङ्वायामयं क्रमः॥ चतुष्कञ्च चतुष्कञ्च परित्यच्यं पुनः पुनः। सिडसाध्यसुसिडारिसंज्ञयैव यथाक्रमम्॥ एवं क्रमेण सर्वेषां मन्त्राणां गणने क्रते। कियत् सिद्धं कियत् साध्यमित्याद्यपि विचिन्तयेत्॥ यन्त्रमन्त्रे भवेदेतत् सिड्यादीनां चतुष्टयम्। स मन्द्रसिद्ध द्रत्युक्तः साध्यो वै सिद्धिवर्जितः॥ रिपुवर्जं मन्त्रयन्त्रं सा सुसिडिरिहोच्यते। सुसिडिमविहीनञ्च यन्तं यच्छतुभूषितम्॥ त्रादिमिडान्तसिडोऽयं मध्यसिडोऽयवा भवेत । ससिडः स तु विज्ञेयः साधकानां फलपदः॥ श्रादावन्ते सुसिडोऽयं वैलोक्यमपि दास्यति। श्रादावन्ते च साध्यो यः सोऽतिकालेन सिध्यति॥ बादावन्ते च यः शवः साधकं मार्यत्यलम्।

सिंड: सिध्यति कालेन साध्योऽय जपहोमतः॥ सुसिद्धः सार्णाद्देवि ! रिपुसाधकमारकः। एवं सन्तारं प्रकं ज्ञाला सुसिडं सिडमेव च॥ साध्यञ्चापि कचिद् याद्यं सिडार्थं मन्तमुत्तमम्। शास्त्राद्वा गुरुवत्तादा ग्राह्येत् साध्येत् पुनः॥ पुरे वा पत्तने ग्रामे कटके सिन्धुसङ्गमे। वने चोपवने तीर्थे महापीठे च सागरे॥ पर्वते सिड्डचे च मूले इचे श्मशानके। गुहामालगरही पुर्वावेते वाऽय महानदे॥ सिडमन्बे शिवस्थाने गरहे वाज्य ययोदिते। दीपस्थानं सुनिश्चित्य कूर्मचक्रे सुसिडिदम्॥ अपवर्गः लिखेडीमान् मध्यतो यावदुत्तरम्। चमीशानपदे चेते वेदास्ते नेत्रकोष्टके। हृदास्ये भुजकुचाङ्गिपुष्यवर्गक्रमात् स्थिताः। यदादि दीपसंज्ञानि तेषु चेताधिपालकः॥ श्रमृतं वृषभञ्जैव शूलराजञ्ज वासुकिम्। ग्रमरं ग्रजरचैव पृज्यं शितयुतं तथा॥ यद् यद् योनिमहाग्रङ्घो ज्ञेयस्तवाननुक्रमात्। मध्यात् पूर्वादितः पूज्या मन्त्रमनेव कथाते॥

"श्रों अमुकचित्रपाल अस्तदेवीपुच्च अवतार ! मुविज्ञां निपितं ग्रह्म श्रों खखललखखखल चचेचपाल ! सर्वेविन्नान् इन इन स्वाहा" । अनेन मलेश सर्वेवेवपाला अस्तादयः पूज्याः ।

यत यत भवेद्दर्गे चेताणामाद्यमचरम्।
तन्मुखं शेषवर्गेषु करकुच्चिक्कित्यना॥
मुखस्यः चोभयेन्मन्त्रो करस्यः खल्पमोगभाक्।
कुचिस्थितो द्युदासीनः पादस्थो दुःखमाप्नुयात्॥

पुच्छिस्यितो बधं बन्धं तत्तदाप्नोति निश्चितम्। दीपस्थानमतः चेत्रं ज्ञात्वा मन्त्रं ग्रचिर्जपेत्॥ चेत्रसाधनमन्त्राणामेकमेवाद्यमचरम्। यदि स्यात् तद् ध्रुवं मन्त्रं चिप्रमेव सुसिध्यति॥

जपमाला भेदा:।

जपमालादिसिडान्ता मन्त्राणां साधनीचिते। अष्टोत्तरमतचैव चतुःपचामदेवताः ॥ सप्तविंग्रमणिवीऽय कर्त्तव्या जपमालिका। उत्तमा मध्यमा हीना विधा प्रोक्ता क्रमेण तु॥ ब्रह्मयस्यान्विता प्रोत्ता मेर्तन्त्रे शिवोदिता। मन्त्रप्रत्यच्वता सिडीं ग्रान्तिके वाऽय पौष्टिके ॥ स्माटिकी मीतिकी वार्जप प्रोतव्या सितसूबकै:। सर्वकामप्रसिद्धार्थं जपेद्रुद्राचमालया ॥ धर्मार्थकाममोचार्यी जपेत् पद्माचमालया। सारखते प्रवालोखा वश्ये सैव प्रकीत्तिता॥ पद्मरागमयी वाऽपि समस्ते पुचजीविका। वेगादुचाटयेच्छत्न महादेवेन भाषितम्॥ गर्दभस्य ह्यधोदन्तैर्भणिं क्रत्वा च बालकीः। जपमाला प्रकर्त्तव्या शत्रुणां मारकर्मणि॥ नामा पुल्यस्य सूत्रेण प्रीतव्या कार्य्यसिंदिदा। प्रेतदन्तैरथोद्भृता कत्तेव्या जपमालिका॥ साध्यदेहनखैः केशैः ग्रथिता देवकर्मणि। मणिभिः ग्रङ्कसम्प्रतेरचमालार्थसाधने। निधानयचिणीसिबैर प्रोतव्या सितस्त्वकै:॥

जपप्रकाराः। अङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यान्तु जपेदुत्तमकर्मणि।
अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यान्तु जपेदाक्कष्टकर्मणि॥

तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन विदेषोच्चाटने जपः । कनिष्ठाङ्गुष्ठकाभ्यान्तु जपेन्मारणकर्मणि॥

नपसमयनियम:।

उदयाद यामपर्य्यन्तं हेमन्ते पौष्टिके जपेत्। यामद्यं प्रवेरात्रे शिशिरे मारणं जपेत्। वसन्ते प्रहराद्रईं यामदयमिते जपेत्॥ कार्थमाकर्षणं तत्र मन्त्रैरिष्टस्य वस्तुनः। ग्रीमे ततीयके यामेऽभिहितो देवकर्मण ॥ ततोऽस्तमयपर्थन्तमुचाटे तोयदागमे। अर्डरावे निशान्ते च जपेच्छरदि शान्तिने। यमतम्। यस्मिन् कस्मिनृतौ कार्य्यं मन्त्राणां साधनं ग्रुभम । पूर्वोत्ले वश्यपुष्टार्घं मध्याक्ने प्रीतिनाशनम्॥ उचाटमपराह्वे तु सन्धायां मारणं तथा। सोमदेवगुरूपेता पौष्टिकेऽभिह्तिता वधैः॥ श्रष्टमी नवमी चैव दश्येवादशी तथा। ग्रक्रभानुसुतोपेता प्रशस्ताऽऽक्षष्टकर्मणि॥ श्रष्टमी पीर्णमासी च प्रतिपन्नवमी तथा। ग्रक्रभानुसुतीपेता प्रशस्ता देपकर्मणि॥ ततसतुर्दभी क्षणा शनिवारे तथाऽष्टमी। उचाटनेऽतिग्रस्तेयं जपे ग्रङ्करभाषिता ॥ यमावास्याष्ट्रमी क्षरणा ताहशी च चतुर्दशी। भानुना तैत्सुतोपेता भूसुतेनाय संयुता॥ मारयेद्द्वतं होमाद्रचितं श्रभुनाऽपि वा। एवं सिध्यन्ति कर्माणि तिथिवारानुसारतः॥

जपासनस्थानानि ।

ययोक्तासनमारूढ़ी जपं मन्त्रे समाचरेत्।

क्र्याजिनास्वरे रक्ते चतुरङ्गस्रूङ्गतः॥ चतुरसं दिहस्तञ्च सुदृढं सृदुनिर्मितम्। तवीपरि नियुज्जीत योगमन्तस्य सिड्ये॥ वदनयन् खपन् वाऽन्यमाययन् किमपि सारन्। चुत्तुड्जुभणहिकादिविकलीक्ततमानसः॥ मन्वसिद्धिं न चाप्नोति यस्माद् यत्वपरो भवेत्। व्याघ्रचर्मासनं वस्ये मोचे च धनसाधने ॥ यासटी यद् यदिष्टं स्थादारणं शान्तिपौष्टिके। उचाटे माहिषं चर्म मार्णे नरकेशजम्॥ शान्तिके खस्तिके प्रोत्तं पीष्टिके पद्मजासनम्। श्राक्तष्टी पार्षिकं ज्ञेयं विदेषे कुक्टासनम्॥ यर्डस्तिकमुचाटे यर्डीसानन्तु मारणे। महाका त्याय दुर्गाया वश्ये उत्तं शिवालये॥ त्राक्तष्टी नियमो नास्ति विदेषस्य सम्मानके। उच्चाटनं कुलिते च शून्ये देवालयोपरि॥ रमशाने कालिकाचेचे प्रेतमारु मन्ववित्। दिचणाभिमुखो भूला दन्तैः सम्पोद्य चाधरम्। रिपुं स्मृत्वा जयं कुर्वन् सप्तरात्रेण मारयेत्॥

#### वासनास्थानध्यानादय:।

वासनाऽत्र यथा प्रोक्ता कर्मषट्कानुरूपिणी।
ग्रान्तिके सीम्यरूपा सा पौष्टिके वय्यकर्मण।
काकोलूकादिभिः गतुं भच्यमाणं सतौ स्मरेत्॥
दत्येवं वासना कार्य्या स्थानध्यानमधीच्यते।
चतुष्पताम्बुजे गुन्नो कुर्य्यान्मूले मनः स्थिरम्॥
रसिंसिंडं तथा वय्यमाक्षष्टिं कालवच्चनम्।
जपनाद्विषभूतादि-कार्यारक्षं गमागमी॥

सारखतं स्तमानञ्च वामवाहेन साधयेत्। हृत्पद्मकार्णिकां ध्यायन् स्थिरचित्तेन योजयेत्॥ लभते पौष्टिकों सिद्धं शत्रचाटनमारणे। विदेषे रविवाहेण वरनारीविमोहनम्॥ शान्तिकं पौष्टिकं वश्यं साधयेच्छङ्गरीदितम्। भ्वोमध्ये दिपते च दच्चवाहिण साधयेत्॥ चुद्रविद्या महाविद्या मोचकीतृहलानि च। यस्य मन्त्रस्य यद्यानं ध्यायेत् स्थानगतं वुधः॥ त्रयवा सर्वमन्त्राणां ध्यानं सिडिकरं शृणु। कचं विन्दुगतं ध्यात्वा प्राण्यितिसमुखितम्॥ गुडस्फटिकसङ्कागं गान्तिके पौष्टिके ग्रुभे। सारखते रसे मोचे खेचरखे रसातले॥ सा रता सर्ववश्येषु स्तमाने मोहनेऽपि च। श्राकर्षेषे ब्रह्मवादे कीतुके सिंडिदायिनी॥ पीता तृचाटने देपे क्रच्णा मारणकर्मण। एवं ध्यात्वा जपं कुर्य्यानानसोपां श्वाचिकम् ॥

#### जपहोमादिभेदा:।

शान्तिक पौष्टिक मोचे मानमं जपमाचरेत्। वश्याक्षटावृपांश स्याद्वाचिकं चुद्रकर्मणि॥ शनै: शनै: सुविस्पष्टं न दुतं न विलम्बितम्। जपं सप्रणवं कुर्यात् सर्वकर्मार्थेसिडये॥ जपप्रारम्भकाले तु मन्तायार्थं प्रदापयेत्। नातिरिक्तच न्यूनच जपं कुर्यात् सुनिश्चितम्। जपस्य च दशांशिन होमं कुर्यादिने दिने। श्रयवा लचपर्यन्तं होम: कार्यो विपयिता॥ गत्यचीराज्यमधुभिवध्यपौष्टिककर्मणि।

विकोणे वृत्तकुण्डे वा वायव्याभिमुखो इनेत्॥ लवङ्गं श्रीफलं जाती प्रयङ्गं किंग्रकं तथा। पञ्चद्रवैभितं होमं कुर्यादाक्रष्टकर्मणि॥ लवक्नैकेन वा कुर्यात् तया तिर्यगुदक्ष्यः। कार्या समस्ततन्वोक्ता तथा वाराटवीजकम्॥ विद्वेषे जुडुयामन्त्री राचसीदिक्कताननः। चीडुम्बरवटाश्वस्यप्सचवीजैर्घृतप्सतै:॥ उचाटने मत्यकुर्ण्डे जुहुयात् पावकाननः। अजासर्पिस तत्चीरं वीजं कार्पाससम्भवम्॥ दग्धास्त्रिनरमांसञ्च साध्यरोमनखास्त्रया। अष्टोत्तरसहसञ्च वजकुर्ग्डेऽनलोस्यिते। दिचणास्यस्तु पञ्चले जुहुयानारयेद्रिपून्॥ ग्रथवा यत यद् द्रव्यं प्रोत्तं मन्त्रस्य सिद्यये। तथा होमः प्रकर्त्तव्यः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥ पूजियत्वाऽय चुलाऽय जप्ता ध्यात्वाऽय देवताम । मृदु सोष्णं सुपक्षच भुद्धीत लघुभोजनम्॥ यद्या तद्या परित्यच्य दुष्टानां कुत्सितोदनम्। शस्तमनन्तु भुञ्जीयाज्जिताता सिंडिभाग् भवेत्॥ अन्यया भोजने दोषः सिडिहानिय जायते। दति सर्वं शिवेनोत्तं मन्त्राणां साधनं शुभम्॥ अनुष्ठितो यथा न्यायं यदि सन्त्रो न सिध्यति। पुनस्तावदनुष्ठेयं ततः सिद्दो भवत्यलम् ॥ पुनस्वनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिडो न जायते। उपायास्तव कर्त्तव्याः सप्त ग्रङ्गरभाषिताः॥

श्विकीपायानराणि। द्रावणं बोधनं वस्यं पीड़नं शोषपोषणम्।

दहनान्तं क्रमं कुर्वन्ततः सिडी भवेद धवम ॥ द्रावणं वारुणे वीजे यथनं क्रमपोषतः। तनात्राद्यन्तमालिख्य शिलाकप्रकुद्भमै:॥ उग्रीररीचनाभ्याञ्च मन्त्रं संग्रियतं लिखेत। चीराज्यतीयमधुभिर्मध्ये तं लिखितं चिपेत्॥ पूजनाज्जपनाडोमाद्रोचितः सिंडिदो ध्वम । द्रावितोऽपि न सिड्येट् बोधनात्तन्तु कार्येत॥ सारस्वतेन वीजेन सम्पुटीक्तत्व सञ्जपित्। एवं बुद्दी भवेत सिद्धी नी चेत्तर्हि वशीक्त ॥ चारतचन्दनं क्षष्ठं हरिद्रां मदनं शिलाम। एतेस्त मन्त्रमालिख्य भूजीपत्रे सुशोभने !॥ धार्यं कग्छे भवेत् सिडिर्वश्यमेतत् प्रकीर्त्तितम् । वशीक्ततो न सिड्येत पीडनं तस्य कार्यत ॥ प्रधरोत्तरयोगेन यदा तु परिजयते॥ ध्यायी तदैव तं तहदधरोत्तरकृपिणी॥ विद्यामादित्यमुखे तु लिखिला कस्य वाऽिष्टुणा॥ तया भूतेन मन्त्रेण होम: कार्यो दिने दिने। पौड़िते लज्जयाविष्टः सिडः स्यादाय पोषयेत्॥ नित्यायास्त्रपुरं वीजमाद्यन्ते तस्य योजयेत । गोचीरैर्मधुना लिख्य \* विद्यां पाणी विधारयेत्॥ पोषितोऽती भवेत सिडो नो चेत कार्यस्य शोषणा। दाभ्यां दाभ्याञ्च वीजाभ्यां मन्त्रैः कुर्यादिदर्भणम्॥ एषा विद्या गले धार्या लिखिला वटभसाना। शोषितोऽपि न सिडयेद्दहनीयोऽग्निवीजतः॥

अव लिखिला स्थाने लिखेलावें पदं बीध्यम।

श्राग्नेयेन च वीजेन मन्त्रस्यैकैकमच्त्रम्। श्राद्यन्तमध जर्ड्वन्तु योजयेद्दाइकर्मणि॥ ब्रह्मद्वचस्य तैलेन मन्त्रमालिख्य धारयेत्। कण्ढदेशे ततो मन्त्रसिद्धिः स्याच्छङ्करोदितम्। दृत्येवं सर्वमन्त्राणामुपायः श्रम्भनोदितः॥ इति शीसिद्दनागार्जुनविरिचिते कचपुटे मन्त्रसाधनं नाम प्रथमः पटलः।

## सर्ववशीकरणम्।

एकचित्तस्थितो मन्त्री मन्त्रं जप्वाऽयुतद्वयम । ततः चीभयते लोकान् दर्भनादेव साधकः ॥ १ ॥ विदारीवटमूलन्तु जलेन सह घर्षयेत्। विभूत्या संयुतं मन्त्री तिलकं लोकवश्यकत्॥ २॥ पुष्ये पुनर्नवामूलं रुद्रदन्तीयमूलिका। यववीजं तथा बड्डा करे सप्ताभिमन्त्रितम्। पूज्यो भवति सर्वेत्र मन्त्रमत्वेव कथ्यते॥ "श्री ऐं पुरं चोभय भगवति ! गम्भीरय बं खाहा"। जहा सिडिमवाप्रोतीमनान्त्रमयुतद्वयम् ॥ ३॥ उद्गान्तपत्रं मिच्चष्टां ककुभं तगरं समम्। खाने पाने तथा स्पर्शे दत्ते वश्यं भवत्यलम्॥ ४॥ सिंहीमूलं हरेत् पुष्ये कट्यां बड्डा जगिष्यः। निशि क्षणचतुर्द्श्यां महानीलीं श्मशानतः। उडुत्य नरतैलेन ग्रज्जने लोकवश्यक्तत्॥ ५॥ तन्मूलं खस्य ग्रुक्रेण ग्रञ्जने लोकवण्यकत्। तन्मूलं बन्धयेइस्ते सर्वनोकप्रियो भवेत्॥ ६॥ चन्द्रपुष्ये समुबृत्य ब्रह्मदण्डीयमूलकम्। भोजयेत् सर्वसत्त्वानां वशीकरणमहुतम्॥ ७॥

उल्रूकहृदयं तुल्यं कुमारीरोचनं सुधीः। श्रञ्जनं लोचने वश्यमानयेद्भुवनत्वयम्। "श्री नमो महायचिणि श्रमुकं मे वशमानय स्वाहा।"

ना सहायायाचे असुपा म पर्यमाणय स् मन्त्रस्य पूर्वं ह्ययुतं सुबोधः जम्नैव श्रान्तासनग्रडचित्तः। उद्गान्तपत्नादि सुयोगसङ्घान् श्रताभिमन्त्रात्मफलान् करोति॥ ८॥

सर्वेषामेव मन्त्राणां मन्त्रध्यानं पृथक् पृथक् । उक्तस्थाने यथासंस्थमनुक्ते त्वयुतं जपेत् ॥ ८ ॥ स्गर्शोर्षे तु संग्राच्चं सुरक्तकरवीरकम् । नवाङ्गलं कीलकन्तु सप्तवाराभिमन्त्रितम् । यस्य नाम्ना खनेद्वमौ स वश्यो भवति भ्रवम् । "श्रों ऐं स्वाङ्ग" प्रथममयुक्तव्यः ॥ १० ॥

त्रपामार्गस्य कीलन्तु मूलमुलार्थ्य त्राङ्गलम्। सप्ताभिमन्त्रितं यस्मिन् ग्टहे चिप्ते वशी भवेत्॥

"श्रीं मदनकामदेवाय फट् खाहा।"

श्रतमष्टीत्तरं जप्ता पूर्वमेवाभवन्नरः।

सिंदो भवति तत्सत्यं तिलकं कुरुते वश्रम्॥ ११॥

खयभृज्ञसमं वस्त्रे ग्रहीत्वा विषये दहेत्।

श्रिमीमस्य वारे वा तद्भस्य तिलकं क्रतम्।

वश्रं नयति राजानसन्यलोकेषु का कथा॥

"श्री नमी भैरवीतरं श्राज्ञाकाले कमलमुखे राजमोहने प्रजावशीकरणे स्त्रीपुरुषरञ्जनि लोकवश्यमोहनि ! मे सीऽइं श्री गुरुपसादेन"॥ १२॥

> रात्री क्रण्चतुर्दश्यां लाङ्गलीमूलमुदरेत्। खेतच्छगलिकागर्भे शय्यायां नरतेलकम्।

चीद्रतालकसंयुक्तं तिलकं सर्ववश्यक्तत्॥ १३॥ त्रजमोदस्य मूलेन तुरगीगर्भश्रयया। इरितालञ्च सम्पिष्य गुटिका मुखमध्यगा। यद् यस्माद् याचते वस्तु तत्तदेव ददात्यसी॥

"श्री श्रस्मकर्णेश्वरि दुवेली श्राइकेशिकजटाकलापे। ढकार फेत्कारिणि! स्वाहा"॥ १४॥

वटपत्रं वर्हिशिखातुल्यं स्याक्षोकवश्यक्तत् ॥ \*
विणुक्तान्तां सङ्गराजं रोचनं सहदेविकाम्।
खेतापराजितामूलं कन्याहस्ते प्रलेपयेत्।
वारिणा तिलकं कुर्यात् सर्वलोकवशङ्करम् ॥ १५ ॥
रक्ताश्वमारपुष्पञ्च कुष्ठञ्च खेतसर्षपम्।
खेताकंमूलं तगरं खेतगुञ्जाञ्च वार्तणीम् ॥
पुष्ययुक्ताऽसिताष्टस्यां चतुर्दश्यां तथाविधम्।
पेषयेत् कन्यकाहस्ते १ तिलकं सर्ववश्यक्तत् ॥ १६ ॥
श्रपामार्गस्य मूलन्तु पेषयेद्रोचनेन तु।
ललाटे तिलकं कत्वा वशीकुर्याञ्चगन्नयम्॥

"श्रीं नमो वरजालिनी सर्वलोकवशङ्करी स्वाहा"। श्रयं मन्त्र उक्तयोगानाम्। श्रष्टीचरमहस्रजपात् सिज्धिः॥१७॥

उन्नच चुरादाय गोरोचनसमन्वितम्। वारिणा सह दातव्यं पानादृश्यकरं परम्॥ १८॥ उन्नूकस्य तु कर्णो दी चटकस्य विलोचनम्। तच्चूणं तिनके पाने भच्चणे गन्धपुष्पयोः। चिपेदा मस्तके यस्य स वश्यो जायतेऽचिरातु॥ १८॥

<sup>\*</sup> अत्र अन्वये तिलकमिति योजनीयम्।

<sup>†</sup> जन्यकाइले इत्यव जन्यकाइसेनेति पदम अन्वये योज्यम ।

मांसं याह्यमुलूकस्य कुङ्गुमागुरुचन्दनम्।
गोरोचनसमं पिष्टं भचे पाने जगद्दशम्।
स्तियो वा पुरुषो वाऽपि सहस्रजपनाङ्गवेत्॥
"श्रीं न्नीं न्नः न्नः न्नेः फट् नमः"॥ २०॥
कातोपवासो ग्रह्लोयात् समृताञ्चेन्द्रवारुणीम्।
उत्तराभिमुखेनैव कुट्टयेत् तदुदूखले॥
तत्कल्कं विकटुं तृल्यमजामूत्रेण पेषयेत्।
कायागुष्कां वटीं कुर्यात् सा वटी रक्तचन्दनम्।
घष्टाऽय खाङ्गुलीं लिखा तया स्पष्टे जगद्दशम्॥ २१॥
सा वटी देवदारुश्च तुल्यञ्च सितचन्दनम्।
जले घष्टा विलेपाय दत्तं यस्य भवेदशः॥ २२॥
सा वटी रोचनं तुल्यं कत्वा तोयेन पेषयेत्।
श्रनेन तिलकं कत्वा सर्वत्र विजयी भवेत्॥
मन्नन्तः—"श्रीं नमः शची दन्द्राणी सर्ववशङ्करी सर्वाक्र-साधिनी खाला"। श्रय महस्त्रे जत्ने पूर्वगिगिनिङः॥ २३॥

क्षण्यचित्रदेश्यामष्टस्यां वा उपोषितः।
विलं दत्त्वा समुदृत्य सहदेवीं सुचूर्णयेत्।
तास्त्र्वेन तु तचूर्णं योज्यं वश्यकरं परम्॥ २४॥
रोचना सहदेवीस्यां तिलको वश्यकारकः।
मनःश्चिला च तन्स्र्लमञ्चयेत् सर्ववश्यक्तत्॥ २५॥
तास्त्र्वान्तय सप्ताहं सहदेवीं प्रयोजयेत्।
राजा वश्मवाप्नोति सर्वलोकेषु का कथा॥ २६॥
शिरसा धारयेत्तच चूर्णं सर्वत्र वश्यकत्।
मुखे चिष्ठाऽय तन्स्र्लं कथां बह्वा च कामयेत्।
या नारी सा भवेदश्या मन्त्रयोगेन नान्यथा॥
मन्त्रम्।— "श्रों नमो भगवित मातङ्गेश्विर सर्वमुखरञ्जनि

सर्वेषां महामाये मातङ्गिकुमारिके ! लेपे लघु लघु वशं कुरु कुरु स्वाहा"। महस्रजप्ते उन्नयीगानां सिद्धिः॥ ২৩॥

सुनिर्वातचिताऽङ्गारं शृगालक्धिरै: सह । यस्यैव शिरसि चिप्तं स वश्यो भवति भ्रवम् ॥ २८॥ शिखिपत्तञ्च गोरभा मोहिनी रोचनी शिखा। पेषयेत् कन्यका इस्तैः स्पर्शे पाने जगदशम्॥ २८॥ खेतापराजितामूलं चन्द्रयहण उडुतम्। अञ्जिताची नरस्तेन विलोकीलोकवश्यकत्॥ ३०॥ मेघनादस्य मूलन्तु वक्कस्यं वश्यकारकम्। परवादी भवेनमूकीऽघवा याति दिगन्तरम् ॥ ३१॥ याद्यं क्षणाचतुदंश्यां खेतगुञ्जीयमूलकम्। ताम्बूलीन प्रदातव्यं सर्वलीकवग्रङ्गरम् ॥ ३२॥ शिलारीचनतन्मूलं वारिणा तिलके क्वते। सभाषणेन सर्वेषां वशीकरणमुत्तमम् ॥ ३३॥ स्वर्णविष्टिततन्त्रूलं समुद्रं कारयेद्रुधः। तद्दाच्यादरमायाति प्राणैरपि धनैरपि॥ ३४॥ चर्वयित्वा तु तन्मूलं तेनैव तिलकं क्ततम्। दृष्टमाचे वग्रं याति नारी वा पुरुषोऽपि वा॥

मलन्। .. "श्रीं वज्रक्तिरणे शिवे रत्त रत्त भगवित ममादि श्रमृतं कुरु कुरु स्वाहा"। उक्तयीगानां महस्त्रपे सिव्धिः॥ ३५॥ क्रतोपवासो मन्त्रो तु पृष्ये क्रप्णाष्टमीयुते। पृष्यभृपवलिं दत्त्वा छतेनैव तु दीपयेत्।

दत्त्वा मन्त्रं जपेत्तत्र श्रष्टाधिकसहस्रकम् ॥

श्रव मन्तः।—"श्रीं खेतवर्णे सितपर्वतवासिनि श्रप्रतिहिते

मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः खाहा"।

खेतगुच्चाफलं ग्राद्यं तत् स्थानात् सृत्तिकायुतम्।

ष्टतेन लेपयेत् सर्वं नवपात्रे तु शोभने ॥ चिष्ठा क्रणचतुर्देश्यामष्टस्यां भुवि विच्चिपेत्। समन्त्रेणोदकेनेव सिच्चेन्नित्यं फलाविध ॥ चव मन्तः।—"श्रीं खेतवर्णे सितवासिनि खेतपर्वतिनवासिनि सर्वेकार्याणि कुक् कुक् श्रप्रतिहिते नमो नमः स्वाहा"।

पुनः पुष्ये ग्राचिर्मूत्वा सोपवासी जितिन्द्रियः।
धूपदीपोपहाराद्यैन्धांसं क्षत्वा समुद्रित्॥
मन्त्रः । श्रीं खेते हृदयाय नमः। श्रीं पद्ममुखे शिरसे खाहा।
श्रीं नमः सर्वज्ञानमये शिखायै वषट्। श्रीं नमः सर्वग्रितामत्यै
कवचाय हुं। श्रीं नमः नेत्रत्याय वौषट्। श्रीं परमन्त्रभेदने
श्रस्ताय पर्। सर्वाखङ्गानि नमोऽन्तादीनि। द्रित न्यासं
क्रत्वा ततो मूलमन्त्रेणोत्पाटयेत्। "श्रीं नमो भगवित ह्रीं
खेतवासे नमो नमः स्वाहा"।

त्रस्य च मूलमन्त्रस्य पूर्वमेवायुतं जपेत्। दशांशं हवनं कुर्यात् तिलदूर्वाष्टतस्तम्॥

एवं कत्वा समुद्रुत्य गुज्जामूलं सुसिद्धिद्म्।
तन्मूलं चन्दनं खेतं लेपः स्याद्ययकारकः।
तन्मूलं मधुना युक्तं लेपः सर्वत्न वय्यकत्॥ ३६॥
मनःशिलाञ्च तन्मृलं वारिणा खेतचन्दनम्।
घष्टा तत्तिलकं कुर्यात् सर्वलोकवयद्भरम्॥ ३०॥
तन्मूलं सर्पपं खेतं प्रियङ्गञ्च समं समम्।
चूर्णितं मस्तके यस्य चिपेत् तद्दय्यकद्भवेत्॥
मन्तु।—"श्रीं नमः खेतगात्ने सर्वलोकवयद्भरिदुष्टान् वर्यं कुरु
कुरु मे वसमानय स्वाहा"। चक्तवीमानामधीत्तरस्वनित्ते विद्याः॥ ३८॥
वासामूलं प्रियङ्गञ्च कुष्ठैले नामकेसरम्।

खेतसर्पपसंयुक्तो धूपः सर्ववगङ्गरः॥

"श्रीं कामिनि मार्धाव नमः"। अनेन धूपमिनन्त्रवेत्। श्रया-नेन मन्त्रेण शतमभिमन्त्रितं पुष्पं यस्य दीयते, यस्य च नाम्ना नित्यं सप्तशासमन्नं भुज्यते, सप्तदिनेन स वश्यो भवति। मनन्तु।—"श्रीं कटंकटे घोरकृपिणि! ठः ठः"। श्रस्य मन्त्रस्य उक्तसिद्ध्य ॥ पूर्व्यमन्त्रवत्॥ ३८॥

"श्री घर्टाकर्णाय नमः"। श्रस्य पूर्व्वमेवायुतं ज्ञाति। उनेन मन्त्रेण पाषाणं सप्ताभिमन्त्रितं क्वता पत्तने वा ग्रामे चिपेत्, वा तेन पाषाणेन वृद्धं ताड़येत्। ग्राममध्ये श्रप्रार्थितं सुखभीगं प्राप्नोति॥ ४०॥

कन्दवाधो जपेत्तचहयं मन्त्रस्य साधकः। ष्टतात्तर्गुगुलैर्होमेदेवी सीभाग्यदायिनी। त्रैलोक्यं वशमायाति स्षष्टमाचे न संशयः॥

"लीं जनके स्वाद्या"॥ ४१॥

यचमन्त्रेण संताद्यः सप्तधा चीरभूत्रहः। तत्काष्ठचैव संयाद्यमेकविंयतिमन्त्रितम्। धारयेद्दिणे कर्णे अन्नमपार्थितं स्मित्॥

"श्रों महायचसेनाऽधिपतये माणिभद्राय श्रप्रार्थितमत्रं देहि मे देहि खाहा"॥ ४२॥

> श्रव्यत्वस्मारुढः पूर्वमेवायुतं जपेत्। करवीरकपुष्पञ्च सप्तमन्वाभिमन्त्रितम्। तत्पुष्पं दीयते यस्य स वश्यस्तत्चणाइवेत्॥

"श्रीं नमी भगवते रुट्राय सिडरूपिणे शिखिवन्य सर्व्वेषां शिवमस्तु शिवमस्तु हन हन रच रच सर्वभूतेभ्यय नमः" ॥४३॥

उत्तिसिद्धयेत्यतः परं अन्वये प्रयोगः योज्यः।

वासी पिधाय कीसुम्मं रात्री मन्त्रायुतं जपेत्। नरनारीनरिन्द्राणां सततं चीभकारकः॥ "श्रीं नमी भूतनायाय यं भूपालं वशं कुरु कुरु भुवनचीभक सर्वेलीकान् चोभय चोभय स्में वीं वीं ह्नं स्वाहा"॥ ४४॥ रात्री दशसहस्नाणि जप्तव्यं पद्मकेशरैः। सितामधुपयो मिन्यैः क्षतहोमो दशांशतः॥ रञ्जकश्रेष्टते लोकान् दर्शनात् दृष्ठिकारकः॥

"श्री ऐं श्रमुकं रज्जय क्रीं खाहा"॥ ४५॥
भुक्षोच्छिष्टो जपेन्मन्ती पूर्व्वमेवायुतं ततः।
एकान्ते स्मरणान्मन्ती तत्रैवायाति भोजनम्॥

"श्रों उच्छिष्टचाण्डालि वाग्वादिनि राजमीहिन प्रजामीहिन स्त्रोमोहिन श्रान् श्रान् वे वे वायु वायु उच्छिष्टचाण्डालि सत्य-वादिनि की शिक्त पुरै"॥ ४६॥

मन्त्रलचिमिदं जप्ता भूतनायः प्रसाध्यते । खं भूपातालभूतानि वशानि कुरुते सारन् ॥ "श्री नमो भूतनायाय समस्तभुवनभूतानि साधय हं" ॥ ४०॥

> द्गति यौसिद्धनागार्जुनविरिचते कचपुटे सर्व्ववशीकरणं नाम दितीय: पटल:।

### अथ राजवश्यमाइ।

कुड़्मं चन्दनचैव रोचनं ग्रिमियितम्। गवां चौरेण तिलकं राजवश्यकरं परम्॥ "त्रों क्लीं सः त्रमुकं मे वग्रं कुरु कुरु खाहा"॥ पूर्व्वमेव सहस्रं जक्षा ततोऽनेन मन्त्रेण सप्ताभिमन्त्रितपूर्वं तिलकं कुर्यात्॥१॥ चक्रमर्दस्य मूलन्तु हस्तर्चे हि समुद्वरेत्।
राजदारे भवेत् पूज्यो हस्ते बद्दा च वादिजत्॥
"श्रीं सुदर्शनाय हुं फट् स्वाहा" पूर्वमेव महस्तवि सिद्धिः॥२॥
पूर्वमेवायुतं जम्ना चण्डमन्त्रस्य सिद्वये।
ततो ह्योषधयोगाय कुरू सप्तासिमन्त्रितम्।
सिध्यन्ति सर्वकर्माणि पूर्वमेव प्रभावतः॥

"श्रीं क्रीं रत्तचामुण्डे जुरु जुरु श्रमुकं मे वशमानय खाहा"। श्रयं चल्डमनः सर्विसिडी भवति ॥ ३ ॥

मिश्वष्ठा कुडुमश्चैव यजमीदा कुमारिका।
चितिभस्म खरतञ्च मारयेत् सीयरेतसा॥
पुष्ये च विद्यां काला भन्ने पाने च दापयेत्।
स्पृष्टे वा राजवश्यं स्थाचण्डमन्त्रप्रभावतः॥ ४॥
स्वेतापराजितामूलं चन्द्रयहण उहृतम्।
प्रभूणां भोजने देयं चण्डमन्तादशङ्करम्॥ ५॥
उत्तरायां समादाय प्रातरश्वस्त्रप्रक्षम्।
करे बढं तु सर्वेत्र राजद्वारे जयावहम्॥ ६॥
धात्रीत्रभ्रं भरण्यान्तु विश्वाखामाम्ब्रप्नकम्।
पूर्वेप्पलानीनच्चे याद्यं दाडिम्ब्रप्नक्षम्।
करे बढ्ढा भवेदस्यो यदि राजा पुरन्दरः ॥ ०॥
यश्चेषायां ग्रहीत्वा तु नागकेश्वरत्रभ्रकम्।
करे बढ्ढा भवेदस्यो यो राजा पृथिवीपतिः॥ ८॥
मिष्टिष्याङ्कोलतेलेन रक्तमण्डलमूलकम्।
सप्ताभिमन्त्रितं क्रत्वा तिलकं राजवश्यक्वत्।

उत्तयोगानां चण्डमन्त्रेण सिंडि: ॥ ८ ॥

 <sup>\*</sup> इतीऽयतयास्त्रंय प्रयागदये "करे बहा" इति पदात्वरं वर्त्तमानस्येतिपद्र अन्वये योजनीयम्।

होमयेत् कटुतैलेन रक्तचन्दनराजिकाम्।
सहस्राइतिमानेण राजानं वशमानयेत्॥ १०॥
सर्षपं छागरक्तेन हुला रात्री खन्ने ग्टहे।
सङ्गा च पूर्व्ववहस्यो राजा भवति नान्यया॥ ११॥
मधना तस्य पुष्पन्तु रात्री हुला च पूर्व्ववत्।
चक्रवर्त्ती भवेदस्यसण्डमन्त्रप्रभावतः॥ १२॥

चय परवादिनय:।

गोजिहा शिखिमूलं वा मुखे शिरिस संस्थितम् ।
कुरुते सर्व्ववादेषु जयं पुष्ये समुद्रुताम् ॥ १ ॥
मार्गशीर्षे तु पूर्णायां शिखिमूलं समुद्रित् ।
बाही शिरिस वा धार्यं विवादे विजयो भवेत् ।
बन्धनान्मुच्यते तिस्मन् शिखाबद्दे न संग्रयः ॥ २ ॥
मेघनादस्य मूलन्तु वक्तस्यं तारविष्टितम् ।
परवादी भवेन्मूकोऽयवा याति दिगन्तरम् ॥ ३ ॥
निश्चि क्षण्यचतुर्देश्यां महानीलीं श्मशानतः ।
श्रादाय वन्धयेद्दस्ते विवादे विजयो भवेत् ।
श्रोतगुञ्जान्वितं मूलं मुखस्यं दुष्टतुण्डिजत् ।

उक्तयोगानां चल्डमन्त्रेण सिद्धिः ॥ ४ ॥

विसन्ध्यं त्रिदिनं न्यस्तं यस्य मूर्फ्ति करस्थितम् । भक्तचेटकनामाख्यं स जयं लभते नरः । "श्रीं नमी भिक्ता जय धूलि धूसरि ऋर रणि जय वाग्ध्यं प्रनुस्वाहा" ॥ ५ ॥

श्रय दुष्टदमनप्रयोग:।

ग्रक्तपचयुते पुथे गुञ्जामूलं समुद्वरेत्। बद्घं ग्रिरिस ग्रय्यायां चीरबाधाहरं परम्॥१॥ धात्रान्तु ब्रभ्नकं याम्चमस्नेषायां प्रयत्नतः। हस्ते वर्षं भयं हन्ति चौरव्याघ्रादिराजकम्॥ २॥

श्राद्रीयामाहृतं वंश्रव्रभ्रकं कर्णधारितम्।

विजयं प्रापयेद् युद्धे श्रद्धमध्ये न संश्यः॥ ३॥

श्रद्धोलतैलसिभन्नं कुर्यादाम्नातचूर्णकम्।

श्रनेन स्षष्टमानेण महाहस्ती वशो भवेत्॥ ४॥

ग्रहीत्वा हस्तनचने चूर्णयेत्तु कुकुन्दरीम्।

तत्त्विपेन गजा यान्ति दूरतो नतसमुखाः॥ ५॥

विव्वपुप्पस्य चूर्णन्तु कुकुन्दर्यास्य तत्समम्।

तिक्तिप्राङ्गं नरं दृष्टा दूरे गच्छन्ति कुन्नराः॥ ६॥

मूलं मक्तंटवत्यास्य बाह्ये वहन्न मूर्वनि।

दृष्टदन्तिभयं न स्याद् युद्धादिभयनाशनम्॥ ७॥

श्रते त्रिसद्वानार्त्तन्वरिष्वते कन्नप्रदे गजनम्।

श्रते श्रीसद्वनागार्त्तन्वरिष्वते कन्नप्रदे राजनमीकरणादि

वतीय: पटल: ।

## त्रय स्तीवभ्यमाह।

पारावतस्य हृच्चः स्वरक्षं रोचनं तथा।
जिह्वामलसमायुक्तमञ्चने स्त्री वशीभवेत्॥१॥
रोचनं चितिभस्मापि नरतेलं स्वश्रक्रकम्।
पिष्टे पिष्टा प्रदातव्यं सद्यो वश्याः परस्त्रियः॥२॥
चितिभस्म वसा कुष्ठं तगरं कुङ्कमं समम्।
चूर्णं स्त्रीश्वरसि चिष्ठा पुरुषस्य तु पादयोः।
स्वदासदासतां याति यावज्जीवं न संश्यः॥३॥
उन्मत्तं मातुलुङ्गञ्च स्वरक्तं मलपञ्चकम्।
चिटिका हृदयञ्चैव भन्ने पाने स्त्रियो वशाः॥४॥

तिंगत् चण्कवीजानि षोड्गेन्द्रयवास्तया। गोदनां नरदन्तञ्च पिष्टा तैलीन लेपयेत्। बलाटे तिलवां काला वशीकुर्यात् तिलोत्तमाम्॥ ५॥ टङ्कणं मध्यष्टी च रोचनं चितिभस्म च। काकजिह्वासमं चौद्रं तिलके स्त्री वशीभवेत्॥ ६॥ पुष्ये पुष्पञ्च संग्राद्यं भरखान्तु फलं तथा। शाखाञ्चेव विशाखायां हस्ते पत्रं तथैव च॥ मूले मूलं समुब्त्य क्षणोगमतस्य च क्रमात्। पिट्वा कर्पूरसंयुक्तं कुङ्गुमं रोचनं समम्। तिलकी स्त्री वर्ग याति यदि साचादरुखती॥ ७॥ काकजङ्घां वचां कुष्ठं विल्वपत्रञ्च कुङ्गमम्। खरत्तमंयुतं भाले तिलकं दारवश्यक्तत्॥ ८॥ काकजङ्घां वचां क्षष्ठं ग्रुक्रशोणितसंयुतम्। श्मगाने रोदिति सदा बाला दत्तोक्तभोजना ॥ ८॥ कलविङ्गिशरस्तुल्यं खेतार्कस्य च मूलकम्। मिञ्जिष्ठा खदिरं पाने दत्ते कान्तां वर्णं नयेत्॥ १०॥ सर्पत्वाजपुरच तैलमेर ख्जं समम। योषितां मो इक्ष बुपो रितकाली प्रयोजयेत्॥ ११॥ यखिन्यां याहयेडीमान् पलाशस्य च व्रध्नकम्। करे बड्डा भजेट् यान्तु नायिका वश्गा भवेत्॥ १२॥ ग्रोड्म्बरस्य व्रभ्नन्तु सगर्शार्षे समाहरेत्। इस्ते वड्डा स्पृशेत् कन्यां सा वध्या भवति चणात् ॥१३॥ शिरीषस्य धनिष्ठायां त्रभ्रसादाय बन्धयेत्। करे वा धातकी ब्रघ्नं स्वाती रामां वर्णं नयेत्॥ १४॥ यिखन्यां याहयेदीमान् पलागस्य च त्रभ्रकम्। करे बड्डा स्ट्रियेट् यान्तु नायिका सा वशा भवेत्॥ १५॥ रेवत्यां वटग्रङ्गञ्च हस्ते बड्डा वगं नयेत्।
मूले वा बदरीव्रशं मोजने स्त्ती वशा भवेत्॥ १६॥
स्वर्णे तारपुष्पमूलं ष्टट्ठा स्पृष्ठे \* स्त्रियो वशाः।
एतान् सर्व्वप्रयोगांश्च चण्डमन्त्रेण योजयेत्।
शतमष्टोत्तरं जष्ठा ततः सिडी भवत्यलम्॥ १०॥
मार्गशीर्षे तु पूर्णायां शिखिमूलं समुडरेत्।
मन्त्रेण ने दापयेत् स्त्रीणां खाद्येष्वामां वशङ्करम्॥१८॥
स्त्रेण जे दापयेत् स्त्रीणां खाद्येष्वामां वशङ्करम्॥१८॥
सत्त्रेण पाने च दातव्यं वश्ये वामावशङ्करम्॥ १८॥
प्रातः स्वदन्तं प्रचाल्य सप्तवाराभिमन्त्रितम्।
यस्य नाम्ना पिवेत्तीयं सा वामा वश्या भवेत्।

"श्री नमः चिष्रं कामिनीं श्रमुकीं मे वश्रमानय हुं फर स्वाज्ञा"॥ २०॥

श्रन्धोऽन्यं मेलये बिङ्गं या नारी वीचते चिरम्। हकारान्तं जपेत्तावत् सा नारी वश्रगा भवेत्॥ नागपुष्यं प्रियङ्गञ्च तगरं पद्मकेश्ररम्। वचां मांसीं समानीय चूर्णयेन्यन्ववित्तमः। स्वाङ्गन्तु धूपयेत्तेन भजन्ते कामवत् स्त्रियः।

"त्रों मूलि मूलि महामूलि! रच रच सर्वासां चेत्रेभ्यं परेभ्यः खाहा"॥ २१॥

> जिह्वामलं दन्तमलं नासाकर्णमलं तथा। सुरापाने प्रदातव्यं वशीकरणमङ्गुतम्।

"श्रीं नमः सवायै नमः सवान्यै च श्रमुकीं मे वशमानः

खाहा"॥ २२॥

श्वान्वयशीजनायां पृष्ठे प्रदातव्यम् एवं वीध्यम् ।

<sup>+</sup> मन्तेण चख्डमन्तेण।

वाव्यालकस्य मन्त्रेण पुष्पं सप्ताभिमन्त्रितम्। फलं वा दीयतेऽवश्यं सम्यग्वश्यकरं परम्॥ "श्रीं नमो वाचाट पथ पथ हिटि ट्रावहि खाहा"॥ २३॥ अपामार्गस्य मध्ये तु चतुरङ्गलकीलकम्। सप्ताभिमन्त्रितं याद्यं चिपेदेग्याग्रहे वशा। "श्रीं द्राविणी खाहा" "श्रीं हमिले खाहा" ॥ २४ ॥ उन्कानेत्रमांसञ्च चन्दनञ्जैव रोचनम्। कुङ्गमं मत्यतैलञ्च देहाभ्यङ्गाद्दशाः स्त्रियः॥ "बीं क्रीं क्रीं म्लं प्रं फट् नमः" ॥ २५ ॥ विधिना क्षकलासस्य पादं संग्रह्य दिचणम्। मंविद्य रितकाले तु मुखस्ये नायिका वशाः॥ तस्यैव वामनेत्रेण मधुतैलीन चाञ्चयेत्। यां पश्यति नरो मत्ता वामा सा तत्चणादया॥ "श्री श्रानन्द ब्रह्मा खाहा" "श्री क्री क्षी प्रां कालि पालि ! खाहा" ॥ २६ ॥ तस्यैव दचनेत्रञ्च सीवीरं मधुना सह। अञ्जिताचस्य सा वश्या या स्त्री रूपातिगर्विता॥ "ग्रों प्रजिताय खाहा" ॥ २७ ॥ विसन्यन्तु जपेनान्वं मनायस्य शतं शतम्। सन्मन्वात् कामिनी मासान्मो हयत्येव दर्भनात्॥ "श्रीं नमः कामदेवाय सहकल सहदश सहयम सहालिमे क्ने धुनन जनं मम दर्शनम् उल्लि एठतं कुरु वुरु दचदण्डधर तुसुमं वाणेन हन हन स्वाहा"॥ २८॥ कामाक्रान्तेन चित्तेन नाम्ना मन्त्रं जपेनिशि। ग्रवध्यं कुरुते वध्यं प्रसन्नो विखचेटकः॥ "श्रों सहवद्धीं वद्धीं कारवद्धीं कामिपशाच श्रमुकीं कामं याह्य स्त्रिन मम रूपेण नखैर्विदारय द्रावय स्वेदेन बन्ध स्री फट्॥ २८॥

चण्डमन्त्रेण होमानि वश्यार्थं कारयेत् सुघी:।

पूर्वमेवायुते जप्ते सिडि: स्थादस्थकारकः:॥ ३०॥

लवणं तिलसंयुक्तं चीरमध्वाज्यसंयुतम्।

सप्ताहाद्रूपहीनोऽपि वश्रीकुर्य्यात्तिलोत्तमाम्॥ ३१॥

राजिका लवणं चीरमध्वाज्यैर्मित्रितं हृतम्।

सप्ताहेन वश्रं याति या रामा रूपगर्विता॥ ३२॥

श्रष्टोत्तरशतं काष्टमैरण्डं चतुरङ्गुलम्।

लवणं कट्तैलञ्च त्रिभिरेकत होमयेत्।

श्रष्टोत्तरशतं जुह्वन् यत्रान्ता सा वश्रा भवेत्॥ ३३॥

महानिस्वस्य प्रयाणि घतेन सह होमयेत्।

सप्तराचे वश्रं याति यदि रामा मनोरमा॥

मलसु। — "श्रों क्लीं रक्तचामुण्डे तुरु तुरु श्रमुकीं मे वश्र मानय खाहा" ॥ ३४॥

गोमुण्डितितये चुन्नीं क्वता पश्चानृमुण्डिने।
पाने शालोन्तु तन्नाजांश्रूण्येत्तद्दिगतान्॥
पातस्थन्तु पृथक् चूर्णं मूर्ड्वि चिन्ने वशाः स्त्रियः।
श्रन्तर्गतेन चूर्णेन चिन्नं वश्यं निवर्त्तते।
सिडियोगो द्यसंस्थातो विना मन्त्रेण सिडिदः॥ ३५॥
गर्दभस्य शिरो मज्जां पूरयेत्ररपानके।
सङ्गराजरमेभाया वर्त्तिः कार्पाससम्भवा॥
सन्नवारन्तु सा श्रष्ट्वा मज्जा पाने प्रदीयते।
कज्जलं नरपाने तु श्रनिवारे समुद्धरत्।
तेनाद्ययेद्वशीकुर्यात् कामिनीन्तु विलोकनात्॥ ३६॥
शिक्षा तालं स्ववीर्यञ्च श्रङ्गोलतैलिमिश्रतम।

गजगण्डमदोन्मियं तिलकं स्त्रीवशङ्करम् ॥ ३०॥ मन:शिला प्रियङ्ग नागकेशररोचनम्। यिख्यताची नरी रामां वशीकुर्व्यान्मनीरमाम् ॥ ३८॥ प्रियङ्ग्य वचा पत्रं रोचनाऽञ्जनचन्दनम्। अञ्जिताची नरी रामां दृष्टा मोहयति भवम् ॥ ३८ ॥ सोमराजी रविर्मुलं मूलं वा चक्रमर्दजम्। कटिस्थं नरनार्थों वी परस्परवशङ्करम्॥ ४०॥ क्रपाष्टम्यां चतुर्देश्यां पीतधुस्तूरमूलकम्। हिमतारं पुटं कुष्ठं देवदार समं समम्। चूर्णं स्त्रीणां शिर:चिप्तं पुंसी वाऽय वशङ्करम् ॥ ४१॥ जलेन सह ष्ट्या तु सौधामलकमञ्जयेत्। तिलकी वा क्रते वध्यं कुर्यात् स्त्रीमण्डलं चणात् ॥४२॥ दन्द्रवारुणिकासूलं पुछ्ये नग्नः समुद्ररेत । कट्वयैर्गवां चीरै: पिष्टा तदटकीक्ततम्। चन्दनेन समायुक्तं तिलकं स्त्रीवमङ्गरम्॥ ४३॥ वर्व्यव्रक्षकं खात्यां वदर्यास्वनुराधया \*। व्रभं वा धारये इस्ते पृथक् स्तीवश्यकारकी ॥ ४४ ॥ जर्डुपुष्पी अधःपुष्पी लज्जालुगिरिकार्णके। सप्ताइं भावयेच्छ्क्रे पञ्चाङ्गमलसंयुते। खाने पाने प्रदातव्यं नारीवश्यकरं परम्॥ ४५॥ गुक्तपच्युते पुष्ये संग्राह्यं रतिसङ्गि। योनिस्यमुभयोवीय्यं यत्नतो वामपाणिना। तेन स्पृष्टाः स्त्रियो वश्या वामपाणितले निल । क्रपापचयुते पृथे पूर्ववत् स्तीवशा भवेत्॥ ४६॥

श्रव कमभङ्कलार्षः क्रन्दीनुरीधात्, श्रन्वये तु श्रनुराधायां ज्ञेयम् ।
 इ—२५

वचा खेतार्कलाङ्गल्यो लज्जाली विषमुष्टिका।
तुल्यं तुल्यं प्रचूर्ण्यय स्त्मं स्वानपय:स्नुतम्॥
धुस्तूरफलमध्यस्यमेकीकत्य प्रयोजयेत्।
कामवाणिमदं ख्यातं भोजने स्त्रीवग्रङ्करम्॥
उक्तानां सर्वयोगाणां चण्डमन्त्रेण मन्त्रणम्।
सिध्यन्ति नात्न सन्देन्दः पूर्वमेवायुते किल ॥ ४०॥
पानीयस्याञ्चलीन् सप्त दत्त्वा विद्यासिमां जपेत्।
सालङ्कारां नरः कन्यां लभते मासमानतः।

मल्लु।—"श्री विश्वावसुनीम गन्धर्वः कन्यकानामिधपिति सुरूपां सालङ्कारां देहि मे नमस्तस्मै विश्वावसवे स्वाहा" ॥४० सुषेणं लाङ्गलीकन्दं मधपिष्टं विलेपयेत्। नाभौ योनौ च कन्याया वाला भवति कामिनौ॥ "श्रीं द्राविकासय स्वाहा"॥ ४८॥

अय द्रावणम्।

स्रकं मूलं सकर्पूरं हरिद्रा कनकं मधु।

मेषीपित्तेन लेपोऽयं लिङ्गे स्त्रीद्रावकारकः ॥ १ ॥

कर्पूरोन्मत्तमूलं वाऽलक्षकं नृकपालके ।

ष्टद्या समधुलेपोऽयं लिङ्गे स्त्रीद्रावकारकः ॥ २ ॥

श्रीवालपुष्पं कर्पूरं मुख्डिपुष्पञ्च पेषितम् ।

लिङ्गलेपे वश्रं यान्ति द्रवन्ति रतिसङ्गमे ॥ ३ ॥

कापिलङ्गं समानीय कर्पूरं कनकं मधु ।

ग्ध्रविष्ठा नरस्यास्त्रि ष्टद्या लिङ्गे प्रलेपयेत् ।

एष हालाइलो योगो द्रावको वश्यक्षत् स्त्रियः ॥ ४ ॥

श्रीवालं मालतीपुष्पं मुख्डीपुष्पं समं मधु ।

लिङ्गलेपात् स्त्रियो वश्या द्रावणं भवति ध्रुवम् ॥ ५ ॥

टङ्गणं मधु कर्पूरं पारदं मर्दयेत् समम् ।

तेन लेपः परं लिङ्गे वश्यकदरयोषिताम्॥ ६॥ वृह्तीफलमूलानि पिप्पलीमरिचानि च। मधुरोचनया साईं लिङ्गलेपोऽतिवश्यक्तत्॥ ७॥ नराजोलुकग्टभाणां सममस्योनि पेषयेत्। खगुक्रेण सहालेपो लिङ्गे स्त्रीद्रावकारक: ॥ ८॥ खेताके चन्दनालेपो लिङ्गे स्यात् पूर्ववत् फलम्। विष्ठालेपस् गुल्यस लिङ्गे स्त्रोद्रावकारकः॥ ८॥ चौद्रगस्वकलेपेन शिलायुक्तेन तत्फलम्। ग्रिटङ्गणिपपल्यः सूरणं मदनं फलम। मातुलुङ्गफलैः पिष्टं लिङ्गलेपे स्त्रियो वशाः॥ १०॥ मज्ञीकाद्रवकप्रमधुलेपे च यत् फलम्। पक्षविल्वफलैट्रावैरईस्तञ्च टङ्गणम्। रत्तकङ्ग्रस्नच लिङ्गलेपेन वश्यकत्॥ ११॥ जातीकुसुमपवाणि मिन्निष्ठा खेतसर्षपाः। त्रालेपो ध्वजदर्छे तु रात्री स्त्रीद्राववश्यक्तत्॥ १२॥ शिलाकाशीशतारैय कुङ्गमचीद्रलेपनात्। सीभाग्यगर्विता वामा सङ्गे भवति किङ्करी॥ १३॥ कर्प्रं टङ्गणं स्तं पिप्पल्य्भत्तवीजकी। मज्ञीकाञ्चनपत्राणां रसं चौद्रञ्च पूरयेत्॥ लिङ्गलेपे कते वामा रात्री भवति किङ्करी। पञ्चगन्धं चतु:सूतं नवटङ्गणमानयेत्॥ मननु। — "श्रों कंदं लं नें क्लीं रसाधिका स्रवतु श्रमुकीं तिकाले देवदूर्शी खाहा"॥ १४॥ स्तटङ्गणकप्रकनकं मृलिपत्रकम्। ष्ट्रतेन लिङ्गलेपोऽयं कामिनी दर्पनाशनः॥ १५॥ उपद्याय पर्योः रत्तं ग्रह्मीयादन्तरीचतः।

तच्छ्ष्कं चूर्णितं स्थाप्यं पुष्ये रक्ताश्वमारजे॥ तत्पृष्यं धारयेडस्ते तर्जन्यङ्गष्ठयोगतः। ग्रावर्च्य स्वमुखं स्त्रीणां दृष्टमात्रे द्रवन्ति ताः ॥ क्षणगर्दभलिङ्गस्य ग्रलाकां मध्यतः चिपेत्। तामानीय विशोध्याऽय तां हि मध्यत उद्वरेत्॥ तच्छिद्रे निचिपेत् सूतं कर्षमात्रन्तु रञ्जयेत्। विचिवयेन्नेपैर्लाचादिं गुणकादिभिः॥ जर्ह्वाग्रं धारयेदस्ते कामिनीनाञ्च सिवधी। क्तते त्वधोमुखे तिसान् दृष्टमाते द्रवन्ति ताः॥ १६॥ जम्बीरम् लमध्ये तु सूतं हिश्चनक एकम्। चिष्ठा रुद्वा स्त्रिये दद्याद् घाणमाचे द्रवत्यलम् ॥ १७ ॥ बाहारे वामजङ्घा च टिप्टिमस्य तु पिचणः। तनाध्ये निचिपेङ्गूर्जपत्रं सुङ्कारलेखितम्। रक्ताश्वमारपृष्ये वा मुखं तस्य निरोधयेत । कर्णीपरि स्थितं तञ्च दृष्टा स्त्री द्रवित ध्रुवम् ॥ १८ ॥ जलेन लाङ्गलीकन्दं घट्टा इस्तं प्रलेपयेत्। हस्ते स्त्रियः करसृष्टे द्रवत्यग्नी घृतं यथा ॥ १८ ॥ सर्वेषां द्रावयोगाणां मन्त्रराजं शिवोदितम्। अष्टीत्तरशतं जघा तत्तद् योगस्य सिडये॥

"ग्रीं नमो भगवते उड्डामरेखराय द्रावय द्रावः स्त्रीणां मदं पातय पातय स्त्राहा"॥ २०॥

> द्गति श्रीसिङ्जनागार्जुनविरचिते कचपुटे स्त्रीवय्यादि द्राव<mark>णं नाम</mark> चतुर्थ: पटल:।

## अय प्तिवश्यम्।

मालतीपुष्पसंयुक्तं कट्तैलं सुपाचितम्। एतिज्ञप्तभगा नारी रती मोहयते पतिम्॥१॥ खञ्जरीटस्य मांसञ्च मधुना सह पेषयेत्। अनेन योनिलेपेन पतिर्दासी भवत्यलम्॥ कर्पूरं देवदारुञ्च सचीद्रं पूर्ववत् फलम् ॥ २॥ मैन्धवेन तिलान भाव्य सप्तवारं पुनः पुनः। तह्वष्टा लेपयेद् योनिं पतिर्दासी रती भवेत्॥ ३॥ सीवर्चलं वचा सिन्धु मीनपित्तं वसा घृतम्। सौवीरच समं पिष्टा योनिलेपे पतिर्वशः॥ ४॥ पञ्चाङ्गं दाडिमं पिष्टा खेतसर्घपसंयुतम्। योनिलेपे पतिं दासं करोत्यपि च दुर्भगा॥ मन्ना-"श्रीं काममालिनि ठः ठः"। सप्ताभिमन्विते सिडि: प्रोक्तयोगेषु सम्प्रता ॥ ५ ॥ रोचनं मत्यपित्तञ्च पिष्टा तु तिलके क्षते। वामहस्तकनिष्ठायां \* पतिदीसी भवत्यलम् ॥ ६ ॥ खयोनावृतुकाले तु रोचनं निचिपेत् पुनः। स्वपुष्पं भावयेत् तेन तिलकं पतिवश्यक्तत्॥ ७॥ धुस्त्रवीजचूर्णन्तु सप्ताहं भावयेनालैः। सर्वदारोद्भवैस्तेन खाने पाने पतिर्वशः॥ ८॥ पुचजीवय रता च मोहिनी गिरिकर्णिका। खेतापराजितामूलं समाऽंगं चूर्णमध्यतः। दीयते पश्चिम रात्री सताम्बू लेऽतिवश्यक्तत्॥ ८॥ मुखेतं कर्ण्यकार्याय मूलञ्च गिरिकर्णिका।

कनिष्ठायामित्यार्षं पदम् ; अवान्वयार्थवीधं कनिष्ठयेति पठनीयम् ।

तास्बूलेन प्रदातव्यं दासवत् कुरुते पतिम् ॥ १०॥ समूलचूर्णां भूधावीं वस्ते बद्धा निवेशयेत्। नवनीते विनिचिप्तं तचूणं पाचयेद् प्टते। तहृतं भोजने देयं पतिदासो भवत्यलम् ॥ ११ ॥ पुंबिन्दुं याह्य \* कार्पासाद्रतावन्ते स्वयोनिगम्। सजीवमण्डू कमुखे कार्पासं तं विनिचिपेत्॥ कन्यावर्त्तितस्त्रेण पुंपादान्तं शिरो मिलेत्। खट्टाङ्गं वेष्टयेत् स्त्रे चतुष्पादं ततः पुनः। तेन स्त्रेण मण्डूनं बहाऽऽस्यं हण्डिकान्तरे॥ रुद्वा तित्रखनेद्रूमी पतिर्वथ्यो भवत्यलम्। ग्रन्यत पण्डो मदनो भवत्यत तया सह ॥ १२॥ यत मूत्रयते भत्ती तत सद्दामपाणिना। यताद् याद्या समन्त्रेण प्रजपन् पञ्चभिनेखैः ॥ १३ ॥ सृदं कुलालचक्रस्यां विपरीतगतां हरेत्। उभाभ्यां व्रषमं कत्वा नासां सूत्रेण प्रीतयेत्॥ द्वारदेशे स्थितं तन्तुं यावद्गर्ता तु सङ्घयेत्। तया तु निखनेचैव पतिर्वश्यो भवत्यसम्। तहुई कामदेवीऽसी ह्यान्यत षण्डतां व्रजीत्॥

मचलु।—"श्रीं हीं नाथं तुच्छं मन्त्रयती हीं पञ्चनखे उच्च पनी हीं सामोहि नीलद्रति सीं सां योगिनी कामि याली बन्धी सुखेन सां जवेन जास्य सं रां सास्था' भनेन मुचल्यानस्तिका याद्या। इति सिडियोगः॥ १४॥

> कार्पासधूनकस्यैव यन्त्रतः श्रेषमाहरेत्। तं कार्पासं स्वपंशक्रे भावयेत्तञ्च शक्रकम्॥

<sup>\*</sup> बाह्येलार्पम्पदम्, अन्वये स्हीला इति पठनीयम्।

विवस्ताकन्यका इस्तैविपरोतिन कर्त्तयेत्। \*
धनुर्दर्भमयं कुर्य्यात् स्त्रैय व्रिगुणैर्गुणम् ॥
पत्यः पुंस्तं भवेत्तावद् यावदारोपितं धनुः।
ऋवतीर्णे गुणे घण्डो जायते च वसी भवेत्॥ १५॥
देवदार ममं कुष्ठं पाययेद्दस्येत् पतिम्।
"श्रीं नमो भगवते उष्णेशाय श्रीं दिग्बन्धाय स्वाहा"।
अनेन मलेण सप्तामिमलितं क्रवा सिजिः॥ १६॥

पितिश्रक्रञ्च कर्पूरं वटपत्ररसं तथा।
रोचनञ्च पिवेद् या स्त्री पितिमिच्छिति तत्चणात्॥१०॥
सनालानि तु पद्मानि चीरेणाज्येन पेषयेत्।
गुटिकां छायया ग्रष्कां नाभी योनी प्रलेपयेत्।
दश्रवारप्रस्तायाः कन्यावज्ञायते भगम्॥ १८॥
वेतसी मूलमादाय सप्त वा खिदरं समम्।
पेषयेच्छीततीयेन पीतं सङ्गोचयेद्भगम्॥ १८॥
कोकिलाचस्य वीजानि श्रजाचीरञ्च लाङ्गली।
काथयेद्भेपयेत्तेन योनिं प्रचालयेत् पुनः॥ २०॥
जले कार्णासमूलञ्च ष्टष्टा मृदग्निना पचेत्।
श्रनेन चालनं कुर्यादिस्तीर्णं कोचयेद्भगम् १।
वडानामिप नारीणां योनिसङ्गोचनं भवेत्॥ २१॥

द्रति श्रीसिद्धनागार्जुनिवरिचते कचपुटे पतिवस्यं नाम पश्चमः पटलः ।

<sup>\*</sup> अव इसै: पदं, इसाम्यामित्यख वाचकम्।

<sup>†</sup> कीचयेदिति सङ्घीचयेत् स्थाने कन्दीऽनुरोधात् पठितम्।

# अय आकर्षगम्।

श्रोङ्कारे मन्त्रयेत् पाशं क्रोङ्कारे चाङ्कशं तथा।
तिगुणं वामगं पाशं दिचिणे ज्वलिताङ्कशम्।
सन्ध्यायेत् स्वकरे मन्त्री तती मन्त्रिममं जपेत्।
"श्रीं इतिं रक्तचामुण्डे! तुरु तुरु श्रमुकीम् श्राकर्षय
इतिं स्वाहा"। श्रस्थ मन्त्रस्थ पूर्वमेवायुतजपे सिद्धिः॥ १॥

अथवा निजमन्तन्तु गुरुवक्कात् समागतम्। पूर्वमेवायुतं जम्ना तेनैवाकर्षणं भवेत्॥ ध्याला साध्यञ्च मलिनमात्मानं देवतानिभम्। ध्यायेत् साध्यगले पागं शिरोज्वलितमङ्ग्रम्॥ विसम्यन्तु जपादेव दिनानामेकविंगतिम्। ध्याने मन्त्रे तथा यन्त्रे तैलोक्याकर्षणं भवेत्॥ २॥ रक्तवस्ते लिखेद् यन्तं लाच्या रक्तचन्दनै:। प्रच्यं ति तरोर्म् ने निखने बरणीतले ॥ विसप्ताहं सदा सिञ्चेत् प्रातस्तत्तर्ष्हुलोदकैः। द्रादाकर्षयेत्रारीं यदि सा निगड़ान्विता ॥ ३ ॥ पूर्वीतौरीषधैर्यन्तं रत्तवस्ते लिखेत् सदा। वेष्टयेद्रक्तस्त्रेण जपेद्यायेच पूर्ववत्। तद्यन्तं पूजयेसन्ती निगले खान्तरे तत:। बद्यमाकर्षयेद्यन्तु निगड़ैः प्रतिपीड़ितम् ॥ ४ ॥ पूर्वीतौरीषधैर्यन्तं पूजियत्वा तथा चिपेत्। नागवज्ञीद्से यताज्जपेड्यायेच पूर्ववत्। विसप्ताहे दिने प्राप्ते सम्यगाकर्षणं भवेत्॥ ५॥ पूर्वोत्तैरीषधैर्यन्तं पूजयेनान्त्रसंयुतम्। वेष्टयेत् पद्मसूत्रैय निचिपेत् कलसान्तरे॥

तत्रैव पूजयेन्नित्यं मासादाकषेणं भवेत्। पूर्ववडागनमन्त्रेण शक्यदेवेन भाषितम्॥ ६॥ श्रश्लेषायां समादाय श्रर्जुनस्याय व्रश्नकम्। यजामू नेण सम्पेथ स्त्रीणां शिरसि निचिपेत्। पुरुषस्य पशूनाञ्च चिपेदाकर्षणं भवेत्॥ ०॥ जलीकां नीलमर्पञ्च शोषियत्वा इरेत् चिती। जम्बीरकाष्ठैस्तचूर्णं धूपादाकर्षणं भवेत्॥ ८॥ साध्याया वामपादस्यां मृत्तिकामाहरेत् चितौ। क्रकलासस्य रक्तेन प्रतिमां कारयेत् सुधी:॥ साध्या नामाचरं तस्यास्तद्रतैर्विलिखेड्दि। मूत्रस्थाने च निखनेत् सदा तत्रैव मूत्रयेत्॥ याकर्षयेतु तां नारीं यतयोजनसंस्थिताम्। चतुर्बचिमिते जप्ते वुं घुन्तो नाम चेटकः। यत पुष्पफलादीनां करोत्याकर्षणं भ्रवम्॥ मनन् ।—"श्रों घुं घुन्ता श्राक्षष्टिकर्त्ता सृष्टिपुरी श्रमुकीं वरो क्रीं क्रीं"॥ ध॥

रितकामी रती याच्ची भ्रमरी यत्नतो वुधै:।
भिन्नी कत्वा दहेत्ती तु चितिकाष्ठैस्तयो: पुन:॥
वस्त्रेण वेष्टयेद्रस्म पृथक् तत्पोटलीहयम्।
तयोरिकमजाशृङ्गे दृढ़ं बड्डा परिचिपेत्॥
अपरं रचयेडस्ते यदि नायाति कामिनी।
यदाऽऽयाति तु सा मेषी तत् पृथम् बन्धयेद् वुध:।
तद्रस्म शिरसि न्यस्तं चणादाकर्षयेत् स्त्रियम्॥

"श्रीं **क्षरण्वर्त्ताय स्वाहा"।** इमं मलं पूर्वमेवायुतं जक्षा उक्तयीगे-

नाभिमन्त्रणेन सिड्डि: ॥ १०॥

"श्रीं क्लीं विलि विलि क्रिस्थि क्लिस्थ इन इन पच पच

गोषय गोषय सर्व्वविद्याऽधिपतये नमः"। अनेन मन्त्रेण सुद्दीकीलकमष्टीत्तरग्रताभिमन्त्रितं क्वत्वा तथा प्रतिरोपयेत्। यत्रामा तमाकर्षयति ॥ ११ ॥

"श्रों श्रां च्यं चादुं चादुं फट्।" लच्चमेकं जपेदस्य पूर्व्वमेव समाहितः। दूरादाकर्षयेत्रारीं तत्रत्यां चोभयत्यपि॥ १२॥

"श्रों यलसत्यु जय मे मे।" अनेन मन्तेण कुम्भकारस्ति-कया प्रतिमां कला मनुष्यास्थिकी लेनाष्टीत्तरसहस्रामिमन्त्रितेन स्वहस्तेन निखनेत्, सा क्षिरं स्वति। अय प्रतिमाक्तिं तिकटुकेनालिप्य मधूच्छिष्टेन वेष्टयेत्। अस्या अङ्गं स्विकया-ऽऽविध्यललाटे तस्याः नामाचरम् अनामिकाया क्षिरेण लिखेत्; प्रतिक्कतिं खदिराङ्गारे स्थापयेत्। ततः पूर्वे मन्त्रं जपेत् यावत्तस्यास्थिके लगति तावदाकर्षणं भवति॥ १३॥

> इति श्रीसिडनागार्जुनविरचिते कचपुटे भाकर्षणं नाम षष्ठ: पटल:।

### त्रय स्तसनम्।

गमनोत्यानवाग्वाणखङ्गादिशस्त्रकेषु च।

शत्रुसैन्याश्रनोनाञ्च स्तभानं श्रमुनोदितम्॥१॥
रजन्या इरितालैर्वा भूर्ज्ञपत्रे समालिखेत्।

यन्त्रं इरितस्त्रेण वष्टियत्वा ततः पुनः।

शिलायां बन्धयेत्तञ्च गतिस्तभाकरं भवेत्॥२॥

चर्माकारस्य कुण्डाच रजकस्य तथैव च।

कुण्डान्मलं समुदृत्य चाण्डाली ऋतुवाससा॥॥

वस्ययेत् पोटलीं प्राज्ञी यस्याग्रे तां विनिचिपेत्।
तस्योत्याने भवेत् स्तम्यः सिद्धयोग उदाहृतः॥ ३॥
उद्रस्थास्य चतुर्दिच्च निखनेङ्गृतले ध्रुवम्।
गोमेषमहिषीवाजीन् स्तम्ययेत् करिणोऽपि च॥ ४॥
सितगुञ्जाफलं व्याप्यं नृपाचे पौतस्द्युतम्।
निश्च क्षणाचतुर्दश्यां त्रिदिनं तत्र जागरेत्॥
नित्यं मिञ्चेज्ञलेनैव सन्तं पूजाञ्च कारयेत्।
तस्याः शाखा लता ग्राह्या ग्रुभर्चे च सुमन्त्रिता॥
चिपेद् यस्यासने तन्तु स्तम्यय्येव सा ध्रुवम्।

"श्रीं गुरुभ्यो नमः। श्रीं वज्ररूपाय नमः। श्रीं वज्रकिरणे भिवे! रत्त रत्त भवेद् गाधि श्रमृतं कुरु कुरु स्वाहा"। श्रयं

> इरिद्राकारितं पद्मं तालपत्ने सुपूजितम्। चलरे साध्यमन्त्राङ्गं मुखस्तमाकरं रिपोः!

"श्रीं सहचखदशायि त्रमुकस्य सुखं स्तम्पय स्वाहा" ॥ ६ ॥ त्रकारः पत्रगाकारः साध्यकर्णे विचिन्तितः । करोति वचनस्तभां चित्रं देवगुरोरिष ।

"श्रों सूकस्तु सुकर्णाय स्वाहा" ॥ ० ॥ शतजप्तेन कीलेन खादिरेणास्य वन्धनम् । जायते वैरिणां स्तभो दुर्गाग्रे कीलितं ध्रुवम् ॥

"श्रों स द्रित मूर्त्तिक्ट्राय खाहा" ॥ ८ ॥ कुङ्गमोज्ञिखितं पद्मं भूर्जे नामाङ्कितं रिपोः । विष्टितं नीलसूत्रेण सम्यक् स्तम्भकरं भवेत् ॥

"श्रीं सह धनेशाय खाहा" ॥ ८ ॥ लिखित्वा प्रेतवक्को च साध्यनामपुटीक्कतम् । वैष्टितं नीलसूत्रेण श्मशाने प्रोयितं भवेत् ॥ "श्रों सहस्वेताय श्रमुकस्य वाक् स्तन्धय स्तन्धय स्वाहा" ॥१०॥ यस्याभिधानमुचार्थ्य सप्ताहं जपते रिपो: । मनो वाचो गतिस्तमां चेटकः कुरुते ध्रवम् ॥

"श्रीं नमी इण्डने श्रमुकस्य मुखं गतिं स्तम्भय ज्वाला गई भाग्नि मुक्ताधिक वन्ध वन्ध स्तम्भय कुरु च ममेपितानि ठः ठः हुं फट् खाहा"॥ ११॥

हरिद्रया लिखेद यन्त्रं भूर्जपत्रे समाहित:।
विष्टयेत् पीतस्त्रेय पीतपुष्पेय पूजयेत्।
स्थापयेत् शिलयोर्भध्ये वाक्स्तभं जायते ध्रुवम्॥ १२॥
सङ्गराजोऽप्यपामार्गः सिडार्थः सहदेविका।
तुः लुः वचा खेता द्रवमेषां समाहरेत्॥
लीहपात्रे विनिच्चिष्य दिदिनान्ते समुद्रित्।
तिलक्षे सर्वश्रुणां वृद्धिस्तभक्षां भवेत्॥ १३॥

"श्रीं नमो भगवते विखामित्राय नमः सर्वमुखिभ्यां विखामित्राय विखामित्रोद्दापयति शक्त्या श्रागच्छतु"। श्रुनेन मन्त्रेण नदीं प्रविश्य श्रष्टोत्तरशताम्बुभिस्तर्पयेत् शत्रूणां मुखस्तभो भवति॥ १४॥

"श्रीं नमी ब्रह्मवेसरि रच रच ठः ठः"। श्रनेन मन्त्रेण सप्तपाषाणान् ग्रहीत्वा त्रीन् कट्यां बड्डा श्रपरे मुष्टिकाभ्यां धारणीयाः चौराणां गतिस्तको भवति ॥ १५॥

श्रङ्गली लक्तमणा पंसी सर्पाची शिखिमूलिका।
विश्वाकान्ता जटा नीला पाठा खेतापराजिता॥
पाटली सहदेवी च मूलञ्च सहदेविका।
पृष्यार्के तु समुहृत्य मुखे शिरिम संस्थिता॥
एकोकं वारयत्येव शस्त्रसन्धारणं नृणाम्।
वक्तग्राखुव्याव्रभूपालचीरशनुभयं त्यजित्॥ १६॥

खेतगुञ्जीयसूलन्तु नचत्रोत्तरभाद्रके। उत्तराभिमुखं याद्यं बाणस्तभावरं मुखे ॥ १०॥ मूलं ग्रुक्तवयोदश्यां ग्राह्यं शिखरिकन्ययोः। बलामूलं तथा याद्यं पिष्टा तहीलकी सतम्। धार्यं मूर्प्ति करे बाही सर्वश्रत्नवारणम् ॥ १८॥ गोजिह्वा च इठी द्राचा वचा खेतापराजिता। विषाकान्ता इस्तिकणीं सुखेता कर्एकारिका॥ मूलान्यादाय पुष्यार्के रभास्त्रेण वेष्टयेत्। खहस्ते कङ्गणं धार्यं शत्रस्तभकरं रणे॥ १८॥ पाठा रुट्रजटा वाऽय खेता च शरपुङ्किका। खेतगुज्जीयकं मूलं पुषाकें तु समुद्रतम्। प्रत्येवं मुखमध्यस्यं रगेषु स्तम्भक्तद्रिपोः॥ २०॥ गाभारी चैव कुम्भी च पुष्पार्को च समुडरेत्। मूलं तर्डु नतीयेन पिट्टा पीत्वा दिनवयम्। प्रत्येकं वारयत्येव शस्त्रसङ्घं नरी नृणाम् ॥ २१॥ नितकी मस्तके नेते तालमूली मुखे स्थिता। खर्जुरे चरणे हृतस्ये खङ्गस्तभः प्रजायते॥ एतानि वौणि मूलानि चूर्णीकत्व घतेः पिवेत्। श्रहोरात्रो ततः शस्त्रैर्यावर्ज्जीवं न बाध्यते ॥ २२॥ शिरीषमूलं पुष्यार्के याइयेत् पेषयेज्जलै:। श्रद्धां हारे क्रते पश्चात्तज्ञलं चाईकं पिवेत। याविहनानि तत् पीतं तावत् शस्त्रेने बाध्यते। तन्मूली तु गली वडे खड़ीर्मधो न क्रियते॥ २३॥ पुच्छीमूलन्तु पुष्यचे वराटस्योदरे चिपेत्। तं वराटं समानीय फलमध्ये विनिचिपेत्। तत् फलं मुखमध्यस्यं शस्त्रस्तभातरं परम्॥ २४॥

यस्ते रवी समुद्रत्य शरपुङ्घं समन्त्रकम्। वक्के यो धारयेकानी शतुखड़ेर्न बाध्यते ॥ २५ ॥ समूलपत्रशाखान्तु विश्वाक्तान्तां विचूर्णयेत्। तैलपक्षं \* ततः क्रत्वा तेनैवाङ्गानि मर्दयेत्। खङ्गादिसर्वशस्त्राणां भवेद् युद्वे निवारणम्॥ "श्रीं नुक् क्क चैतालि ! खाहा" ॥ २६ ॥ क्रक्तनासस्य वामाङ्गिं इरितालेन वेष्टयेत्। ताम्त्रपत्नैः पुनर्वेष्य मुखस्यं सर्वेशत्जित्॥ "श्रीं चामुग्डे भयचारिणि ! खाद्वा" ॥ २०॥ वजहिमाभ्ववं ताप्यं कान्तं सूतं समं समम्। मद्यो जम्बीरजैद्रावैदिनं खन्ने ततः पुनः ॥ ब्रह्मवृज्ञस्य वीजानि कार्पासास्थीनि राजिकाम्। बस्या च जनयित्री च पिट्टा तन्मध्यगं क्रियात्॥ पूर्वं यन्मदितं गोलं लघु सप्तपुटैः पचेत्। ततो गजपुठं दद्यान्म् खं रुड्डा धमेद् घटात्॥ तहीलं धारयेदक्की शस्त्रस्तभाकरी भवेत्। इन्ति रोगं जरामृत्यं गुटिका सुरसुन्दरि !॥ सर्वेषामुत्तयोगानां कुमाकर्णं सारेद् यदि। त्रायान्तं सम्मुखं शत्रुसमूहं सन्निवारयेत्॥

"श्रीं श्रहो कुश्वकर्ण महाराचस केशोगर्भसभूत परसैन्य-भन्जन! महारुद्रो भगवान् रुद्र श्राज्ञा श्रन्निं स्तभाय ठ: ठ:"। एवं मन्वदयं पूर्वमेवायुतजप्ते सिव्धिः॥ २८॥

> श्रय मन्तं महिशस्य श्रपि चैवं हनूमतः । नारायणस्य स्थिस्य जपेदा ब्रह्मणोऽपि च ॥ श्रयुतं पूर्वमेवैतत् ततोऽङ्गारैने दह्यते ॥ २८ ॥

<sup>\*</sup> तैलपकं पदात्परं तचूर्णमध्या हार्थ्यम्।

कुमारीं गूरणं पिष्टा लिप्तहस्तो नरो भवेत्। दीप्ताङ्गारेस्तप्तली हैर्मन्वयुक्तो न दह्यते ॥ ३० ॥ पाठासूलं घतै: पिष्टं लीहपिण्डं सुधारितम्। लिप्तहस्ता न दह्यन्ते मन्वराजप्रभावतः ॥ ३१ ॥ उल्कामेषमण्डूकवसामादाय लेपयेत्। ग्रनया लिप्तगावस्तु नाग्निना दह्यते नरः॥

मललु।—, "श्रों नमो भगवति चन्द्रकान्ते श्रभे व्याघ्रचर्मः -निवासिनि चलमाणि! स्वाहा"। उक्तवीगदवेऽभी मलः॥ ३२॥

मण्डू कवसया पिष्टा निम्बह्च त्वचं ततः ।

लिसगातो नरो विक्तं स्तभ्य त्येव च ध्रुवम् ॥ ३३ ॥
स्त्रीपृष्पं खरमूत्रञ्च पचेदक वसायुतम् ।
तिनैव लिस इस्तस्तु तसतै लैने दह्यते ॥ ३४ ॥
विद्यु इतस्य काष्ट्रस्य की लेन विह्रगस्य वा ।
विड़ालस्यास्थिगो विक्तिनं दहीदितकी तुकम् ॥ ३५ ॥
कुमारी तैल लिसस्तु इस्तो ली हैने दह्यते ।
जलीका पाटली मूलं येवाल कुसुमं ग्रुभम् ।
मण्डू कवसया पिष्टं लिसगातो न दह्यते ॥

मलल ।—"श्री श्राग्निवलन्ती मैधरी मलीय हनुमैविश्वन रथमिजी गौरी महिष्वर साधु"। उत्तयीगानामयं मलः ॥ ३६॥

> मण्डूकिपत्तमादाय मेषस्य वसया सह । सजलीकाप्रलेपेन विक्रस्तभनमुत्तमम्॥

मन्तु। — "श्रीं नमो भगवति चन्द्रकान्ते गतत्र्याघ्रचर्मापरि-

णडवसने चमालय खाहा"॥ ३०॥

उद्भान्तपत्रनिर्माखमैरण्डपारिभद्रकम् । मण्डूकवसया सार्डं पिञ्चा सहिनना पचेत् । तेन पादविलेपेन भ्रमेदङ्कारपर्वते ॥ ३८॥ यवकाण्डं समाहृत्य मण्डूक्वसया सह।
गुटिकां कारयेत् चिप्ते तया वक्की ततो भ्रमेत्॥
मन्त्रमु।—"ग्रीं नमो भगवते चन्द्ररूपाय विकलां त्विहन्ति
तत् क्रमस्तभात्वनचन्द्ररूपेण ग्राग्नियुत्तवरं कष्ट ठः ठः"।
उत्तर्थोगवयाणामयं मन्तः॥ ३८॥

वामपादं वामहस्तं क्षकलासस्य पूर्व्ववत्। संग्राद्य सिक्थकौर्वेष्य विक्रस्तभो मुखे स्थिते॥ तस्यैव वामहस्तञ्च पारदेन विमद्येत्। विष्टयेन्नागपत्रेण विक्रस्तभो मुखे स्थिते॥

"श्री अस्टताय ईड़िपङ्गले ! स्वाहा" ॥ अवनामस्य योगानामयं मन्तः॥ ४०॥

सङ्गराट् कदलीकन्दं मण्डूकवसया पचेत्। सद्दिग्निना ततो लेपात् पादयोर्विक्सिखरः॥ ४१॥ श्वेतगुद्धारसेनैव सर्व्वाङ्गे लेपमाचरेत्। ग्रङ्गारराशिमध्ये तु भ्रास्यमाणी न दह्यते॥

"श्रीं वज्रक्तिरणे श्रम्टतं कुरु कुरु स्वाहा"॥ उक्तयीगानामयं मनः॥ ४२॥

सप्तधा हिमवनान्तं जिपत्वा येन ताड़ितः।
विज्ञः शाम्यित रीद्रोऽपि दद्यमाने ग्रहे सित ॥

"श्री हिमालयोत्तरे भागे मारिची नाम राच्यसः।
तस्य मूत्रपृरीषाभ्यां हुताग्रं स्तम्भयाम्यहं स्वाहा" ॥४३॥
गोवालं जलगूकच मण्डूकवसया विभिः।
लिप्ते वस्त्रे धृते विज्ञने दहेदस्त्रमञ्जतम् ॥ ४४॥
रममरण्डपत्रस्य शिरीषपत्रकस्य च।
तुत्यं तुत्यं पचेच्छीषं नरतैलेन कम्बलम्।
लिप्ता प्रज्वलितं धार्यं शिरःस्थोऽग्निने दह्यते॥ ४५॥

तिलतैलात्तस्रवेण विलम्बा कांस्यभाजनम्। अधः प्रज्वालयेदक्तिं सचीरं पायसं पचेत्। न सूतं दह्यते चित्रं पायसं कामलापहम् ॥ ४६ ॥ भूर्जपत्रपुटे तैलं कदलीपत्रकं \* तथा। चिष्ठा वाह्ये लिपेत्तेलं छिन्नभाण्डं मुखे पुनः॥ संस्थाप्य लेपयेत् साईं गोमयेन तु तत् पुनः। स्थितं जुन्नामधी विद्धं प्रज्वाल्य वटकं पचेत्। लौइपात दवासर्यं पुटं तत न दच्चते॥ ४०॥ वार्त्तानुं काञ्जिकीर्लिप्तं विद्य तैलाक्ततन्तुभिः। तत् पुनः पचते वक्की न स्त्रं दश्चतेऽद्भुतम्॥ ४८॥ सप्तधा भावयेत् सूचं कन्यकासभावैद्रवै:। योगपटं क्ततं तेन चित्रं वक्की न दह्यते॥ ४८॥ सूत्रं वराइपयसा लिप्तं कुर्यात् ततः पुनः। यज्ञोपवीतकं तत्तु चिप्तं वज्ञी न दह्यते॥ ५०॥ दग्ध्वाऽऽदी तुलसीकाष्ठं शालालीं वाऽय सेचयेत्। खरमूबैस्तदङ्गारैज्जालचुस्रां निवेशयेत्। काष्ट्रभारगतिनापि अन्तःपाको न जायते॥ ५१॥ मूलन्तु खेतगुच्चीयं वच्ची मन्त्रयुतं चिपेत्। तस्योपरि स्थितं चात्रं मासेनापि न पचते॥ ५२॥ पिपाली मारिचं चूर्णं चर्वियला ततः पुनः। दीप्ताङ्गारे नरैर्भुत्ते न वक्तं दह्यते क्वचित्।

"श्रीं नमी महामाये विक्नं रच खाहा"। अयं मल उक्तयीगानां

योज्यः ॥ ५३॥

श्रय जलसमानम्। पद्मकं नाम यद्रव्यं सूच्याचूर्णन्तु कारयेत्।

त्रव पवनेत्वव पवपुटने ग्रंपमन्वययोजनायाच्यीध्यम्।

वापीकूपतड़ागेषु निचिपेट् बध्यते जलम्॥
"श्रीं नमो भगवते जलं स्तभाय वः पः"। वयं मन्तः सर्वजली
सिद्धः॥१॥

श्रगस्यपुष्पनिर्यासं महिषीपयसा पिवेत्। खादेत्तन्नवनीतञ्च जलाग्नी नावसीदति॥

मललु :— "श्रीं नमी भगवते रुद्राय बलस्य विद्रव कलहिंपये कलहंसध्वनि एद्योति स्वाहा"॥ २॥

तिली हवेष्टितं हस्तं क्षत्रलासस्य दिचणम्। समन्तं धारयेदको स्वेच्छ्या सञ्चरेज्ञले॥ असमुद्रेऽपि न सन्देहो नरस्तोयैन बाध्यते। "श्रों श्रत्नये उदस्वाहा"॥३॥

मूलं पुष्ये त् गुज्जायाः कुसुन्धरसपेषितम्। तेनैव रञ्जयेदस्तं तदस्तस्वाङ्गवेष्टितम्॥ गमीरजलमध्ये तु यावदिच्छति तिष्ठति । जलस्तमामिदं खातं गुज्जामन्वेग सिध्यति ॥ ४ ॥ अला वुफल चूर्णन्तु पक्षं ऋषान्तजं फलम्। पिष्टा तेनाजिनं लिखा नरो च्यङ्गलमात्रकम्॥ तच्छ्ष्यं निचिपेत्तोये तड़ागे वा नदे च्चदे। तस्योपरि स्थितो योऽसी कदाचित्र निमज्जित ॥ ५ ॥ स्रोमान्तालावुपिष्टेन कर्त्तव्यं पादुकाइयम्। गोधाचमीमयं बद्धं क्रत्वारू द्यरं जले ॥ ६॥ स्रोपान्तफलचूर्णन्तु वापीकूपतड़ागकी। चिऐद्राबी भवेद् बन्धो मुक्तवर्धे लवणं चिपेत्॥ ७॥ श्लेषान्तफलचूर्णन्तु लेप्यं गुष्कन्तु सहटे। घनमङ्ग्लमातं स्याच्छोषयेत् पूरयेक्जलैः। चणार्डे भिदाते कुमो जलं बदन्तु तिष्ठति॥

मलसु।—"श्री नमो भगवते रुट्राय जलं स्तम्भय स्तभ्भय व: व: व: ठ: ठ: ठ:"। पूर्वीक्रयीगानामयं मन्तः॥ ८॥

मकरस्य मृगानस्य नकुनस्य वसायुतम् । जनसर्पशिरोपेतमेणतैनेन पाचयेत् । तेन नासाकर्णनेपं कत्वा संस्तन्भयेज्ञनम् ॥ श्री नमो भगवते रुटाय व्याघ्रचर्मपरिधानाय जलं

"श्रीं नमो भगवते रुद्राय व्याघ्रचर्मापरिधानाय जलं स्तश्यया स्मय ठः ठः" ॥ ८ ॥

चतुर्दिनं नक्तभोजी लिङ्गपूजाक्तते जपेत्। श्रयुतैकेन जप्तेन सिंडिभाग्भवति ध्रुवम्॥ १०॥

> द्रति यौसिङ्जनागार्जुनविरचिते कचपुटे गतिस्मभनं नाम सत्तमः पटलः।

# अय सैन्यसासानम्।

वचमेकं जपेक्सन्ती पलाशतरुजैस्तया।

मध्वाज्यसंयुतैर्होमात् कालकणीं प्रसीदित ॥

सैन्यखङ्गादिधाराम्बुगतिस्तक्मकरो भवेत्।

सततं स्मरणाक्मन्ती विविधायय्येकारकः॥

"श्रीं प्णां कालकणिके ठः ठः"॥१॥

गजेन्द्रदन्तमध्यस्यं परसैन्यं विचिन्तयेत्।

तत्चणाङ्गङ्गमायाति स्तम्भितं वावतिष्ठति॥

"श्रीं स्तं दिरण्डाय स्ताहा"॥२॥

रक्तधुस्तूरमूलं वा पूर्ववज्जायते फलम्।

गुज्जामूलं समानीय मर्कटीं ग्रह्गोधिकाम्॥

गुज्जान्द्ररोसमायुक्तं पिष्टा शस्त्राणि लेपयेत्।

तत्फले छिद्यमानेऽपि स्त्रियते च न संश्यः ॥ \*

"श्रों नमो भगवते उड्डामरेखराय दह दह पच प

घातय घातय हिलि हिलि खाहा"। श्र्वद्वष्णवये अयं मनः ॥ ३

षड्विन्दुर्मेचिका नीला चूर्णं खर्जूरसूलकम्।

लेपयेत् सर्वश्रस्ताणि तद्वाते क्रिमिक् इवेत्।

निर्घात्यते क्रमेकोपात् विष्णुना यदि रिचतम् ॥ ४ ॥

जलीकामिचकानीलाषड्बिन्दूनां प्रस्तेपनात्।

तच्छस्त्रिद्यमानेन स्त्रियते ह्यमरोऽपि सः॥

"श्रीं नमो भगवते उड्डामरिखराय दह दह भिन्न भि ख ख रुह्ह रुह्ह खाहा ठ: ठ:"। उक्तयीगदये अयं ननः॥ ५॥

हालाहलं वसनामं द्वियता ग्रहगोधिका।
कुच्छुन्दरी क्षण्यसपे: ग्रहगोधाधिरांसि च॥
षड्बिन्दु करवीरोखं मदनस्य फलं तथा।
एतानि सर्वचूर्णानि उद्रोचीरेण पेषयेत्।
एष ग्रस्तप्रलेपस्तु राजभव्विनामक्तत्॥ ६॥
कृष्णसपीभरांस्यष्टौ तत्तुः चित्रमूलकम्।
हालाहलञ्च तत्तुः हरितालं चतुःपलम्॥
तिपलं पद्मकाष्ठञ्च पलाभफलषोड्मः १।
लाङ्गली करवीरञ्च नागकेभरकं तथा॥
प्रत्येकं तिपलं चूर्णं गर्दभीवसया सह।
एकोक्तत्य पेषयेच सर्वभस्तेषु लेपयेत्॥
परसैन्यारिवर्गेषु स्पृष्टे स्यान्मरणं ध्रुवम्॥

 <sup>\*</sup> तत्फले इत्यच रक्तपुस्तूरफले, एवं िसयते इत्यव शतुसेनापदं संयोज्यान्वय
 बीध्य: ।

<sup>†</sup> पलाग्रफलधीड्म: अत धीड्मपल इत्यन्वये यीजना।

वापीकूपतड़ागानां जलमतेन दूषयेत्। पिवन्ति तज्जलं ये तु ते स्वियन्ते शिवोदितम्॥ "श्रीं नमो भगवते उड्डामरेश्वराय दह दह पच पच य मारय ठ: ठ: स्वाहा" ॥ ७॥ क्रकलासस्य रक्तेन मांसेन वसयाऽयवा। लैपयेत् सर्वशस्त्राणि लेपनान्मारयेद्रिपुम् ॥ "श्री नमी भगवृते रुट्राय घातय घातय ठः ठः" ॥ ८ ॥ पूजा पूर्वमधोरस्य पञ्चलचमिदं जपेत्। ब्रह्मचारी जितक्रीधः पग्रसम्बन्धवर्जितः। कुलाचाररतो वीरः सदाचारः सुदीचितः॥ दिनान्ते नत्तभुक् गुडो भूमिशयो जितेन्द्रिय:। अञ्जलीन् तर्पयेत् सप्त जपेद्रद्राचमालया ॥ पञ्चलचे क्रते जापे होमं कुर्याइगांगत:। शिवशित्तममुद्भूते षट्कोणे मेखलाऽन्विते॥ इस्तमावप्रमाणेन खनयेत् कुण्डमुत्तमम्। महास्यमहिकर्णेञ्च चन्द्रसूर्य्याग्निलोचनम्॥ सदंप्टं तं महाजिह्नमूईवक्तं विचिन्तयेत्। प्टतातं इविरादाय सगमुख्याद्यमुद्रया ॥ भैरवास्ये महारौद्रे जुहुयान्मन्वसिद्ये। एवं सन्तोच देवेशं मन्त्रयैवान कथाते॥

"कीं अबीरे एव अबीरे क्लीं घोर घोर श्रीय सूर्यों तु सर्व फे रुट्ररूपे स्त्री नमस्ते"।

एषा विद्या श्रवीराख्या सर्वशास्त्रेषु गीपिता।
प्रस्तुरा पश्चिमान्नाये पञ्चप्रणवसंयुता॥
प्रस्तुरा श्रक्षुदेवेन मेरुतन्त्रे प्रकाशिता।
पूजनाज्यपनाद्योमात् सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्॥

यया सम्प्राप्यते वीरस्तयेदानीं निगद्यते।
विलेप्य सर्पपान्मन्त्री ब्रह्मपुष्पाणि हीमयेत्॥ ८॥
श्रष्टोत्तरसहस्रन्तु संख्या सर्वेत्र सिंदिदा।
ब्राह्मी सन्तोषमायाति ब्रह्मास्त्रं सा प्रयच्छिति॥
कल्पान्ते ब्रुद्धकालाग्निसदृशं कुण्डमध्यतः।
उत्तिष्ठत्यस्त्रमत्युगं देवासुरभयङ्गरम्।
ग्रहीत्वा पाणिनास्त्रच्च सर्व्वेश्वर्थमवासुयात्॥

"श्रीं श्रघोररूपे श्रीव्राह्मि! श्रवतर श्रवतर व्रह्मास्तं दे। देहि स्वाहा"॥ १०॥

मेषरक्तेन संलिप्तलाङ्गलीपुष्पचीमतः।
श्रष्टोत्तरसद्दस्येण माहियी मन्त्रदा भवेत्॥
कालानलसमप्रस्थं दुर्जयं निर्जरेरिष।
तदादाय करि मन्त्री स्पर्दयिदिदिषां श्रियम्॥

"श्रीं श्रघोररूपे श्रीमाईखरि! श्रवतर श्रवतर पावव देहि मे देहि स्वाहा"॥ ११॥

मि हिषोत्येन रक्तेन संयुक्त कुझुमा हितम्। श्रष्टोत्तरसहस्रन्तु कौमारी शक्तिदा भवेत्॥ तया करस्यया मन्त्री साध्येदवनोतलम्। सर्वराजकमाक्रम्य महेन्द्र इव राजते॥

"श्रीं श्रघोरक्षे श्रीकौमारि! यितां यस्तं देहि मे स्वाहा"॥ १२॥

> उन्त्रकारोणिताभ्यक्त-विभीतपत्रहोमतः। श्रष्टोत्तरसहस्रन्तु हुत्वा \* तुष्यति वैणावी॥ चन्द्रहासञ्च सा दत्ते करस्ययक्रवर्त्तिजित्।

<sup>\*</sup> इला इत्यव इला वर्त्तमानसेत्यध्याद्वारीऽनये बीध्य:।

अवत्यसौ महावीरो राजते वर्तणो यथा॥ 'श्रीं सीवैणावि अवतर अवतर खद्धं देहि मे देहि ग"॥१३॥

मीनस्रेहसमायुक्त-वरुणेन्धनहोमतः।
अष्टोत्तरसहस्रेण वरुणास्त्रं लभेन्नरः॥
मन्त्रिपाणिगतं दृष्ट्वा तदस्त्रं वसुधातलम्।
प्रावयन्ति जलीघेन मेघा दर्दुरगर्जिताः॥
'श्रीं श्रघीररूपे श्रीवाराहि। श्रवतर श्रवतर वरुणास्त्रं देहि
हिस्साहा"॥ १४॥

वजपत्तवदुष्धाभ्यां होमादेव प्रसीदित ।

श्रष्टोत्तरसहस्रेण कुण्डमध्ये हुताशनम् ॥

ग्रहोत्वा पाणिना मन्त्री मारयेद्दष्टभूभुजः ।

तदीयं राज्यमासाद्य कुर्य्यादम्ममनेकधा ॥

श्रिं श्रघोररूपे श्रीदन्द्राणि ! श्रवतर श्रवतर वजं देहि मे

स्वाहा" ॥ १५ ॥

अष्टोत्तरसहस्रन्तु साज्यश्रीफलहोमतः।
तिशूलं कुण्डमध्योत्यं महालक्ष्मीः प्रयक्किति।
दुर्जयो देवदैत्यानां कैलासमनुगक्किति॥
"श्रीं श्रवीररूपे श्रीमहालक्षिः! श्रवतर श्रवतर श्रूलं देहि
हि स्वाहा"॥ १६॥

श्रष्यरक्तेन सलिप्तदेवदार्व्विश्वने हते। चतुर्दशसहस्राणि विपरीतप्रयोगतः॥ देहि मे रय उचार्य्य मन्त्रान्ते साधकोत्तमः। लभते नन्दिगोपाख्यं रयं ब्राह्मीप्रसादतः॥ खेताखिकिङ्गणोजालमण्डितं खेतकेतनम्। तमारुह्य महावीरो विचरेद्भवनत्रये॥ मन्त्र ।— "स्वाहाही देहि मे देहि अवतर अवतर त ब्राह्मी पररघोर आद हि मे रथं पूजां वच्चे अघोरस्य अस्त सिडिदायिनीम्" ॥ १७॥

गुडे गुभे ग्टहे कुर्याद्रचापूर्वं शिवोदितम्। श्राष्ट्रयं खदिरोस्रञ्ज देवदार विभीतजम्॥ ग्रीडुम्बरीत्यं चिच्चोत्यं वटोत्यं वृत्तसभावम्। कीलकं पूर्वमारभ्य रुट्रान्तं निखनेत् क्रमात्॥ सुकीलकात् इस्तमात्रात् ब्राह्मी धनुषमन्त्रितात्। क्रववं भसाना सावा रक्तक्रणाम्बरः ग्रुचिः॥ केशजं वाऽय दर्भीत्यं धार्यं यज्ञोपवीतकम्। पञ्चमुद्राधरो भूला सगचर्मक्रतासनः॥ करग्रु प्रकुर्वन्ति पञ्चभिः प्रण्वैः क्रमात्। च्चिरस्तालुकावक्तनेत्रैकैकेकशो गतः। पञ्चिभः प्रणवैश्वास्तं स्वस्वनामान्वितं न्यसेत्॥ "ग्रों क्वीं प्रों पें पञ्च प्रणवाः" ॥ रोचना मधुकर्पूरं कुङ्कुमं चन्दनं तथा। एतैर्मण्डलमालिख्य चतुरसं समं ग्रुभम्॥ तनाध्येऽष्टदलं पद्मं मद्यपातञ्च कारयेत्। सश्तिपरमेशानं यत्ते तत्कुम उच्यते ॥

नद यथा— "पूर्वस्यां "श्रों श्रघोरे ऐं व्राह्मि ! श्रवतर श्रव नमः" । श्राग्नेय्यां "श्रों श्रघोरे क्रीं कामेश्वरि ! श्रवतर श्रव नमः" । दक्तिणे "श्रों घोर घोर कोमारि ! श्रवतर श्रव नमः" । नैर्ऋे त्यां "गं श्रीं वैणावि ! श्रवतर श्रवतर नम पश्चिमस्यां "सर्वतः खेतवाराहि ! श्रवतर श्रवतर नमः" । वाः "सर्वे फें द्रं इन्द्राणि ! श्रवतर श्रवतर नमः" । उत्तरस्यां " रूपे चामुण्डे ! श्रवतर श्रवतर नमः" । ईशाने "च्रीं नम् ालिच्मि ! त्रवतर त्रवतर नमः"। मध्ये मूलविद्यया देवं यित्। "ग्रीं त्रीं कठादिगुरुभ्यो नमः"॥ १८॥ त्रव चेवपालपूजा। "चां चीं चूं चौं चेव्रपालाय नमः। विलं इस्त्राहा"।

श्रङ्ग श्री गर्भकी कला कमले कर्णिकाविव। त्रङ्खष्टाकीपताष्टी पद्ममुद्रा त्वियं भवेत्॥ मुष्टिइयकिन्छाभ्यां विदार्थ सक्सणीइयम्। करालीयं भवेन्मुद्रा लोलजिह्वाप्रचालनात्॥ किनिष्ठाऽन्योऽन्यमात्रस्य सङ्ख्याङ्गुलकं इयम्। मध्यमाभ्यां समाक्रस्य तर्ज्जन्यग्री धृती स्मृती॥ नीता पराझ्खेऽनामे \* पृष्ठलोले विचिन्तयेत्। स्वाहा हं फें कतै: कायचालनाद्वरवी मता॥ मुखस्य विक्तताकारकरणादिकतानना। मुद्रा भवति सामर्थ्यदायिका शङ्करोदिता। एषा पूजा समाख्याता कर्त्तव्या मन्त्रसिद्धये॥ १८॥ रविवारे सताया गोः कीलानस्थिसमुद्भवान्। चतुर्दि चु चतुःकीलान् ग्रङीला चिक्नयेत् स्वयम्॥ रचयेत्तान् प्रयतेन रुट्रमन्तेण मन्तितान्। चतुर्णां दापयेडस्ते ते धावन्ति सुवेगतः॥ पूर्व्वदिक् पूर्व्वकं कीलं दिचणे दिचणं तथा। पिंचमे पिंचमं कीलम् उत्तरे उत्तरं नयेत्॥ श्रवारूढ़स्तु वा गच्छेत् पद्मग्रां वातसुवेगतः। अग्रनि: ग्रलभा मेघा यान्ति वर्षोपलाः चयम्॥ यावद्रच्छन्ति ते दूरं तावहाधा न विद्यते। गत्यन्ते संस्थितस्तव याममात्रं जपेनानुम्॥

पराङ्मुखे द्रयस्य नीचैरित्यथं:।

कीलकात्रिखनेत्तत्र प्रत्यागच्छेत् सुमन्त्रितान्। कीलकान् पातरादाय रच्चयेत् खग्यहे सदा॥ विद्युत्पातो न तत्रास्ति ग्रामे वा नगरेऽपि वा। एवं यदा यदा बाधा तदा कार्थां पुनय तै:॥

"ग्रीं नमी भगवते उड़्डामरेश्वराय सर्व्वदृष्टमेघाशनी सञ्जय सञ्जय नाग्रय नाग्रय स्वाहा ठः ठः"॥ २०॥

चन्द्रस्र्योपरागे तु वामलूरसमुद्भवाम् । तरणीं \* याच्येच्छुडो रच्चास्त्रेण विष्टिताम् ॥ खद्भमृष्टी तु संस्थाप्य पुनस्तं बन्धयेद्दढ्म् । वीरासिस्पर्भमात्रेण तिधाऽस्तं खण्डितं भवेत् १ ॥ २ दित यीसिदनागार्जुनविरिचिते कचपुटे सैन्यस्थनं नाम

श्रष्टमः पटलः।

## अय मोहनम्।

महिष्याः कणासर्पस्य रक्ते चूर्णन्तु क्ष भावयेत्।
कणाधुस्तूरपञ्चाङ्गं तहूपो मोहकनृणाम्॥१॥
गुड़ं करञ्जवीजञ्च घुणचूर्णेन संयुतम्।
समं पानिऽयवा धूपे मोहं प्रकुर्तते नृणाम्॥२॥
हस्तिनोमहिषीणाञ्च याद्यं चुरमलं मुदा।
मयूरस्य १ फलैः सार्वं धूमो द्यात्यन्तमोहकत्।
वृश्चिकोङ्गवचूर्णेन धूपो मोहकरो नृणाम्॥३॥
गरलं धूर्त्तपञ्चाङ्गं महिषोशोणितं कणा।

<sup>\*</sup> अत्र वृत्तकुमार्थ्ययें तर्गीपदप्रयोगीऽवगन्तचः।

<sup>†</sup> अत विपचसीत श्रेष: योजनीय: अन्वयवीचे।

<sup>🙏</sup> श्रव चूर्णपदेन प्रायीगिकसामञ्जरीन घुणचूर्ण बीध्यम्।

<sup>§</sup> अत्र मयूरशब्देनापामार्गो याद्य:।

निशायां कुरुते मोहं धूपो गुगुनुसंयुत: ॥ ४ ॥ कुक्टारङकपालानि फलिनी तालकं वचा। कनकाग्नियुतो धूपः स्वस्थस्यावेशकारकः॥ ५॥ त्वणान्तरजनीकाया विष्ठा वाऽजगरोद्भवा। तच् र्णेर्ध्रिपता रात्री मुद्धन्ति प्राणिनो भ्रुवम् ॥ ६ ॥ इलिनीविषधुस्तूरशिखिविष्ठाभिरन्वितः। समभागस्तया धूपो मोह्यखेव निश्चितम्॥ ७॥ विशालाऽग्निशिलाचूणं लाङ्गली शिखरी जटा। महिषाचञ्च तुल्यं स्याडूपो मोहयते नरम्॥ ८॥ तालकोन्मत्तवीजानां पानं मीच्यते नरम्। ममं चीरसिताऽङ्गीलपानात् खस्यः भवेत्ररः ॥ ८॥ कुच्छ्न्दरी सर्पमुण्डं हिश्वनस्य तु कण्टकम्। इरितालं समं धूपो मोहाविशकरो तृणाम्॥ १०॥ घुणचूर्णं विषं विम्वं मोहिनी अङ्गुलि: \* कणा। विशाला खर्णवीजानि सर्षपा मादनं फलम्॥ रक्ताखमारचूर्णन्तु समभागन्तु भावयेत्। यादित्यफलतूनञ्च तन्तुवर्त्ति विधाय च ॥ कुसुमा तन्तुभिगीढ़ं मायावीजेन विष्टितम्। सप्तधा कनकद्रावैभीवयेच्छोषयेत् पुनः॥ ड्राड्भो जलसर्पी वा वसां तस्य समाहरेत्। वसालिप्तां पूर्व्ववित्तं प्रज्वाल्य धारयेद् ग्टहे। ये पर्यान्त गरहे वाद्ये मुद्यन्ति न पतिन्त च ॥ ११ ॥ मदनोडुम्बरिश्वा प्रियङ्ग चामलीफलम्। बदरी च फलान्येषां प्रतिसप्त समाहरेत॥

अङ्खिरच विपुरमिल्लवाबीधिका।

पुष्यार्के नरसूत्रेण कुमार्थ्युखरसेन च। सम्पेष्य गुटिका कार्या तिलको मोहकारकः॥

"श्रीं जं जन्भाये नमः । चुं स्तन्भायैः नमः । श्रों सम्मोहा नमः । श्रों द्वां शोषाये नमः । श्रीं महाभैरवाय नमः श्रीं श्रीभैरवानन्द श्राज्ञापय श्रीवीरभद्र ! श्राज्ञापय एवं समादिनचैनींइनप्रयोगा श्रष्टीत्तरशतमभिनन्त्र प्रयोज्याः ॥ १२ ॥

प्रत्यानयनकं वच्चे येन मोही विनम्यति। यतपुष्पं छतं चीरं खेतार्केच पिवेत् सुधीः। गोसपि:सुरधूपेन मोहात् सुख्यो भविष्यति॥ १३॥

भय उचाटनम्।

अयातः सम्प्रवच्यामि शक्रणां दृष्टचेतसाम्।
उचाटघातविस्सोट-व्याध्युन्मादादिकारणम् ॥
पग्रभस्यार्थनाशच प्रवच्यामि समासतः।
वेदशास्त्रागमाद्येषु ब्रह्मविणुमहेश्वरैः ॥
कयितं सर्वदा सर्वेर्दृष्टदण्डो विधीयते ॥ १ ॥
येनाहृतं ग्टहं चेत्रं कलतं धनधान्यकम्।
मानं वा खिण्डतं येन तस्य दण्डो विधीयते ॥ २ ॥
उड्डीशं यो न जानाति सन्तुष्टः किं करिष्यति !
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दृष्टदण्डो विधीयते ।
हतो यो नाऽतिकोपेन सोऽतिशोकेन सिध्यति ॥ ३ ॥
पञ्चाङ्गलं चित्रकस्य मूलं ग्राह्यं पुनर्वसौ ।
सप्तामिमन्त्रितं गेहे निखन्योचाटनं भवेत् ॥
"श्रीं लोहितमुखि ! स्नाहा" ॥ ४ ॥
स्वात्यामोड्स्वरं ब्रभं मन्त्रितं चतुरङ्गलम् ।

तं यस्य निखनेट् गेहे तस्यैवोचाटनं भवेत्॥
"श्रीं गिलि स्वाहा"॥ ५॥

भरखामङ्ग्लीमात्रमुलूकास्य च कीलकम्।
सप्ताभिमन्त्रितं गेहे निखन्योचाटनं भवेत्॥
"श्रीं दह दह दल दल खाहा"॥६॥
काकोलूकस्य पचन्तु हुला ह्यष्टाधिकं ग्रतम्।
यत्नामा मन्त्रयोगेन तस्य चोचाटनं भवेत्॥

"श्रीं नमी भगवते रुद्राय दंद्राकरालाय श्रमुकं सपुत्तपश-वान्धवै: सह इन इन दह दह पच पच शीव्रमुचाटय हुं फट् स्वाहा ठ: ठ:"॥ ७॥

पारावतवसा याद्या यस्य नामा तु तां चिपेत्।

ग्रहे तूचाटयेच्छीघ्रं कोपान्मन्तं समुचरेत्॥ ८॥

नरास्थिकीलकं धीरः निखन्याचतुरङ्गुलम्।

मन्त्रयुक्तमरिद्वारे सत्यमुचाटनं भवेत्॥

"श्रीं नमी भगवते रुट्राय श्रमुकं यह यह पच पच त्रासय त्रासय त्रोटय नोटय नाशय नाशय पशुपतिराज्ञापयित ठः ठः"। उक्तथीगइये श्रयं मन्तः ॥ ८॥

मध्याक्ते लुठते भूमी गर्दभी यत्र धूलिकाम्।
उद्झुख उदीचान्तु ग्रह्णीयाद्यामपाणिना।
यद्ग्रहे चिष्यते धूलिस्तस्यैवीचाटनं भवेत्॥ १०॥
काकस्य मस्तकं ग्राद्यं तिलत्तेलेन पाचयेत्।
तत्तेलाभ्यङ्गमावेण शत्तोक्चाटनं भवेत्॥

"श्रीं नमी भगवते रुट्राय ज्वालाग्निसंख्यादंष्ट्राट्रावणाय स्वाष्ट्रा"। उक्तयोगद्वी अयं मन्तः ॥ ११ ॥

> ग्रम्बस्यकौत्तमिष्वन्यां निखनेत् सप्तमिन्नितम्। यस्य गेर्हे भवेत् सत्यं \* ग्रीघ्रसुचाटकारकम्॥

<sup>\*</sup> अव तस्येति श्वः योजनीयः।

"श्री खं गु: ख: खाखाविनी खाहा" ॥ १२ ॥

क्षत्तिकायां सर्जकीलं निखनेत् सप्तमन्त्रितम् ।

यस्य गेहे च तं शत्रुं शीघ्रमुचाटयेद् ग्टहात् ॥

"श्रीं नमी भगवित दुत दुत खाहा" ॥ १३ ॥

निम्बकीलकमार्द्रायां निखनेत् सप्तमन्त्रितम् ।

यस्य गेहे च तं शत्रुं शीघ्रमुचाटयेद् ग्टहात् ॥

"श्रीं नमो भगवित कामकृपिणि खाहा" ॥ १४ ॥

शिवालयाद्गीमवारे श्रादाय चतुरिष्टकाः ।

प्रत्येकं प्रतिकोणे तु निखनेच्छत्रुमन्दिरे ।

निखनेत् तहृहहारि श्रधःपुष्यं सचन्दनम् ॥

सप्तराते न सन्देही महदुचाटनं भवेत् ।

"श्रीं नमो भगवित उद्यामग्रिकाय वायक्रपाय चन चन त्र

"त्रीं नमी भगवते उड्डामरेखराय वायुरूपाय चुनु चुनु ठः ठः"॥ १५॥

गुज्जामूलं ग्रहदारे निखन्योचाटनं भवेत्।

प्रथवा मूलनचते न्यस्तं खिद्रिप्तप्तकम्॥ १६॥

धातीफलस्य चूर्णन्तु ग्रङ्गोलतेलभावितम्।

उच्चाटितो भवेन्मूर्षि सानाज्ञोचीरतः सुखी॥ १०॥

ब्रह्मदण्डीं चिताभस्म विड़ालस्यास्थि वाऽऽहरेत्।

समं शूक्तरमांसञ्च कच्छपस्य शिरस्तया॥

नृकपाले विनिचिष्य निखनेच्छतुमन्दिरे।

सञ्जुद्रस्वं समूलञ्च सत्यमुज्ञाटयेत् चणात्॥ १८॥

नरवाराह्मांसञ्च ग्रप्रस्यास्थि विषं समम्।

गोपादं महिषीपादं निखनेच्छतुमन्दिरे।

उल्कपचाण्ययवा महदुज्ञाटनं भवेत्॥ १८॥

ब्रह्मदण्डी चिताभस्म चित्रकं रुधिरं विषम्।

शूक्तरस्य तु रोमाणि वीजितक्तं सनिस्वकम्।

सप्ताहं यह्नुनाम्ना तु हुत्वा चीचाटनं भवेत्॥
"श्रीं नमी भगवते उड्डामरेश्वराय उच्छादय उच्छादय
ाटय उचाटय हन हन ठः ठः"। गुझादीनामुक्तानामयं॥ २०॥

क्रण्यचे यनौ भीमे भरखार्द्राऽय क्रित्तका।
चितिकाष्ठायमादाय कीलकं चतुरङ्गुलम्॥
वेष्टयेच्छवकेंग्रेस्तु आग्नेय्यां दिश्चि मन्त्रयेत्।
अष्टोत्तरशतं जष्ठा स्यां दृष्टाऽतिकोपतः।
तं यस्य निखनेद्वारे शोघ्रमुचाटनं भवेत्॥
"श्रीं च्लीं यम यम उज्जूककरासे विद्युज्जिह्ने। अमुकगटय हं फट्"॥ २१॥

क्रागरतं विषं राजी चिताऽङ्गारै: सहैकतः ।
नामग्रस्तं लिखेनान्तं काकपचेऽतिरोषतः ।
श्मग्राने निखनेत्तच दशाहादेव साधयेत् ॥
"ग्रीं द्वीं देढ्रां दढ्रां तद्वां उच्चाटय द्वां ठः" "ग्रीं क्लीं रेट्रां द्रां
तद्रां ग्रमुकं उच्चाटय द्रां ठः" ॥ २२॥

उष्ट्रारूढ़ं रिपुं ध्याला हन्याइण्डेन मन्त्रित:। दिचणाटिक् विसप्ताहं देशादुचाटयेद्रिपुम्॥ "श्रीं क्रीं यम यम उब्नूककराले विद्युज्जिह्ने! श्रमुकमुचाटय हट्"॥ २३॥

काकपचं रवी याद्यं वेष्टयेदहिकञ्ज्तैः।
कुसुभस्तैस्तदाद्ये वेष्टितव्यं ततः पुनः॥
निम्बपने रिपोर्नाम लिखिला वेष्टयेच तम्।
तद्दिचितिभस्मेन स्तवस्त्रेण वेष्टयेत्।
तं यस्य निखनेद्वारे तस्यैवोचाटनं भवेत्॥ २४॥
अधःपुष्पीसुरामांसी-चितिभस्मसमन्वितम्।

कूर्ममुण्डञ्च पत्रस्थं निखनेच्छतुवैश्मनि । उचाटितो भवेच्छनुः सप्तरात्रान्न संगयः ॥

"श्रीं नमो भगवते उड़ामरिखराय उच्छादय उच्छा विदेषय विदेषय हन हन ठ: ठ:"। उक्तयोगइये अयं मन्तः॥ २

रवी ग्रध्नालयो ग्राह्यः पुनः काकालयो रवी।
चितिकाष्ठं रवी पश्चात् सर्षपन्तु रवी दहेत्॥
ग्रामाद्दिश्च तद्भस्म स्थापयेन्निचिपेद्रिपोः।
मूर्षन्युचाटितो गच्छेन्नोमयस्नानतः सुखी॥ २६॥
कक्कलासं निहन्यादी स्नापयेत् पूजयेत् पुनः।
स्वेतवस्तेण संवेष्ट्य किश्चित् कुर्य्याच रोदनम्॥
ततः काकालयोः ग्राह्यः चाण्डालानां ग्रहान्तिके।
ग्रमग्रानविक्तना चैव दहनीयौ चतुष्पये॥
उच्चाटनं भवेत् तस्य स्त्रीपुच्चपग्रबान्धवैः।
तद्भस्म वस्त्रसम्बद्धं चिपेद् यस्य ग्रहोपरि॥ २०॥
निम्बात् काकालयं दग्ध्वा ब्रह्मदण्डीश्च भस्म तत्।
स्त्रेच्छ्चचाण्डालविप्राणां त्याणां चितिभस्म च॥
मूमधूच्छ्छ्षसंयुक्तां गुटिकां कारयेद् दृदाम्।
ग्रतोः शिरिम नद्याञ्च चिपेदुचाटयेद्रिपुम्॥

"ग्रीं नमी भगवते उड्डामरेखराय दंष्ट्राकरालाय कर्ष रूपाय ग्रमुकं सपुत्तपग्रवान्धवं हन हन दह दह मय श्रीघ्रमुचाटय हुं फट्ठ: ठः"। उक्षयोगवयाणामयं मनः॥ २८

चतुर्दिक्षृत्तिका याद्या यामस्य नगरस्य वा। वष्यभस्य मलैः सार्वं पञ्चपुत्तिकाः क्रमात्॥ ताः ग्रामस्य चतुर्दिच्च एकैकं निखनेत् पुनः। पञ्चमीं ग्राममध्ये तु कुण्डे वा निखनेद्भुवि॥ इनेदष्टसहस्रन्तु तत्रेव कनकानले।

तद्भसमृष्टिमादाय तिस्मन् ग्रामे विनिचिपेत्।
सप्ताभिमन्त्रितं कत्वा ग्रामस्योचाटनं भवेत्॥
"ग्रो नमो भगवते महाकालाय दह दह भज्जय भज्जय
मोइय मोइय स्मर निग्रह ठः ठः हं फट्"॥ २८॥
ब्रह्मदण्डीं चिताभस्म शिवलिङ्गेषु लेपयेत्।
ग्रिश्नास्थि च मनुष्यास्थि केग्रैयण्डालविप्रयोः।
स्त्रेण च दिग्रो बह्वा देगस्योचाटनं भवेत्॥

श्री नमः कालराति श्रूलहस्ते महिषवाहिनि रुद्रकालक्कत-शेखरे श्रागच्छ श्रागच्छ भगवति । श्रुतलवीर्ध्यं सर्वकर्माण् मे वशं कुरु कुरु महिष्वर श्राज्ञापयति श्रीं श्रीं स्वाहा"॥ ३०॥

> इति श्रीसिङ्जनागार्जुनविरचिते कचपुटे मीइनीचाटनं नाम नवम: पटल:।

#### अथ मारणम्।

नरास्थिकीलं पृथे तु ग्रह्णीयाचतुरङ्गुलम्।
निखनेत्तं ग्रहे यस्य भवेत् तस्य कुलच्चयः॥
"श्रीं वुं वुं भूं भूं वुं फट् स्वाहा"॥१॥
ग्रखास्थिकीलमधिन्यां निखनेचतुरङ्गुलम्।
ग्रह्णोर्गेहे निहन्त्याग्र कुटुम्बं वैरिणां कुलम्॥
"श्रीं सुर सुरे स्वाहा"॥२॥
सर्पास्थ्यङ्गुलमाचन्तु ह्यस्नेषायां रिपोर्गृहे।
निखनेत् सप्तधा जप्तं मारयेद्रिपुसन्ततिम्॥
"श्रीं जयविजयति स्वाहा"॥३॥
भृते काकालयो ग्राह्यः देयसाग्नी सचैतसा।

अङ्खेनिन तद्भस शत्मूईनि निचिपेत्। मियते नाच सन्देहो ग्रहे चिप्ते कुलच्यः॥ "श्री नमो भगवते रुट्राय मारय मारय नम: खाहा" ॥४॥ षड्बिन्दुव्यक्षिको याद्यौ विषं तद्दानरीफलम्। एतच् ण पदातव्यं शतुश्याऽऽसनादिषु । जायते स्फोटकी तीवा दशाहानारणं ध्रवम्॥ ५॥ मातुलुङ्गस्य वीजानि कीटं षड्बिन्दुमंज्ञकम्। कपिकच्छुकरोमाणि हिङ्गु वैभीतकं फलम्। एतानि समचूर्णानि तथा मण्डलकारिका। पूर्व्ववत् प्रचिपेत् श्रवोमीरणं भवति ध्रुवम् ॥ ६ ॥ तिलै पलं सकुमुदै: समार्गं रक्तचन्दनम्। कुष्ठकुकुटिपत्तञ्च लेपनेन सुखावहम्॥ ७॥ खर्णकेशच सङ्घाद्यं तदास्ये शतुजं मलम्। चिष्वा तद्रक्तस्त्रेण वेष्टयित्वा ततः पुनः॥ भक्षांतकफलै: सार्डं रुड्डा तन्मारयेद्रिपुम्। प्रचालयेच्छनैरङ्गिस्तजीवात् तस्य जीवनम् ॥ ८॥ स्नानभूसूत्रभूसत्तां सर्पवत्ने विनिचिपेत्। वेष्टयेत् क्षणासूत्रेण मार्गमध्ये अधीमुखम्। निखनीन्यते शतुस्तस्योत्पाटे सुखं भवेत्॥ ८॥ गर्दभस्यास्य चादाय क्षणाऽजगरकं प्रिरः। निखनेट् यस्य तद्वारे मारणोचाटनं भवेत्॥

"श्रों नमो भगवते उड्डामरेखराय श्रमुकं मारय मारय"।

उक्तयीगानामयं मन्तः ॥ १०॥

ग्राह्या क्रण्वतुदेश्यां गाखा भूततरोः स्थिता।

स्तकस्य हृदिस्यैय भूतकाष्ठैय तां दहेत्।

तदङ्गारैर्जिखेनान्तं तदा ग्रतुर्भृतो भवेत्॥

"ग्रीं नमो भगवते उड्डामरेखराय त्रमुकं हर हर रच रच कालरूपेण स्वाहा" ॥ ११ ॥

> वामदन्तं कुलीरस्य श्रधोभागस्यमाहरेत्। शराग्रे तत्फलं कुर्याद् धनुश्च विजितेन्द्रियः॥ गवां शिरागुणं कृत्वा श्रद्धं कुर्याच सन्मयम्। तं हन्यात् तेन वाणेन स्वियते तत्त्वणाद्रिपुः॥

"श्रीं नमी भगवते रुट्राय यमरूपिणे कालं संशयावर्ते संहारे शत्रुम् श्रमुकं हन हन धुन धुन पाचय घातय हुं फट ठ: ठ: ठ: "॥ १२॥

> गोधालाङ्गलमूलञ्च क्रवलासिशरस्त्या। दन्द्रगीपं वंग्रशिखा ऋस्य मूत्रं गजस्य च॥ हालाइलं नृमूबेण समभागं सुपेषितम्। तेन स्पर्शनमाचेण स्फोटकैर्म्चियते रिपु:॥ १३ ॥ ऊर्णनाभञ्च गड्विन्दुं समारंगं क्रण्विविकम्। यस्याङ्गे निचिपेचूणं सप्ताहात् स्फोटकौर्मृतिः। मयूरिषच्छनोलाञ्जं पिट्वा लेपो सुखावहः॥ १४॥ रिपुविष्ठां वृश्विकञ्च खनित्वा भुवि निचिपेत्। याच्छादाच्छादनेनाय तत्पृष्ठे सत्तिकां चिपेत्। म्वियते मलरोधेन उहरित् स सुखी भवेत्॥ १५॥ यो सतो भरणी भीमे तक्क्सादाय रच्चयेत। रिपुविष्ठासमायुक्तं शरावसम्पुटोदरे॥ मृतकेशैस्तदा विध्य शूचाऽऽगारेषु लम्बयेत्। यावच्छुप्यति तदिष्ठा तावच्छनुर्मृतो भवेत्॥ १६॥ मुण्डमादाय गोश्वेव तदत्ती सर्वपान् चिपेत्। मदालिप्य पचेदग्नी गरहीत्वा सर्पपांस्ततः। यस्याङ्गे प्रचिपेत् तस्मात् स्मोटकै स्त्रियते रिपुः॥

"ग्रीं नमो भगवते उड्डामरेखराय श्रमुकं कालरूपेण ठ: ठ: ठ:"। उक्तयीगानामयं मन्तः ॥ १७॥

> खेतापराजितामूलं कुष्ठं लवणकं विषम्। ग्रग्रवाराहमायूरगोधानां पित्तकं तथा॥ महानिम्बस्य पत्नाणि समं सप्तदिनं हुनेत्। मारयेदद्वुतं ग्रत्नुं यदि साचान्महासुरम्॥

"श्रीं नमी भगवते उड़ामरेखराय मम ग्रनुं ग्रह्ण ग्रह्ण स्वाहा"॥ १८॥

> स्थानभ्रष्टस्य लिङ्गस्य मूर्प्ति पत्रं समालिखेत्। सपुष्पं क्षागरत्तेन चित्यङ्गारविषेण च॥ सिखित्वा रोषचित्तेन तच्छेषं लेखयेत् करौ। अध्वचर्माासने स्थित्वा ततो मन्त्रमिमं जपेत्॥

"श्रों नमो भगवते रक्तवर्णे चतुर्भुजे ऊर्द्वकेशे विक्ततानने कालरात्रिमानुषाणां वसारुधिरभीजने श्रमुकस्य प्राप्तकालस्य मृत्युप्रदे हुं फट् इन इन दह दह मांसं रुधिरं पिब पिव पच पच हुं फट्"।

श्रमं मन्तं जपेद्राती रोषिचत्तो रिपं स्मरित्। श्रिष्ठराती तु इस्ताभ्यां मार्जयेत्तिङ्गमस्ति ॥ भ्रष्टे पत्ने मस्तकस्थे तत्त्वणान्मियते रिपुः। दृष्टः प्रत्यय एवायं सिष्ठयोग उदाहृतः॥ १८॥ रक्ताश्वमारजं वाणं ग्रनोऽस्थिनिसीतं धनुः। स्तकेश्रेगुंणं कुर्यादुत्तरादिच्णामुखः॥ वकारसदृशान् कुर्यात् सिन्दूरैः सप्तमण्डलान्। कुक्त्रं शत्नुनामा तु सप्तमे मण्डले स्थिते॥ प्रत्येकमण्डले पूज्यं धनुर्वाण्ड मन्त्रतः। क्रमात् षरमण्डले प्राप्ते ततो इन्याच कुकुटम्। मन्त्रेण स्वियते सोऽपि टूरस्थोऽपि रिपुः चणात्॥ २०॥

> इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कचपुटे मार्यः नाम दशम: पटल: ।

### अय विदेषगम्।

काकोल्कस्य पचांस्तु ययोर्नामा तु होमयेत्। उभयोर्नश्यित प्रीतिः कुरुपाण्डवयोरिव ॥ १ ॥ काकोलूकखराखानां चतुर्णां ग्राइयेच्छिरः। निखनेद् द्वारदेशे तु तहु है कल हः सदा ॥ २॥ व्रच्चदण्डास्तु मूलानि काकमस्तकमेव च। जातीपुष्परसैभीव्यं सप्तराचं ततः पुनः। विदेषकारको धूपः शिखिपिच्छाहिकचुकः॥ ३॥ मूषमार्जाररोमाणि विप्रस्य चपणस्य च। एव विद्वेषको धूपः पत्योः पित्रोः सुतस्य च ॥ ४ ॥ उल्किजिह्वामादाय विदारीरसभाविताम्। सीदराणामयं धूपो भवेदिदेषकारकः ॥ ५ ॥ अधःपुष्पीं सोमवारे सूत्रेणाविद्य मन्त्रयेत्। भीमवारे समुबुत्य पाटयेत् तां दिधा समम्। यस्य नामा चिपेनयां सा स्ती सत्यं पतिं त्यजेत्॥ ६॥ काकोल्कस्य पचांस्तु माजीरस्य नखानि च। पादपांश तयोग्रीह्यं कटुतैलेन होमयेत्। एकविंग्रदिने तेषां विदेषो जायते ध्रुवम् ॥ ७॥ याद्रीयां विप्रमार्जार-मूषकच्चपणस्य च। केशरोमाणि संग्टह्य सम्यक् चूर्णं प्रकल्पयेत्।

ति ति प्रदर्भणं दृष्टां विदिषित्त परस्परम्॥ ८॥
मिहषीच्छागयोर्मेदोष्टतदीपस्य कज्जलै:।
श्रिक्तिताचो नर: पश्येदिदिषित्त परस्परम् ॥ ८॥
ब्रह्मय्यस्य ग्रष्ट्रस्य काष्ठमेकं समाहर्रत्।
तत् किन्द्यात् क्रकचेनैव तचूणें चान्तरीचत:।
ग्रहीत्वा तद्द्योर्मध्ये निचिपेद् देषक्रत् तत:॥ १०॥
चिन्नमार्जारवाराहरोमाणि मूषकस्य च।
श्रिने धूपमात्रेण विदिषत्ति परस्परम्॥

"त्रीं नमो महाकपालिनि ! वृश्विकोदरे दग्डपाग्रधरै त्रमुकस्यामुकेन सह विदेषं कुरु कुरु स्वाहा" ॥ ११ ॥

धुस्तूरकरमेलिक्षा चित्यङ्गारं ततो लिखेत्।
नाममन्तयुतौ यन्त्री स्थापयेत् तौ प्रयक् प्रयक्॥
नयामुभयतीरस्थे निखनेहच्चमूलके।
यन्नाम्ना लिखितौ यन्त्री तयोईपः प्रजायते॥
चतुरसे दयोः कुण्डे नाम वै मन्त्रगर्भितम्।
साधको मन्त्रसिद्धाला लिखन् सिद्धिमवाप्रयात्॥१२
एकइस्ते काकपचमुलूकस्थापरं करे।
दर्भवत् धारयेद् यतात् तिसप्ताहं जलाञ्जलिम्॥
नित्यं नद्यां प्रदातव्यमष्टोत्तरसहस्रकम्।
परस्ररं भवेद् देषः सिद्धयोग उदाहृतः॥

"ग्रीं यामीदिक प्रमोदिक गौरि मे गौरि ! अमुकस्य य केन सह काकीलूकादिवत् कुरु कुरु स्क्रीं स्क्रीं स्वाहा" ॥१३

षय व्याधिजननम्।

विल्वव्रचोद्भवैः काष्ठैः करग्छं कार्येद् वुधः।

<sup>\*</sup> नर: इत्यस्थाग्रे यान् यान्, एवं पश्चेद पदात् परं त ते श्रेषांश्रत्वेन योजनीय

पिचुमदींद्ववै: काष्ठै: पिधानं कारयेद् तत:॥ तव मध्ये चिपेन्य्रात्तमुत्तानां जीवितान्विताम् \*। वर्त्तिमुच्छिष्टसिकां वा शवीस्तस्थीदरे चिपेत्॥ कीलयेत् कण्टकेनैव निखनेत् सम्प्टे चिपेत्। व्याधिस्तस्य भवेच्छतोः पुनस्तत् चालनात् सुखी ॥ १ ॥ भन्नातकरसी गुञ्जा जर्णनाभिः सुचूर्णितम्। चिपेद्राती भवेत् कुष्ठं सिताचीरं पिवेत् सुखी ॥ २ ॥ वानरीफलरोमाणि विषमज्ञातचिव्रकम्। गुञ्जायुतं चिपेट्रावी स्थान्त्रता वेदनान्विता॥ जशीरं चन्दनचैव प्रियङ्गं रक्तचन्दनम्। तगरं पेषयेत् तोयैर्लेपास्तां विनाशयेत्॥ ३॥ क्र ग्रामपीश्ररी ग्राह्मं तदक्को सर्पपान् चिपेत्। क्षणभद्धाततैलाभ्यां क्षणसूत्रेण वेष्टयेत्॥ वस्मीकसृत्तिकालिप्तं श्मगाने तु विपाचयेत्। सुपक्तमर्षपाः याद्याः वानरीरोममंयुतः॥ श्ररहीषावसन्तेषु गात्रे वा सूर्धि निचिपेत्। प्रचिपाज्ञायते लूता शत्रूणां वेदनान्विता॥ प्रियङ्ग्यकराकुष्ठ-रक्तपङ्गजकेशरैः। गिरिकाणीं निमा निम्बस्वजाचीरेण लेपयेत। सप्ताहाज्ञायते खस्यः क्षपा चेद्रचयेद्रिपुम्॥ "श्री नमो भगवते उड्डामरेश्वराय भूवाहने उनाने हा"। उत्तयीगानामधं मन्तः ॥ ८ ॥ वहुरूपधरो यस्तु सञ्जूर्ण क्रकतासकम्। रत्तमर्पपम्लञ्च निष्कैवां भीजने 🌵 चिपेत ।

जीवितान्तितामित्यनेन प्राणपतिष्ठया क्रतीच्चीवनसंस्काराम् ।
 भीजने द्रयव साध्यस्थेति सम्बस्योजनयाऽन्यये द्येयः ।

गलत्तुष्ठी भवेच्छ्तुः स्वस्थो वा जायते कचित्॥ ५॥ ककलामं ग्रामचित्तीं प्राकं रक्तञ्च सार्षपम्। पिट्ठा तद्भचणादेव हाङ्गस्फोटकरं रिपोः॥ ६॥ खेतापराजिता गुञ्जा सुखेता च जयन्तिका। पिट्ठा तद्भणादेव समन्त्रेण निवर्त्तते। बालकं चन्दने दे च लेपोऽप्यत्न सुखावहः॥

"ग्रीं नमो भगवते उड्डामरेखराय कम्पने धूनने मु मुच्च दुर्गो सः"॥ ७॥

क्रक्तासोद्भवं चर्म रिपुमूतेण पूरयेत्।

मुखं बहुाऽखवालेन खनेद्भूमावधीमुखम्।

मूतरोधी भवेत् तन्त्रोहृत्य चालनतः सुखम्॥ ८॥

उल्क्रमस्तमं ग्राह्यं लवणेन प्रपूरयेत्।

सप्ताहं ताम्मपात्रस्थमचकाष्ठेन चान्त्रयेत्॥

दृष्टिस्तभवरं तत् स्थान्मरिचाचफलं तथा॥ ८॥

चाङ्गुलं त्वनुराधायामङ्गुलीमूलमाहरेत्।

चच्रोगकरं गेहे निखनेदैरिणां ध्रुवम्॥

"श्री श्रम्ये रहः श्रम्ये रहः स्वाहा"॥ १०॥

धुस्तूरकाष्ठेरभ्धादी भमरं मधुपूरितम्।

जलकुम्मे चिपेत् तन्तु तत्पानाद्विधरो रिपुः।

जातीपुष्परसं पीत्वा स्वस्थी भवति तत्चणात्॥ ११

सुहीचीरं यवचारं स्वहनं पादपांग्रकम्।

सममत्यलेपेन यतुः खन्नो भवत्यलम्॥

"श्रीं नमी भगवते उड़्डामरेश्वराय रुद्रशेखराय खड़ सङ्गोचने ठः ठः"॥ १२॥

तग्डुलीं पिप्पलीं शियुमारणालेन पेषयेत्। लेपे पाने खास्त्रानाशः शत्रृणां नात्र संशयः॥ १३॥ क्षणसर्पस्य रक्तेन नीलमचीकपीतिवट्। विष्ठां \* विलेपयेट् यस्य खज्जो भवति तत्चणात्। तिलतैलैवेलायुग्मं पिष्टा लिखा सुखी भवेत्॥ १४॥ सर्षपञ्च शिलां तालं रीट्रतैलेन पाचयेत्। स्रभ्यक्ते पादसङ्कीचं खस्यस्तैलाक्तरज्जनात्॥

"श्रीं नमो भगवते क्द्रशेखराय उडडामरेखराय चल-मालिने स्वाह्म"॥ १५॥

रत्तेन क्रकलासस्य सर्पस्य हरितस्य वा।
रिच्निते लिङ्किते स्त्रे योषिद्रत्तं स्रवत्यलम्।
उत्जङ्किने पुनः स्वस्या जायन्ते वरयोषितः॥ १६॥
स्त्रीमूत्रभूमौ सार्द्रायां निखनेत् क्रिण्डिश्विकम्।
वराङ्गे जायते दुःखमुडृते तु पुनः सुखम्॥ १७॥
जस्वीरत्रभ्नं हस्तर्चे दत्ते स्त्री दुर्भगा भवेत्।

"श्रीं नमी भगवते उड्डामरेखराय श्रमुकं ग्रह्ल ग्रह्ल ठ: ठ:"। उक्तयीगानामयं मन्तः॥ १८॥

भन्नी मूलं समुदृत्य क्रयाष्ट्रस्याञ्च चूर्णयेत्।
भन्ने पाने चिपेन्यूर्भि ज्वरातीसारक्षद्भवेत्।
वाजिकणीयमूलेन स्वास्त्र्यमुत्पद्यते पुनः॥ १८॥
मुग्डमांसमुलूकस्य समञ्च खरकाकयीः।
संग्रह्म दासमुज्ञार्थ्य सोपवासी जपेदमुम्॥
ज्वरेण दह्मते शत्रुरहोराचे क्षते जपे।
ग्रिचिभूत्वा समाविष्टः सम्मृखः स्नानमाचरेत्।
ग्रातुरस्य स्वयञ्चेव देवाये जायते सुखी॥ २०॥
कलुकीवदने १ चिप्तं ताम्बूलं वैरिणां मुखात्।

<sup>\*</sup> अव विष्ठाम् इति श्वीविष्ठां ग्रहीतुर्महां समत्वयदीधे समिच्छाम:।

<sup>†</sup> कलुलीवदनपदेन तान्तिकपारिभाषिकं निष्टीवनपाचं बीध्यम्।

दन्तकाष्ठं च वा तेषां गोनासवदने चिपेत्।

ग्रास्यरोधो भवेत् तस्य दृष्टानां दग्ड ईद्द्यः ॥ २१ ॥

क्षणसपेमुखे न्यस्तां ग्रतूणां मूत्रसृतिकाम्।
वेष्टयेत् क्षणास्त्रेण मूत्ररोगेण बाध्यते ॥ २२ ॥

श्वेतस्य करवीरस्य मूलं पुष्पञ्च चूर्णयेत्।
विख्वमज्ञा तु तङ्गच्चे दन्तं स्याच्छिदिकद्विपोः ॥ २३ ॥

भावयेत् पूगखण्डानि वज्रोचीरेण सप्तधाः॥

ताम्बूले तस्य तद्दनं तस्योष्ठे खेतकुष्ठकत् ॥ २४ ॥

ताम्बूले इन्द्रगोपञ्च दन्त्वास्ये खेतकुष्ठकत् ।

प्रत्यायनं यथापूर्वं भन्त्या वा सोमराजिका ॥

"श्रीं नमी भगवते रुट्राय उड्डामरेखराय श्रमुकं रोगेण ग्रह्म ग्रह्म पच पच ताड्य स्नेदय हुं फट्ठ: ठ:"। उक्तयीगानामयं मन्तः॥ २५॥

यजा-गो-ष्टतधूपेन सुखं सञ्जायते ध्रुवम् ।
धुस्तूर्वोजेन्द्रयवं पारावतमलं समम् ।
यहाविश्वतो धूपो वामानां नात्र संग्रयः ॥
"श्रीं ग्रह्ण ग्रह्ण सुभगे ठः ठः" । जन्नवीगानामयं सन्नः ॥ २६ ॥
लिखेनामाङ्गितं मन्त्रं श्मश्रानोडृतभस्मना ।
हस्तर्ज्ञं त्वङ्गुलं कोलं करवीरककाष्ठजम् ॥
निखनेत् जुन्भकारस्य श्रालायां भाग्छनाशक्तत् ।
गोज्ञुरं शृङ्गविरञ्ज वीजं वा कोकिलाच्चजम् ॥ २० ॥
शृक्तरस्य मलं वाऽय मूलं वा खेतगुञ्जकम् ।
पाकस्थाने तु भाग्छानां चिश्वा स्फोटयते ध्रुवम् ॥ २८ ॥
लनाकरञ्जवीजं वा टङ्गगेन सहैव तु ।
कत्वा भाग्छं स्फाटत्येव उन्नानां मन्त्र उच्यते ॥

"द्यों सदन सदन खाहा"॥ २८॥

मध्ककाष्ठकोलन्तु चित्रायां चत्रङ्गुलम्। निखनत् तैलगालायां तैलं तत्र विनध्यति ॥ ३०॥ कोकिलाचस्य वीजानि तैलयन्त्रस्य मध्यतः। निचिपेत् तैलभाण्डे वा न तैलं नि:सरेत् तत:॥ "भ्रों दह दह खाहा"॥ ३१॥ रजकस्थानसङ्ख्या वजाकारान्तु कारयेत्। पखागार्ऽयवा चेत्रे चिप्ते तत्र विनश्यति ॥ "श्रों नमो भगवते विज्ञिणे पातय वर्ज सुरपतिराज्ञापयति फट् खाहा"॥ ३२॥ यत्रेन्द्रचाप उत्तिष्ठेत् तत्र वल्मीकमृत्तिकाम्। श्रादाय कारयेदचं षट्कीणं दृढ़मज्ञतम्॥ चित्रमध्ये चिपत्येव शस्यनाशो भवेद् ध्रुवम्। सुराभाण्डे विनिचेपात् तद्वाण्डच विनध्यति॥ "श्रीं नमी भगवते वज्जिति । वज्जं पातय पातय एद्योहि वन् ! सुरपतिराज्ञापयति खाहा" ॥ ३३ ॥ गन्यकं चूर्णितं चेप्यं जलकुल्यान्तु तेन वै। नाग्रयेत् सर्व्वभाकानि सेकादुपवनानि च ॥ ३४ ॥ वालुकां खेतसिडार्थान् प्रचिपेत् चेत्रमध्यतः। श्रालभाः सरसाः कीटा वराहा सगम्बाह्याः। श्राका तत्र नायान्ति मन्त्रविद्याप्रभावतः॥ "श्रीं नमः सुरेहो वलजः परि परि शिलि स्वाहा"।

त्रा नमः पुरहा यस्त्रः पार पार गास स्वाहा । सुरासुरान् नमस्क्रत्य दमां विद्यां प्रयोजयेत् । एषा प्रयोगमात्रेण विद्या में सिध्यते ग्रिवा ॥ ३५ ॥ "जम्बुकानां सूषिकाणां स्रगाणां वकानां ग्रशकानामन्येषां णिनां दुष्टागां बस्यं करोति" ।

"श्राद्रपाणी कतन्नस्य तेन पापेन लिप्यते।

"यदि मन्त्रो न व्यतिक्रमिति खाद्या"। एतन्मन्त्रद्वः वालुकाभिः सद्द खेतसर्षपान् सप्तवारमभिमन्त्र्य चेत्रस् निचिपेत्, सर्व्वोपद्रवा नथ्यन्ति ॥ ३६ ॥

मूषजम्बुककीटानां कुरुते तुण्डवन्धनम्। विद्यामङ्गदनायस्य मन्त्रं वा भैरवस्य च \*॥

"श्री नमी जगन्नाथाय हर हर शिलि सर्वेषां तं प्राणि तुण्डवस्थनं कुरु कुरु मूकमूषककीटपतङ्गादिप्राणिनां तुण् बस्थनं कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा"। श्रनेन मन्त्रेण यवं स् वाराभिमन्त्रितं वाटिकामध्ये निचिपेत्, पुष्पं फलं सम निरुपद्रवं भवति॥ ३७॥

#### श्रय षण्डीकरणम्।

नरो मूत्रयते यत्र क्षण्विश्विक्तकण्टकम्।
निखनेज्ञायते षण्ड उड्डते च पुनः सुखी ॥ १ ॥
श्रजामूचेण सम्भाव्या निशा षड्विन्दुचूर्णकम्।
पानाश्वनप्रयोगेण षण्डलं जायते नृणाम् ॥ २ ॥
तिलगोच्चरयोश्चूणं कागोदुग्धेन पाचितम्।
श्रीलितं मधुना युक्तं पिवेत् षण्डल्यश्चान्तये ॥ ३ ॥
जलीकादग्धचूर्णन्तु नवनीतन भिच्ततम्।
यावज्ञीवं न सन्देशे यूनां षण्डल्वकारकम्।
धुस्तूरपुष्पभच्चेण पुनः सम्पद्यते सुखम् ॥ ४ ॥
श्रमायान्तु रवी याद्यं करञ्जस्य तु मूलकम्।
सगुडं भच्णात् सद्यः पण्डल्वं जायते नृणाम् ॥ ५ ॥
वषीव्रषाणां सङ्गाद्यमन्तरीचेण गोमयम्।
साध्यस्य प्रतिमा तेन क्रत्वाण्डे तस्य पण्डयेत्।

अङ्गद्रनाष्ट्रस्य विद्याम् अथवा भैरवस्य मत्त्रस्य अतः परमेव कथयामि इत्या

तत्चणाज्ञायते पण्डो मन्त्रेणानेन मन्त्रितः॥
"श्री नमो भगवते उड्डामरेश्वराय कामप्रचण्डाय इन इन
वैनतेय मुखेन खण्डय खण्डय खाहा"। प्रयं नवः सर्वप्रखीकरणे प्रयोज्यः॥ ६॥

नचत्रे द्यनुराधायां लाङ्गलोमृलमुदरेत्। निशामृत्रस्थले पुंसो निखनेत् षण्डतां व्रजीत्। समुदृत्य पुनः स्वास्यं पूर्वमन्त्रेण योजयेत्॥ ७॥

चय भगवस्वनम्।

स्वदाररचणार्थाय विश्वामित्रप्रकाशितम् ।

प्रवित्तं लाङ्गलीमृलं वामपादस्य पांश्वकम् ॥

श्रुक्तिसम्पृटकं द्वाभ्यां लेपयेङ्गगबन्धनम् ।

नारीणां युवतीनां स्थात् तक्तैः चाल्यं विमुक्तये ॥ १ ॥

श्रमशानभस्म चादाय वामपादस्य पांश्वकम् ।

सन्ध्यायां बन्धयेत् तेन पोटली भगबन्धनी ॥

सश्रोणितं स्पुरद्रन्यं बन्नामि ह्यमुकीभगम् ।

मत्कृत्या भगबन्धायाः नास्ति तस्याः चिकित्सितम् ॥

पतिर्वा तस्य भाता वा ये चान्ये भगमर्दकाः ।

सर्वे चैतद्विधा यान्ति वर्ज्यते कामुकैस्त्या ॥

"श्रों चिटि चिटि खचिटि खचिटि खचिटि ठः ठः" । जक्रयोगद्यये

भयमेव मन्तः ॥ २॥

तचैलं चन्दनं चीरै: चाल्यमर्थो भवेद्गगः। यन्त्रे मन्त्रादितन्त्रेण \* स मिडो मन्त्र उच्यते॥ सप्ताभिमन्त्रितं तोयं ग्रडं प्रातः पिवेन्दरः। तस्य ग्रनुक्ततो दोषः ग्रत्नोरेव भविष्यति॥३॥

<sup>#</sup> मन्वादितन्वेगिति पदात्परं युक्तिविद्येन इति शेषांशं संयोज्यान्वयः कार्यः।

अय ग्रहक्षेशनिवारणम्।

तक्रपिष्टेन तालेन चिपेत् प्रत्तलिकां क्रताम्। तामाघ्राय ग्रहाट् यान्ति मिच्तका नात संशयः॥१॥ गुड़ार्कदुग्धगुञ्जोत्यं तिलचूर्णसमन्वितम्। अर्कपतेषु विन्यस्तं मूषिकं संहरेत् ग्रहे ॥ २ ॥ धुस्तूरवीजचुर्णेञ्च विषञ्च पेषितं तिलम्। तैरव विषयाषाणं मीनतेलीन पेषितम्॥ वटिकां स्थापयेद गेही जलं रात्री निरुम्ययेत्। भच्चणात् पञ्चतां यान्ति खणात्ती मूषिका ध्रुवम् ॥३॥ तालकं कागविषम् चं सपलाण्ड सुपेषितम्। श्रालिप्य मूषिकं तेन सजीवन्तु विसर्जयेत्॥ तद् दृष्ट्वैव ग्रहं त्यका पलायन्ते हि मूषिकाः॥ ४॥ मार्जारस्य मलं तालं पिष्टाऽऽलिम्पेच मूषिकम्। तमाघ्राय ग्रहं त्यक्का सद्यो निर्यान्ति मूिषकाः ॥ ५॥ गन्धकं हरितालञ्च ब्राह्मी विकट्कं समम्। रवी नृम्चे तत् पिष्टा लिप्ते मूषे तु पूर्ववत् ॥ ६॥ मघायां ब्रध्नकं चेत्रे स्थापयेन्मधुकोद्भवम्। पचिणां मूिषकाणाञ्च जायते तुर्द्धवस्थनम्॥ ७॥ मूषिकाकर्षकं यावत् सास्वरी गुड़तैलतः। कुलोरवसया चूर्णं क्षतं तस्यैव कर्पटे। दौपो मत्कुणसङ्घातं रात्रौ वा कर्षयेदु ध्रुवम् ॥ ८॥ कवां कुमीजटां बड्डा शयनाद् यान्ति मल्लुणाः। रोहिषत्णपुष्पाणि विज्ञमध्ये निवेशयेत्। तहीपदर्भगादेव चिप्रं नश्यन्ति मत्नुणाः॥ ८॥ अर्कतृतमयीं वर्त्तिं भावयेद् यावकेन च। दीप्तां तां कट्तैलेन निःशेषा यान्ति मत्कुणाः ॥ १० ॥ त्रर्ज्जनस्य फलं पुष्पं लाचा योवासगुग्गुलु:। खेतापराजितामूलं भन्नातकविकङ्गते॥ ध्यः सर्जरसोपेतः प्रदेयो ग्टहमध्यतः। सपीय मल्लूणा मूवा गन्धाद् यान्ति दिशो दश ॥ ११ ॥ गुड्यीवासभन्नात-विड्ङ्गितफलायुतम्। लाचारसोऽकंपत्रच धूपे मशकमत्कुणान्। नाशयेत्रात सन्देत्तः सर्यमूषक त्यान् ॥ १२ ॥ मुस्तिसडायेभक्षात-कपिकच्छ्फलं गुड़म्। चूर्णं भानुफलोपेतं दहेत् सर्जरसान्वितम्॥ मल् णा मण्काः सर्पा मूषका विषकीटकाः। पलायन्ते ग्रहं त्यता यथा युडेषु कातरा:। राजव्रचफलं वडं खट्टायां मत्क्णापहम्॥ १३॥ लाचा सर्जरसोशीर-सर्पपाः पत्रकं पुरम । भन्नातकविङ्ङ्गानि रेणुकं पुष्करं तथा॥ श्रजुनस्य तु पुष्पाणि समचूर्णानि लेपयेत्। सर्पकीटकलूतानि पलायन्ते न संश्यः। दर्दरान् मशकां हन्ति घूपाइ। रुड्यारणात्॥ १४ ॥

> द्रित श्रीसिद्धनागार्जुनविरिचते कचपुटे एकादशः पटलः।

# अय कीतुकम्।

नासारन्युदयं लिखा गोष्टतेन ततो मुद्धे। चिपेद्धिकोफलं यस्य जुयोगैः स न बाध्यते॥ १॥ तगराज्ञितनेत्रो वा तगरणाऽय धूपितः। पूर्वं रचाविधं छत्वा पश्चात् कौतुकमावद्देत्।

विना रचाविधानेन यः करोति स सीदति॥ २॥ श्मशानतरुमूलीन कीटोत्पाताङ्ग्लीयकम्। मृतनिमील्यसंयुक्तं रक्तस्त्रेण वेष्टयेत्। तेन नि: शेषलोकस्य जायते दृष्टिबन्धनम् ॥ ३॥ घ्रणतालकपञ्चाङ्गं कनकेन युताऽयवा। मुद्रिका सर्वेनोकस्य पाणिस्था दृष्टिबन्धकत्। खपादे धारयेदेनां पयात् सिध्यति कौतुकम् ॥ ४ ॥ भीमपुष्ये तु सङ्ग्रह्म क्षकलासं मनो इरम्। स्थापयेन्नवभाग्डे तु रत्तपुष्पैय पूजयेत्॥ धूपदीपाचतैर्गसैनैविद्यं मन्त्रसंयुतम् \*। वामहस्तकनिष्ठायाः खस्य रक्तेन सेच्येत्। सप्ताइं पूजयेदेवं ग्रस्तः स्थात् सर्वेकर्मासु ॥ "श्रों ग्रङ्गोलाय श्रों र: श्रों क्रीं क्रीं स्नाहा"। मन्तेणानेन पूजायां शतमष्टीत्तरं जपेत्। ग्रुडात्मा साधकस्तेन सर्वसिडिकरं भवेत्॥ ५॥ क्रायाग्रष्कं सृतं तच्च सच्चूर्ष्यं नेपयेत् कटिम्। सवस्त्रमपि तं लोका नग्नमालोक्यन्ति हि॥६॥ तच् ण तालपत्रन्तु लेपितं सर्पसम्भवम्। नागवसीदलं लिप्तं भूमी चिप्तं समुत्यतेत्॥ ७॥ तच् णं की सुदं कन्दं नागवज्ञीदनान्वितम्। लिम्पेद्गाण्डं पेषयित्वा तद्गाण्डे न विशेजलम्॥ ८॥ मयूरन्तु शिलातालं भोजयित्वाऽइसप्तकम्। तिहरालिप्रहस्तञ्चादृश्यं श्क्रोऽपि नेच्ते॥ ८॥ सप्ताहं तिलतेलेन भावयेदातपे खरे।

<sup>\*</sup> त्रव धूपदीपाचतै: गसै: सह नैवेदाम् द्रव्यन्यार्थ:।

अङ्गोलवोजचूर्णन्तु शोष्यं पेष्यं पुनः पुनः ॥ तत् तैनं गाहयेचैव तैनकारस्य यन्वतः। ग्रथवा कांग्यपाचे हि तेन कल्केन लेपयेत् ॥ उलाप्य खापयेट् वर्म समाखन्तु परस्परम्। तयोरधः कांग्यपावे पतितं तैलमा इरेत । द्रदमिवाङ्गलोतैलं \* सर्वयोगिषु योजयेत्॥ १०॥ लिप्तमाङ्गोलतेलीन मुण्डितं तत्चणाच्छिरः। पूर्ववत् पूर्य्यते केग्रै: सद्य एव न संशय: ॥ ११ ॥ तत् तैललिप्तमामाण्डं शोषितं निखनेत् चणात्। सफलो जायते वृचस्तत्चणात्रात्र संशय:॥ १२॥ पद्मिनीवोजचूर्णन्तु भाव्यमङ्गोलतैलतः। न्यस्तं जले महाययं तत्चणात् कमलोद्भवः॥ १३॥ वीजं नीलीत्यलोइतं सिक्तमङ्गीलतैलतः। न्यस्तं जले महायर्थं तत्वणात् पुष्पसम्भवः॥ १४॥ यानि कानि च वीजानि जलजस्यलजानि च। यङ्गलीतैललिप्तानि चणात्तान्युइवन्ति वै॥ १५॥ यत्तिचिडातुमूलस्य पत्रपृष्पफलादिकम्। यङ्गलीतैललिप्तं तदनुरूपं भविष्यति ॥ १६॥ क्वाचमङ्गीतैनं लुक् पत्रं शिशिरं जनम्। तालकं, सर्पनिर्मोकं शिखिपित्तेन संयुतम्॥ रवी कन्यक्या पिष्टं छायाग्रष्कं वटी कता। तया कुमुदनालस्य सार्शात् सर्पाक्तिभवित्॥ १०॥ वटिकास्पर्धमावेण सत्तिका ली इवद्भवेत। तास्त्रभाण्डानि सर्वाणि तया लिप्तानि हैमयत्।

दृश्यन्ते तप्ततीयेन चालितानि सुधाभ्यवत्॥ १८॥
दृश्यन्ते रक्तगुज्जाय खेतास्तक्षेपतो ध्रुवम्।
यचपत्रं तया सृष्टं दृश्यते कांग्यभाजनम्॥
सुद्दीपत्रे तया लिप्ते गुष्कवदृश्यते जलम्।
तया लिप्ते नुकर्णे तु दृश्यते किन्नशीर्षवत्॥ १८॥
रवीन्दुग्रहणं भाति तया लिप्ते तु दृष्णे।
यङ्गुली च तया लिप्ता दिधा संदृश्यते ध्रुवम्॥ २०॥
भाण्डपाकस्थलाङ्गस्म कुभ्भकारस्थलाडरेत्।
सार्डे गुटिकया भस्म सृष्टिबन्धं सुवि चिपेत्।
समुद्रो दृश्यते लोकीः सत्यं चित्रं शिवोदितम्॥ २१॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कचपुटे कौतुकं नाम दादश: पटल: ।

### दुन्द्रजालविद्यासाधनम्।

भाषयंगिटका।

सुक्चीरं कानकं वीजं चूर्णं रतं भवेत् ततः।
वस्त्रेण वृष्टिताधारा चुरस्येव तु रंहसा।

क्विनित्त कीयसङ्घातं सवस्ता चातिकीतुक्तम्॥१॥
गुज्जाफलै: गुक्तिपष्टैर्लिपयेत् काष्टपादुक्ताम्।
विमा बस्यं नरी गच्छेत् क्रोध्मिकं न संग्रयः॥२॥
गुज्जावीजं त्वचीग्मुकं चूर्णं भाव्यं नस्त्रवर्कः।
सप्तयारं ततः कांग्र्ये लिसमङ्गीलवङ्गवेत्।
तैल्यमादाय तस्तिते ॥पूर्ववत् पादुक्तागितः॥१॥

<sup>\*</sup> पादुकाफलके तिझिते सतीलन्वयः।

एरण्डस्य च वीजानि निस्वतैलं तथैव च। वर्त्तं सर्जरसोपेतां तैललिप्तां जले चिपेत्। च्चित्ता दोपवत् तिष्ठेद् यावद्वित्तिने संग्रयः ॥ ५ ॥ शिलातालकसिन्द्र-रोचनाञ्जनहिङ्ग्लम्। कूर्मभुक्तमिदं पथात् तिद्वां लेपयेत् करे। नटा नृत्यानिवर्त्तन्ते दर्शनामुष्टिबस्पनात्॥६॥ तञ्च कूर्मन्तु सप्ताहात् तालकं भोजयेत् ग्रभम्। तनानैर्नेपयेत् पाणिं सृष्टिबन्धं प्रदर्भयेत्। निवर्त्तन्ते नटाः सर्वे सभ्याः पश्यन्ति कौतुकम् ॥ ७ ॥ उनुक्य कपालेन पृतेनाहृतकज्ञलम्। तेन नेबेऽञ्जिते चित्रं रात्री पठित पुस्तकम् ॥ ८ ॥ उलकहृदयं पित्तं काकपित्तच्च शोणितम्। एतद्दस्येच्चिते रात्री विचरेद्दिवसे यथा ॥ ८ ॥ रजनीचिरजीवानां विषरताचिच्र्यकम्। \* अज्जिताची नरस्तेन क्षणाराती तु पश्यति॥१०॥ शिखिपारावतभवा खन्नरीटपुरीषजा। गुटिकास्पर्धमावेण तालयन्वं भिनस्यलेम्॥ ११॥ भन्नव्याघ्रमहिष्चासग्टभ्रविलोचनैः। योतोऽञ्जनेनाञ्जिताचो दिवावत् निशि पश्यति। "श्री नमो भगवते रुट्राय ज्योतिषाय शिवाय दातव्यस्य ते वीजं मे देहि खाहा"। अनेन सिदमन्त्रेण हि सर्वाख्यञ्जनानि चन

अनेन सिदमन्त्रेण हि सर्वाख्यञ्जनानि चन शिवायै दाणयेद्यृतः सर्विसिद्धिः करस्थिता ॥ १२ ॥ पाठामूलं गले बद्वा चीरभाण्डस्थतिदिधिः।

श्रव चिरजीवविषशन्दी क्रक्तासवसाबीधकौ यथाक्रमम्।

जायते तत्चणादेव सत्यमितन संशय:॥ गन्धकौरेव धृषेन पुष्पाणामन्यवर्णता ॥ १३ ॥ क्त शां खानं सतं रचेट् यावत् क्रिमिकुलाकुलम्। खेतस्योपोषितस्येव कुक्दुटस्य तु तान् क्रिमीन्॥ ययेष्टं भचणे ददाहिष्ठां तस्य समाइरेत्। तदनं क्रिसिवल्लोकेभच्चमाणं विलोक्यते। पलायन्ते च तं दृष्ट्वा मुर्च्छन्ति च पतन्ति च ॥१४॥ कटुतुम्बुरस्यतैलेन पारावतभवं मलम्। मृलच पेषितं तेन गर्दभस्यास्य चैव हि॥ ललाटे तिल्वं तेन क्लवाइसी दृष्यते जनै:। दशास्त्रो नात्र सन्देही यया लङ्केखरी नृपः॥ १५॥ शियुवीजोिखतं तैलं पारावतपुरीषकम्। वराहस्य वसायुक्तं शिख्निमूलं समं समम । ल्लाटे तिल्कां तेन यः करोति स वै जनः। पञ्चास्यो दृश्यते लोकैर्यया साचात् सदाशिवः ॥ १६ ॥ सची हतस्य बीरस्य ग्राह्यं चीरस्य वा शिरः। तदक्को क्षर्णधुस्त्रवीजं वाप्यं सस्तिकम्॥ रात्री क्षरणचतुर्दश्यामाषाहे भैरवं यजेत्। नानाविधोपहारेण पुष्पधूपार्च्चतादिभिः॥ शिरः खनेत् क्षणभूमौ भुक्कोच्छिष्टेन सेचदेत्। दीपं रात्री सदा दद्यात् सूत्रवर्त्त्यां ज्यसंयुतम्॥ सफलन्तु भवेद् यावत्तावद्रचेच प्रजयेत्। याद्यं क्षण्चतुर्देश्यां बिलं दद्याच कुक्र्टम्॥ पञ्चाङ्गं पेषयेत तस्य वटिकां कारयेहढाम । ललाटे तिलकं कुर्यात् स नरी दृश्यते जनैः। तादृशस्त सहस्राच्छपो नैवात संशयः ॥ १०॥

रात्री क्रणचतुर्दभ्यां मयूरास्ये विनिचिपेत्। सङ्गोवीजं सदं क्रणां क्रणभूमी निधापयेत्॥ तज्ञातसङ्गी संयाद्या ह्यर्चयेत् रत्तपुष्पकै:। तत्पृष्यकर्णः पुरुषो मयूरो दृश्यते जनैः॥ १८॥ तद्योगे क्रणमार्जारमुखे चैरण्डवीजकम्। तज्ञातैरखवीजानामकं वक्को निधापयेत्। तं प्रपथ्यन्ति मार्जारं मनुष्या नात संश्य:॥ १८॥ स्गालखानमेषाजवदने वापयेत् पृयक्। मयूरास्ये यया सङ्गी जाता सिंडिय ताह्यी ॥ २०॥ सता या खपची नारी तस्या योनी तु खादिरम्। कीलकं निचिपेत् पश्चाइम्था भस्म समुद्वरेत्। तेनैव तिलकं काला खपची रूपपृग्भवेत ॥ २१ ॥ रत्तगुञ्जाफलं वाऽय नृकपाले च सचयेत। जातं फलं चिपेद्वते स्तीरूपो टखते नरः॥ २२॥ विषं गुच्चोस्यितं तैलं सपैपित्तच्च पेषयेत्। ं सकुष्ठं तिनकं यस्य तं पर्स्यान्त सयूरवत्॥ २३॥ विषगञ्जोस्यतेलेन पाणिलेपेन कुञ्जरः। भह्नकः पाद्लेपेन जिह्वालेपेन चन्द्रमाः। गगेश: कुचिलेपेन श्रीय सर्वाङ्गलेपत:॥ २४॥ रात्रावङ्गोलतैलीन लिप्ताङ्गो द्रस्यते नरै:। दीर्घदंद्रोड्डरोमा च रूपं रीद्रं वहत्ररः॥ २५॥ नवभाग्डे विनिचित्रय छित्रनासान्तु मूषिकाम्। सनासं क्षकलासञ्च पृथग्भाग्डे विनिचिपेत। उपवासत्रये जाते तयोर्दयातु भोजनम्। मलं तयोः पृथक् याद्यं तेन नासां प्रलेपयेत्। किन नास: प्रदृष्येत चीरलेपानिवर्त्तते ॥ २६॥

श्रावस्य तु सृतं वालं ग्रहीला तस्य चोदरे।
हरिद्रां खण्डमः काला चिपेद् यावत् प्रपूर्यते॥
तं रात्री निखनेद्रूमी मन्त्रेणानेन पूजयेत्।
तत्पञ्चाङ्गं समुहृत्य रजनीं शोष्य पेष्य \* च॥
मनम्द्र।—"श्रीं श्रक्ः श्रीं रः"।

अनेन मन्यराजेन सिडाला संयतेन्द्रय:। स बालकादियोगान्तं कर्म कुर्यात् समाहित:॥ खेतदूर्वाऽऽरनालैश हरिद्रां तां प्रलेपयेत्। तिस्तिरेहः पुरुषः पञ्चधा दृश्यते नरैः॥ २०॥ तां निमां सर्घपं खेतं पिट्टा चाङ्गोलतैलतः। तिल्लाङ्गं नरं दृष्टा चित्रं पश्यन्ति सप्तधा। गोम्रवेण पुन: बानादेक एव प्रदृश्यते॥ २८॥ यलतां तां निशां पिष्टा देहसन्धिं प्रलेपयेत्। भिन्नं संदृश्यते सीऽपि पूर्वसानानिवर्त्तते॥ २८॥ हरिद्राऽङ्गोलतैलाभ्यां लिप्ताङ्गो दृख्यते नरः। राचसोऽपि महारोद्रो हास्य सानाविवर्त्तते॥ ३०॥ नरादिसर्वे जीवानां याह्यं सखीहतं शिरः। यत क्र शाचत्र्देश्यां शणवीजान्वितं वधेत्॥ सङ्गीधुस्तूरवातारि-गुञ्जानां चैक्रमंयुतम्। निखनेत् क्षणभूम्यन्तर्वनिपूजासमन्वितम् ॥ सेचयेत् फलपर्थान्तं ततः वीजानि चाहरेत्। तत्तदीजे गते वक्को तत्तद्रूषो भवत्यनम्॥ द्रखेवं कीत्वां सोके नानारूपस्य दर्भनम्। मुक्ते वीजे भवेत् खर्खो नात्र कार्या विचारणा ॥३१॥

शोष्य पेष्येति इसमापे पदं शीषिला पिश स्थाने बीध्यम् ।

क्रकलासस्य रक्तेन ह्यईलिप्तन्तु दर्पणम्। संस्थापयेतिरेर्मुभि यहणं दृश्यते नरै: ॥ ३२ ॥ भीमवारे सृतायास्त तिचताङ्गारमाहरेत्। मृष्टिइयेन तइड्डा निमच्य जलमध्यतः॥ जड्वं दिचणवाहुः स्थात् यथा तोयैर्ने मिचते। तच्छ्यां चापरं सितां पृथयचेत् समग्रतः॥ गुष्काङ्गारकता रेखा चीरभाग्डस्य पूर्वत:। चित्रं गुयति यत् चिप्रमाद्रीङ्गारेण तत् पुनः। अग्रतो रेखया पूर्णं भवत्येवातिकौतुकम् ॥ ३३॥ चौरस्य नासिकादन्तचूर्णं पाणौ प्रलेपयेत्। इस्तस्पर्शात् स्मुटत्येव नारिकेलो हि निश्चितम् ॥३४॥ भन्नतास्थिभवैस्तैलैः सर्वान् सन्धीन् प्रलेपयेत्। सङ्घातं नारिकेलस्य धारयेत् यस्तु कौतुकी ॥ स्फटन्ति पौडनादेव नारिकेलाः सकौतुकम। तेनैवाङ्कीलतैलेन स्फुटन्येव न मंग्रय: ॥ ३५॥ क्राग्रमपी रवी प्राह्मस्तदक्ते क्रण्यस्तिकाम्। चिष्वाऽय वापयेत् तत क्रणाधुस्त्रवीजकम्॥ तया मत्यमुखे सृच तदीजच प्रवापयेत्। पृथक् पृथक् चिपेइमी तयी: शाखां समाहरेत्॥ मर्पशाखा मत्यशाखास्पर्शात् सर्पो भवेट् ध्रुवम्। मत्य्यशाखा सर्पशाखास्पर्शान्यत्या भवन्ति हि ॥ ३६ ॥ चिष्ठा तचूर्णमं चेत्रे धौतवस्त्रं विखीलयेत्। प्रातः प्रयत्नतो नित्यं दिनानामेकविंश्तिम ॥ ततस्तदस्त्रखख्डन्तु जलैः सिक्का निपीइयेत्। मृत्तिकायां ततो धान्यं वापयेत्तत् प्ररोहित ॥ तदस्याच्छादितं शीघ्रं सर्वधान्यं सकीतुका।

निचिपेत् सर्वधान्यानि सार्द्रगर्भ चर्मणि॥ सिञ्चेत् कुक्टरक्तेन निसप्ताइन्तु नित्यगः। जाताङ्गराणि संरचेनिवार्य्य जायते चणात्। तडान्यं फलपर्यन्तं लोके भवति कौतुकम् ॥ ३०॥ स्त्राख्यवटानाच चीरमीडुम्बरं तथा। काकोड्खरिकाचीरं लीइचूर्णञ्च गन्धकम्॥ दृष्टिका वै सर्जरसं तिलतैलञ्ज सिक्यकम्। क्रमोत्तरं तच मद्यं कुर्यात्तेन कुठारकम्॥ चुरिकेन्द्रफलं कुन्तं वजं नाराचमेव च। कुठारेणास्य वचादि स्मोट्येच्छेदयेदपि॥ भेदयेत् कुन्तखङ्गाभ्यां यत्किचित् खेटकादिकम् \*। भिद्यते नात्र सन्देहः सिक्यकायेण कौतुकम्॥ ३८ हरितालं शिलाच् भमङ्गुलीतैलभावितम्। तिस्रिवस्तं शिरिम स्थितं पश्चिति विज्ञवत् ॥ ३८ ॥ सिन्ट्रं गन्धकं तालं समं पिष्टा मनःशिलाम्। तिज्ञप्तवस्त्रच्छनाङ्गो रात्री संदृष्यतेऽग्निवत् ॥ ४० ॥ खद्योतभूनताचूणैं: १ ललाटे तिलके क्वते। राची संद्रखते ज्योतिस्तस्मिन् स्थाने तु कीतुकम् ॥४ न्रवणं चर्वयेदादी तत्कल्के नरमूत्रकम्। एकी क्रत्य विलिम्पेच क वर्त्तं तहैव धार्येत्। ज्वलन्ती न दह्रखेव केशमात्रं न मंश्यः॥ ४२॥ वदने क्षणासर्पस्य यववीजानि वापयेत्। फलिते तानि वीजानि समादाय सुरच्येत्॥

खेटकश्रव्दः फलकवाचकः "ढाल" इति प्रसिद्धः।

<sup>†</sup> भूलतया विञ्चलकः याद्यः।

<sup>‡</sup> अत विलिमोच द्रति पदात्परं शीर्षे द्रति शेष:।

चिपेत् मपैकरण्डे तु तदैव नास्त्यसी फणी। म्तोऽसी दृश्यते सप इति चित्रं महाऽइतम्॥ पाषाण्भेदमूले तु चर्विते मति भच्येत्। पाषाणवदराण्डाभांयणकांयातिकीतुकम ॥ ४३ ॥ मुग्डोरीफलपृष्टे तु हिद्रं क्तवा तु पारदम्। निचिपेत् तिलमात्रन्तु वर्चा तं वन्धयेत् ततः। ज्वलन्तीं निचिपेत् तेन रुख्यात् चित्रमुत्पतेत् ॥ ४४ ॥ अस्पृष्टपुरुषायास्तु नार्थाः प्रथमजं रजः। वस्तेण याह्यित्वा तु ततो गच्छेनदीतटम्॥ मत्यगासी यदा पची मत्यमादात्म्यतः। तम्पचिणं समत्यन्तु ग्रहोला चुणंयेत् पृथक्॥ तच्गं करसंस्षृष्टं जले चिप्तं समन्ततः। मत्यो दृष्टा समायाति करमध्ये तु कौतुकम्॥ ४५॥ ऋतौ स्तीयोनिमध्यस्यं सीवीरं दिनसप्तकम्। तं हुला पावकी चित्रमार्द्रमेव प्रदृश्यते॥ ४६॥ मात्लुङ्गस्य वीजानि पुचे सीवीरमञ्जनम्। एकी अत्येव जुडुयादात्रीकाष्टान्वितेऽनले । संदृश्यते स्ट्रगणी लम्बमाने सिते पुरे ॥ ४०॥ म्निप्यरसै: पुथे घुछा स्रोतोञ्जनं तत:। श्रिज्ञताखो नरः पर्ध्वन्यध्याङ्के तारकागणम् ॥ ४८ ॥ मात्नुङ्गस्य वीजोस्यं तैनं तासस्य भाजने। स्थापयेदातपे पर्यमध्याक्के सर्यं रिवम ॥ ४८ ॥ विल्वपत्रसी: सिइं गुज्जामूनं जनान्तिक। अञ्जिताची नरः पर्येत पिशाचानतिकौत्कम ॥ ५०॥ श्रङ्गारं शिखिपित्तेन पिष्टा चाग्रदले भवेत। पावकं तक्षि ध्वा वक्केर्जाना सुट्यते॥ ५१॥

धुस्तरतैलसंयुक्ता विषचर्णेन लोडिता। वर्त्तिः सा ज्वालिता लोकैः पुष्पवदृष्यते भ्रवम् ॥ ५२ ॥ विहङ्गपुच्छे तु यदा निबधाति हि वर्त्तिकाम्। उल्लामिव प्रपर्यान्त सञ्चरन्तीं नभ:स्यले ॥ ५३ ॥ भन्नातको इवं तैलं स्तमस्येषु लेपयेत्। ते जीवन्ति जले चिप्ताः सद्यः सद्योहता द्व ॥ ५४ ॥ मण्डु कवसया दीपमरखे ज्वालयेत्रिशि। चतुर्दि च तनाध्ये सागरो दृश्यते जनै: ॥ ५५ ॥ खेतखर्ज्रमूलन्तु भूनता खेतमभ्रवम्। पेषयेच्छि विपित्तेन मुख्या बड्डा तु तिन्निशि। ग्टहोपरि विनिचित्ते दृश्यते ज्वलदग्निवत् ॥ ५६ ॥ धाविकावीजिपष्टेन लिप्तं क्रत्वा प्रयत्नतः। बहुकालप्रदीपस्त दीपो ज्वलति कीतुकम्॥ ५०॥ श्मशानादग्निमादाय चतुरङ्गारसिमातम्। गोनसावसया लिम्पेत चतसः शर्कराः ततः॥ क्रागीद्ग्धे विनिचिष्य काष्ठमध्ये विनिचिषेत्। ग्रादित्यरिमसम्पर्काञ्चलत्येव न संगयः। तत्काष्ठं कौतुकं लोके जायते शिवभाषितम्॥ ५८॥ उसत्तस्य तु काष्ठानि को द्रवस्य हणानि च। सन्दह्य बन्धयेदस्ते दीपं प्रज्वाल्य कज्जलम्। अञ्जयेत तेन नेवञ्च दिवा पश्यति तारकान् ॥ ५८ ॥ रक्तार्जनस्य मूलेन तिलके जलघर्षिते। क्वते लयुतहस्तोऽसी दृष्यते राचसाक्वतिः॥ ६०॥ क्षजलासस्य संग्रह्य पुच्छं दिच्णपार्खतः। विलोहवेष्टितं वक्को धतं चानन्तरूपध्वा । "ग्रीं सङ्गीचाय स्वाहा ।" यनेन मलेण यष्टीत्तरसङ्सनप्ते सिंडिः॥६ सिन्द्रवर्णभूनागवत्तिदीपस्य तेजसा \*। यदस्तु दृश्यते तच तत्तच स्वर्णवज्ञवेत्॥ ६२॥ कार्पासवीजं सपस्य वक्को चिष्ठा खनेद् भुवि। तज्जातवर्त्तिकादीपः सप्तेतेलेन दीपितः। ग्रहे पर्यान्त यदावी तत्तत् सर्पोपमं भवेत ॥ ६३ ॥ एरण्डतेलजं दोपं शमीपुष्पाह्विञ्चलम । कापीमजा भवेदिति श्वितं पश्यति पूर्ववत ॥ ६४ ॥ खेतार्कसम्भवां वर्त्तिं सपतेलयतां निशि। प्रचाल्य सर्पवत् सर्वं ग्रहं पर्यात पूर्ववत् ॥ ६५ ॥ इस्तर्च मिस्ववारस्य मूलमादाय यत्नतः। स्पर्यन वस्यविच्छेदं कुरुति शीव्रमङ्गतम् ॥ ६६ ॥ मांसं रक्तोत्पलं तुल्यं क्वनलासस्य योजयेत। तसलैग्टिकास्पर्शात् तालयन्त्रं भिनच्यलम् ॥ ६० ॥ तनांसं शोणितं याद्यं तत्त्रन्वेणाभिमन्वितम्। भूदारवटपुष्पैय वेष्टियला स्थितं करे। स्रष्टमात्रे महाऽऽवर्धि तालयन्तं भिनत्यलम् ॥ ६८ ॥ तसांसं वटपतेण् विष्टितं हस्तमध्यगम्। ब्रह्माखेऽपि स्थितः पची दृश्यते पतितो ध्रुवम् ॥ ६८॥ तनामं राजवृच्य पुष्यञ्च हस्तमध्यगम्। वृचारुत्ञाखगतं चित्रं पश्यति मानवः॥ ७०॥ शिरोषपप्पैस्तन्यां वेष्टितं हस्तधारितम्। सृष्टमावेण नारीणां रणं यात्यितकीत्कम् ॥ ७१॥ कच्छपस्य शिरीयाद्यं लज्जाल्रिन्द्रगोपिका। काञजङ्गाभवं वीजं तथा श्तपदीक्रमिः।

<sup>·</sup> अद चेन: पर्रन कजलं, तेन कजलाञ्चितचत्तुषा द्रयन्यार्थबीध:।

पञ्चाभिवेटिका कार्योऽनामिकामध्यगा ग्रुमा।
तहर्मनात् स्तनं याति स्पृष्टे वाऽय महाऽद्भुतस्॥ ७२॥
कानिष्ठानामिकामध्ये दर्भादायाति तत् पुनः।
तया गुटिकया लेपाक्किइसक्कोचनं भवेत्॥
निर्लिक्को दृश्यते मर्त्यः चालितेन पुनभवेत्।
मात्वाहस्तनं याति मुक्तिः स्वास्थ्यं प्रजायते॥ ७३॥
काकलासभवं चूर्णं कूर्माहितेलपाचितम्।
तिक्किपस्तन उद्घच्छेत् तत्चणाद्वारयोषितः॥ ७४॥
यक्कोलोत्येन तैलेन लिप्तहस्तेन मर्दयेत्।
निर्गुण्डोवोजकं भूमौ चिप्तं भवित व्यवकम्॥
दृत्येवं सर्वयोगानां मन्तराजं भिवोदितम्।
पूर्वमेवायुतं ज्ञष्वा ततः सिध्यति कौत्कम्॥

"श्रीं नमो भगवते रुद्राय उड्डामरेखराय बहुरूपा नानारूपधराय सह सह सस नृत्य नानाकौतुकेन्द्रजालदर्शना हं फट्ठ: ठ: स्वाहा"।

श्चनेन गिरिशोक्तेन सन्मन्त्रेणाभिमन्त्रणात् । जितिन्द्रियः सदाचारः योगी सिद्धं नभेद्धुवम् ॥ ०५ ॥ इति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कचपुटे इन्द्रजाखविद्यासाधनं नाम वशीदणः पृटतः ।

# अय यचिणीसाधनम्।

सर्वासां यिचिणीनान्तु ध्यानं कुर्य्यात् समाहितः। भगिनीमात्रपुत्रीस्त्रीरूपतुत्वा यथेप्सिता॥ लचमिकं जपेनान्त्रं वटहचतन्ते ग्रिचिः। बन्धूककुसंमैः पश्चान्त्रध्वाज्यचीरमित्रितैः॥

दशार्शं योनिकुण्डे तु हुत्वा \* देवी प्रसीदति। विचित्रां साधकस्यैव प्रयच्छित समीहितान। "श्री विचित्रे ! चित्ररूपेण सिद्धिं कुरु कुरु साहा"॥१॥ विषयस्यी जपेनान्वं लचमेकं दशारंशतः। ष्टतात्रौगुंगुलैईंमैविचित्रा सिंदिदा भवेत्॥ "ऐं च्लीं महानन्दे भीषणे च्लीं हुं खाहा"॥ २॥ गला यच्चग्रहं मन्त्री नग्नी भूला जपेनानुम्। दिनैकविंग्रतिं कुर्यात पूजां कला ततो निग्रि॥ ग्रावर्त्तयेत्ततो सन्त्रमेकचित्तेन साधकः। निशार्ड वाञ्कितं द्रव्यं देव्यागस्य प्रयच्छिति॥ "श्रों क्रीं नखकेशो कनकवित ! खाहा"॥ ३॥ लच्तवयं जपेकान्तं दशार्रशं गुगुलं हुनेत्। लाचा चोत्पलके वाऽय ध्यात्वा सर्वाङ्गलोचनाम्। पट्टे पटे वा संलेख्या होमान्ते चिन्तितप्रदा॥ "श्री कुवलये हिलि हिलि तु तु ति सिंदिसिदेखरि ! झीं

जपेबचदयं मन्त्रो श्मशाने निर्भयो मनुम्। दशार्रशं जुडुयात् साज्यं इत्वा ने तुष्यति विश्वमा। पञ्चाशन्मानुषाणाञ्च दृत्ते सा भोजनं सदा॥ "श्रीं द्वीं विश्वमरूपे विश्वमे कुरु कुरु एह्योहि भगवति! बाह्य"॥ ५॥

शाकयूषपयः शक्तुभचः खेती र्णकासने । देवतां पूजये तित्यं जपे सचं त्रयोदशम् ॥ पायमं हो मये त् पश्चात् सहस्रे केण सिध्यति ।

गहा"॥४॥

हुला इति पटिन हुला वर्त्तमानस्थिति अल्वयायं यीजना ।

अवापि पूर्व्वदत्वययोजना।

नित्यं लोकसइसस्य भोजनं सा प्रयच्छित। लचायुर्दिव्यवर्षाणि दत्ते सा गङ्करोदिता॥ "श्रीं क्रीं जलपाणी पिज्वल पिज्वल हुं हुं खाहा" ॥६॥ लचमुत्पलशाकोयं चुला मन्त्रमिमं जपेत्। लचैकादग्मावर्च इला मध्ये ग्राग्रिह ॥ श्रयवा मालतीपुष्यैईत्वा भानुसहस्रकम्। भानुमुक्तो \* भवेद् यावत् पूर्णान्तो सिध्यति ध्रुवम् । सहस्रन्तु जपाद्यन्ते सहस्राणान्तु भोजनम्॥ "ग्रीं भूते सुलोचने ! ह्नं" ॥ ७ ॥ शङ्कलिते पटे देवीं गीरवर्णां धृतीत्पलाम्। सर्वालङ्कारिणीं दिव्यां समालिख्यार्चयेत् पुनः॥ जातीपुष्यैः सोपचारैः सहस्रीकं ततो जपेत्। विसम्धं सप्तरावन्तु ततो रावी ग्रचिर्पित्॥ श्र इराते गते देवी समागत्य वरप्रदा। पञ्चविंगतिदीनारान् प्रत्यहं सा प्रयच्छति॥ "ग्रों च्लीं रतिप्रिये। खाहा"। दिनैकविंगतिं यावदुद्यास्त्मयं जपेत्। नित्यं सायं खमाहारिपण्डं हर्म्योपिर चिपेत्॥ विसप्ताहे तु सा तुष्टा गय्यां गत्वा पिशाचिका। पञ्चविंश्तिदीनारान् ददाति प्रतिवासरम्। कर्णे कथयति चिप्रं यद् यत् एच्छत्यसी क्रमात्॥ "श्रों चीं च; च: कम्बल्के यह पिग्डं पिशाचिके। खाहा"॥८ ग्रहे वाऽरख एकान्ते लचमेकं जपेसनुम । पुष्पधूपादिभिः पूजां नित्यं कुर्यात् प्रयत्तः॥

<sup>\*</sup> अव भानुशब्द: खर्भानुवाचकः, अन्यत् सप्टम्।

पञ्चास्तर्तेर्दशार्ध्यन हते देवी प्रसीदित । दीनाराणां सहस्रेकं प्रत्यहं तोषिता सती ॥ \* "श्रीं गुलु गुलु चन्द्रास्तमिय श्रव जातिलं हुलु हुलु चन्द्रगिरे ! स्वाहा" ॥ १० ॥

एक लिङ्गे 🕆 महादेवं विमन्ध्यं पूजयेत् सदा। भूपं दत्त्वा जपेभान्त्री ब्रूयात् सा "त्वं किमिच्छिसि १"॥ "देवि! दारिद्रादग्धोऽस्मि तन्मे नाम्यकरी भव"। ततो ददाति मा तुष्टा वित्तायुश्चिरजीवितम्॥ "श्रीं क्लीं श्रागच्छ सुरसुन्दरि ! खाहा" ॥ ११ ॥ कुङ्मेन समालिख्य भूजेपत्रे सुलच्णाम्। प्रतिपत्तिथिमारभ्य पूजां क्रत्वा जपेत्ततः॥ विसन्धं विसन्दसन्तु मासान्ते पुजयेनिशि । मंजपन्नईरावे तु समागत्य प्रयच्छति। दीनाराणां सहस्रेकं प्रत्यहं परितीषिता॥ "श्रीं क्रीं अनुरागिणि मैथनप्रिये! स्वाहा"॥ १२॥ नदीतीरे ग्रुभे देशे चन्दनेन सुमण्डलम्। विधाय पूजयेहेवीं तती मन्त्रायुतं जपेत्॥ विसप्ता हं जपेदेवं पसना वितरेत 🕸 तदा। दीनाराणां सहस्रेव व्ययं कुर्यादिने दिने। विना ययेन सा अ्डा न दराति कदाचन॥ "श्रीं च्लीं सर्वकामदे मनोहरे ! स्वाहा" ॥ १३ ॥ मन्वायतं जपेचान्वी प्रातः सूर्योदये सति। मासमेकां जपेदेवं पूजां कुर्याहिने दिने ॥

श्रव ददाति साधकाय इति श्रेष:।

<sup>+</sup> एक जिङ्गे इति मन्दिरस्य विशेषणं, तेनैक जिङ्गमन्दिर इत्यर्थः।

<sup>🗓</sup> अद देवी वरं वितरेत् एवं सन्दर्भार्थः।

शङ्कसंलिप्तपद्दे तु श्रुश्चपुष्पैः सपायसैः।
दशाऽंशं होमयेत् साज्येरिन्यनैः करवीरजैः।
ददाति शङ्किनी तुष्टा नित्यं रूप्यकपञ्चकम्॥

"श्रीं हीं ग्रह्मचारिणि श्रह्माभरणे! क्रां क्रीं लीं ऐंश्र स्वाहा"॥१४॥

सहस्राष्टिममं मन्त्रं अपेत् सप्तदिनाविध । प्रत्यहं मणिभद्राख्यं प्रयच्छत्येकरूप्यकम् ॥ मनन्त्रः — अते नमो मणिभद्राय नमः पूर्णाय नमो महा

यचसेनाऽधिपतये मोट मोट धारय खाद्या"॥ १५॥ चतुर्लचिमिमं मन्त्रं जपेत्थागा प्रसीदति। ददाति चिन्तितानधींस्तस्य भोगाय मन्त्रिणः॥

"श्रीं श्रहोत्यागि ! मम त्यागार्थं देहि मे वित्तं वोरसेवितं

खाहा"॥१६॥

रात्री रात्री जपेनान्तं सागरस्य तटे ग्रवि:।

लचजापे क्षते सिंदो दत्ते सागरचेटकः:।

रत्नत्रयं तदांमृत्यं तेन मन्त्री सुखी भवेत्॥

"ग्रीं नमो भगवन् रुद्र देहि रत्नानि जलराग्रे! नमोऽस्तु ते

खाहा"॥ १७॥

एकान्ते च ग्रचौ देगे विसन्धां विसहस्रकम्।

मासमेकं जपेनान्ती ततः पूजां समारभेत्॥
पुष्पधूपादिनैवेद्यैः प्रदीपेर्घृतपूरितैः।

राव्रावभ्यर्चयेत् सम्यक् सुस्थिरः सुमनाः सुधौः॥
श्रईरावे गते देवी समागत्य प्रयच्छति।

रसं रसायनं दिव्यं वस्त्रालङ्कारभूषणम्॥

"श्रीं द्वीं श्रागच्छ स्वामीश्वरि! स्वाहा"॥ १८॥
विषयस्थो वटाधः श्रो रावौ मन्तं जपेत् सदा।

लचत्रयं ततः सिद्धा स्याद्देवी वटयचिणी॥ वस्तालङ्करणं दिव्यं सिद्धं रसरसायनम्। दिव्याञ्चनञ्च सा तुष्टा साधकाय प्रयच्छिति॥ ''श्रीं क्लीं यीं वटवासिनि यचकुलप्रस्ते वटयचिणि! स्त्रोहि स्वाहा"॥ १८॥

वटहचं समारु हा लचमेनं जपेमनुम्।
ततः सप्ताभिमन्त्रेण नाज्जिनैः चालयेमुखम्॥
यामदयं जपेद्राची वरं यच्छति यचिणी।
रसं रसायनं दिव्यं चुद्रनर्माखनेनधा।
सिद्वानि सर्वनार्थ्याणि नान्यया ग्रङ्गरोदितम्॥

"श्रों च्लीं नमश्चन्द्रद्रवे कर्णाकर्णकारणे ! खाहा" । ''श्रों मो भगवते क्ट्राय चन्द्रयोगिनि ! खाहा" । मलदयस्येका विद्या २०॥

चित्रावचतले मन्त्रं लचमावर्त्तयेच्छुचि:।
विशाला वितरेत् तृष्टा रसं दिव्यं रसायनम्॥
"श्रीं क्रीं विशाले! द्रां द्रूं क्रीं एद्येहि स्त्राहा"॥ २१॥
नरास्थिनिर्मितां मालां गले पाणी च कर्णयी:।
धारयेज्जपमालाञ्च ताट्यीन्तु श्मशानतः॥
लच्चिकं जपेन्मन्त्रं साधयेन्त्रिभयः सुधी:।
ततो महामया सिद्धा ददात्येव रसायनम्॥
तेन भिच्चतमात्रेण पर्वतानिप चालयेत्।
बन्तीपलितनिर्मृक्तश्चरजीवी भवेन्नरः॥
"श्रीं क्रीं महाभये! इं फट् स्त्राहा"॥ २२॥
शक्तपचे जपेत्तावद् यावत् दृष्येत चन्द्रिका।
दत्ते पीत्ना यदमरोऽस्तं तच्च भवेन्नरः॥
"श्रीं क्रीं चन्द्रिके! इंसः स्त्राहा"॥ २३॥

शक्रचापोदये लचं निर्गुग्डीतलमध्यगः। जपेन्मन्त्रं ततस्तुष्टा देवी पातालसिंडिदा॥ "ऐं क्लीं ऐन्द्रि माईन्द्रि! कुत्तु कुत्तु चुत्तु

खाहा"॥ २४॥

हृदि ध्यात्वा जपेद्राक्षी हंसबहं सचैतसम्। योगं ददाति सा तुष्टा जरामृत्युविनायनम्॥

"श्री हंसः सर्व्वलोचनानि बन्धय बन्धय देवी श्राज्ञापय खाहा"॥ २५॥

> स्तीयसूर्धि करं वामं दत्त्वा लच्चं जपेनानुम्। वाक्सिडिं मन्त्रिणो लिङ्गे चेटकस्तु प्रयच्छित ॥

"श्रों नमी लिङ्गोइव रुद्र! देहि मे वाचं सिडिं विनान पर्व्यातगते द्रां द्रीं द्रं द्रैं द्रौं द्रः"॥ २६॥

> जपेनासत्रयं रक्त-कम्बले ! सुप्रसीदति । स्तकोत्यापनं कुर्यात् प्रतिमाचालनं तथा ॥

"ग्रीं रक्तकम्बले! महादेवि! द्रुतममुकामुकं उत्याप उत्यापय प्रतिमां चालय चालय पर्व्वतं कम्पय कम्पय लीलय चिल चिलि हुं हुं"॥ २०॥

श्रष्टोत्तरमतं जप्ता यत्विश्चित् स्वासभोजनम्।
ततोऽनुवासरं दत्ते नित्यं सान्निध्यकारकम्॥
श्रतीतानागतं कर्म स्वास्त्यास्वास्त्यं व्रवीति सा।
प्रतिमापर्वतान् सर्वान् चालयत्येव तत्त्वणात्॥

"श्री करङ्गमुखे विद्युज्जिह्ने। श्री हुं चेटके। जः स्वाचा"॥ २८॥

पूर्वमेवायुतं जह्या कत्वा होमं दशाऽंशतः। घृतात्तौ रजनीकुष्ठैः पूर्णान्ते च पुनर्जपेत्॥

विस्पन् गातं चन्दनेन रात्री मन्तं समुचरेत्।

यावित्रद्रावशं याति खप्ने वदित सा तदा। वाञ्कितं यच्छुभं किञ्चित् स्थात् सिद्धं वा न सिध्यति॥ "श्रों क्लीं स: नमः श्मशानवासिनि चण्डवीगिनि ! स्वाहा"। मन्ददे एकनेव साधनम्॥ २८॥

करञ्चव्रचमारु ज्ञा जपेद्द्यसद्द्यकम् । तत्पञ्चाङ्गेन कल्केन श्रापादं संविलेपयेत् । ज्यान्ते पूर्ववत् स्वप्ने कययेत् सा श्रुभाग्रुभम् ॥

"श्रीं नमो रुट्राय श्रीं नमी भगवते श्मशानवासियोगिने स्वाहा"। "श्रीं नमश्चन्द्रस्नाविणि कर्णाकर्णकारिणि ! स्वाहा"। उभर्याः पुर्ववत् सिद्धिः॥ ३०॥

पूर्वमेवायुतं जक्षा कुष्ठकल्लाभिमन्तितम्।
सप्तवारप्रलेपेन स्वप्ने वित्त ग्रभाग्रभम्।
तैलोक्ये याद्यी वार्ता ताद्यीं कययत्यलम्॥
"श्रीं क्रीं श्रागच्छ चामुण्डे! स्वाहा"॥ ३१॥
रोचनाकुङ्गमचीरैः पद्ममष्टदलं लिखेत्।
नीरसे सूर्यपत्ने तु मायावीजं दले दले।
लिखित्वा धारयेक्पूर्षि चेमं मन्त्रं ततो जपेत्।
पूर्वमेव तु सप्ताहं एवं कुर्य्यात् प्रयत्नतः।
ग्रतीतानागतं सर्वं स्वप्ने वदित देवता॥
"श्रों क्रीं चिनि पिग्राचिनि स्वाहा"॥ ३२॥
ग्रलावुमूलिका पुष्ये तया सपीचिमूलिका।
संग्राह्मा मन्त्रिता यत्नाद्रक्तस्त्रेण वेष्टयेत्।
मन्त्रेण सूर्षि वहा तु वदत्येव ग्रभाग्रभम्॥
"श्रीं नमो भगवते रुद्राय कर्णिपग्राचिनि! स्वाहा"॥३३॥

इति शौसिञ्जनागार्जुनविरिचितं कचपुटे यिचिशीसाधनं नाम चतुर्दशः पटनः।

### यथ यञ्जनम्।

श्रञ्जनानान्तु सर्वेषां मन्त्रं साध्यमघोरकम्।
विनाऽघोरेण विम्नानि नागयन्ति परे परे॥
दिच्चणामूर्त्तिमासाद्य जपेदष्टसहस्रकम्।
ततः सर्वविधानानि सुखसाध्यानि कारयेत्॥
श्रों विद्याधरं विरूपाचं वहुरूप महेश्वरम्।
जपाम्यहं महादेवं सर्वसिडिप्रदायकम्॥

"त्र्राय नमो बहुरूपाय नाग्रय विच्छरूपाय नमो विष्वाय विक्षरूपाय नमस्तत्पुरुषाय नमो यच्चिरूपाय नमः एकयचाय नमः एकरोमाय नमः एकमण्ये नमो वरदाय नम् स्यचाय नमो त्र्राय स्वाहा"॥

जितिन्द्रियः सोपवासः महिखरमजं विभुम्।
अर्चन् सिद्धिममं मन्त्रं जपेत् सिद्धिमवाप्रुयात्॥१॥
कज्जलानां निपाताय याद्यो यत्नेन पावकः।
दीचितस्य ग्रहात् येष्ठो यतीनाञ्च विशेषतः।
रजकस्य ग्रहादापि तचकस्य ग्रहाच वा॥

"श्रों ज्वलितद्युतिदेहाय खाहा"। श्रयमिश्यहणमलः। "श्रों नमी भगवते वासुदेवाय श्रीपर्वते कुलपर्वते वसुवते खाहा"। श्रवन मलेणाग्नं रचयेत्। "श्रों वित्तं बन्ध दिग्नं बन्ध पातालं बन्ध मण्डलं बन्ध बन्ध खाहा"। श्रवन विर्माममलयेत्। "श्रों नमें भगवते सिडिसावराय ज्वल ज्वल पत पत पातय पातय बन्ध बन्ध संहन संहन दर्भय दर्भय निधिं नमः" श्रवन दीपं प्रज्वालयेत्। "श्रों दं सर्वसिडिभ्यो नमः। विच्छे खाहा"। श्रवन कज्जलं शाह्यम्। "श्रों कालि कालि! रच्च स्च मदञ्जनं नमो विच्छे खाहा"। श्रवन यत्निह्यद्वसिमान्ययेत्॥ २॥

हेन्नः श्रनाकया चादी चन्नुषोरञ्जनं स्मृतम्।
तया श्रनाकया प्रयादञ्जनद्रव्यमञ्जयेत्॥
श्रञ्जयिताऽञ्जनं प्रयात् सप्त वाऽश्वश्यपत्रकम्।
वन्धयेत् प्रतिनेत्रन्तु ह्यच्छिद्रं तद्धोमुखम्॥
तस्योपिर सितं वस्तं पष्टजं वाऽय वन्धयेत्।
नाञ्ज्यादिधकहीनाङ्गं चादृष्टिं वाऽग्निद्ग्धकम्॥
सम्पूर्णाङ्गं श्रचिस्नातं दिदिनं नक्तभोजिनम्।
चौरशाल्यन्नभोक्तारं दिदिनान्ते ततो जपेत्।
श्रिञ्जतस्य शिखावस्यं कर्त्तव्यं मन्त्व उच्यते॥

"श्रीं नमी भगवते रुट्राय श्रीं माहे हुलुं हुलु विहुलु विहुलु ाहा यच यच पूजिते यचकुमार्थ्यः सुलोचने ! स्वाहा"॥ ३॥

दिचणामूर्त्तिमात्रित्य \* ह्युद्यास्त्मयं जपेत्।
पूर्वमेव समाख्याता शिखावन्धे शिवोदिता।
त्रयं सर्वाञ्चनानां वै विधिर्ज्ञेथः श्वभावहः॥ ४॥
रोचनं कुङ्गुमं श्रङ्घं बालपुष्पी तु चन्दनम्।
राजावर्त्तं प कुमारीञ्च सीवीराञ्चनपारदम्॥
कज्जलं काञ्चनोञ्चेव सितपद्मस्य केशरम्।
यावकं सष्टतं चीरं समभागं सुपेषयेत्॥
सम्मानचेलमादाय पूर्वपिष्टेन लेपयेत्।
तहत्तिं घृतसंयुक्तां प्रज्वाख्य कज्जलं हरित्।
सर्वाञ्चनमिदं ख्यातं पातालनिधिदर्शनम्॥ ५॥
शरत्काले तु संयाद्या भूलता रक्तवर्णका।
सिन्दूरपूरितां कत्वा रिवतूलेन वेष्टयेत्॥

अब दिचिणामृत्तिंपदेन दिचिणकालिका बीद्या।

भव राजावर्त्तपदेन उपरविर्णयार्थवीघ:।

अतिकण्यतिलात्तेलं याह्येद्रच्येत् सुधीः। तैलुवर्च्याः प्रयोगेण कज्जलं चोत्तरायणे। याह्यिताऽञ्चयेचचुनिधिं पश्यति पूर्ववत्॥ ६॥ सप्तधा पद्मस्वाणि भावयेदिच्जे रसै:। मर्वाञ्जनिमदं दिव्यं श्रम्भदेवेन भाषितम ॥ दीपकज्जलयोः पाचं कर्त्तव्यं नरमुख्कम्। सर्वेषां कज्जलानान्तु ग्रस्तं स्याच्छिवभाषितम् ॥७॥ स्रोतोऽञ्जनमुल्कस्य याच्येदाश पित्तकम्। ग्रुभे भाग्डे विनिचिष्य यावसप्तदिनाविध । यनेनाञ्जितनेतस्तु निर्विष्नं वीचते निधिम्॥ ८॥ यतिक्षण्य काकस्य जिह्वाहृमांसमाहरेत्। विष्टयेद्रवितृलीन वर्त्तिं तेनैव कारयेत्। अजाघृतेन दीपन्तु प्रज्वाल्यादाय कज्जनम्। अज्ञिताची नरस्तेन निधिं पश्यति पूर्ववत्॥ ८॥ स्रोतोऽज्जनसुलूकाप्त-जिह्वारक्तान्वतं चिपेत् \*। सप्ताहान्ते समुबुत्य यञ्जनादीचते निधिम् ॥१०॥ अश्लेषायान्तु क्षणाहिरतिधूमेन कञ्चकम्। दगध्वा स्रोतोऽञ्जनोन्मियमञ्जयेनिधिदर्शनम् ॥११॥ नकुल्ख च भेकस्य लोचनानि समाहरेत्। स्रोतोऽञ्जनसमायुक्तं मेषतैलीन पेषयेत्। अञ्जिताची नरस्तेन निधिं पश्यति पूर्ववत् ॥१२॥ उल्कचन्तरादाय कुङ्गमं रोचनं ग्रा । समांसं मधुना पिष्टं खातं सर्वोच्चनं परम् ॥१३॥ पारदं मधु कर्प्रं मधुकस्य च मूलिकाम्।

चिपेदित्यनेन भार्छे निचिष्य भूगर्ते निधापयेत् इति ताल्ययंसरिणः ।

समं पिष्टा पिवेत् सिडं दिव्यं सर्वोज्जनं परम् ॥१४॥ पुषार्के खेतगुजाया विधिना मूलमाहरेत्। उन्ताचेण मधुना सर्वाञ्चनिमदं परम्॥ १५॥ म्रोतोऽञ्जनं सखद्योतं मूलकाण्डे विनिचिपेत्। सप्ता हान्ते समुबुत्य पातालमधुनाऽञ्जयेत्। दिवा नच्चवित्तानि करस्यानि विपर्यति ॥१६॥ इरितालं वचां लोधं रेण्कां चाञ्चनं तथा। क्रयापचे चतुर्दभ्यां चूर्णीकत्य विनिचिपेत्॥ सम्पटे ताम्बजे तञ्च अघोरेणाभिमन्वयेत्। श्रिवाची निधि पश्येत्ररी नानाविधं भवि ॥ १०॥ रक्तागस्यस्य तैलेन भूधाचीमूलपेषितम्। कर्परेण युतं चाज्यं सिद्धं सर्वाञ्चनं परम्॥ १८॥ कुङ्गं खेतगुञ्जा च काञ्चनस्येव पत्तवम्। मुखेतञ्च जवापुषां सूर्यावर्त्तसमं मधु। सर्वोच्जनिमदं ख्यातं पातालनिधिद्रश्निम ॥ १८ ॥ रक्तेन क्षकलामस्य भावियत्वा मनःशिलाम। तेनैवाज्जितनेत्रस्तु निधिं पश्यति भूमिगम ॥ २०॥ पारदं काकमाच्यसं फलं कर्प्रकं मधु। स्र्यावत्तेसमायुक्तं सिद्धं सर्वोद्धनं परम्॥ २१॥ जया मांसी हंसपदी कर्प्रञ्च मनःशिला। स्तं दारुनिशा चैव समभागानि पेषयेत्। दिव्याञ्जनमिदं खातं सर्वभूतवग्रङ्गरम्॥ २२॥ सद्योहतमनुष्यस पित्तमादाय पूजयेत्। रोचनयैव शशिना धूमपाकेन शोषयेत्। 💎 श्रष्टा हान्ते जलै घृष्टमञ्जनं निधिदर्भनम् ॥ २३ ॥ उल्काचनुषो रतो भावयेत् पष्टसूत्रकम्।

तद्वस्योङ्गोलतैलेन प्रदीपोडृतकज्ञलम् । सर्वोज्जनिमदं साज्यं पातालनिधिदर्भनम् ॥ २४ ॥ खेतगुज्जारमे सूत्रं दिनमेकन्तु भावयेत् । ततो वाराइजं चूर्णं सूत्रमध्ये निवेशयेत् ॥ दीपमङ्गोलतैलेन तद्वस्युंडृतकज्जलम् ।

सिडं सर्वोज्जनं लोके खज्जनं निधिदर्भकम् ॥ २५ ॥ कणाजिपत्तच मयूरिपत्तमशोकमूलं स्थितमृत्तरस्याम् शशाङ्गगोरोचनमाचिकच सर्वोज्जनं नाम शिवोपिदिष्टम सर्वोज्जनानि ख्यातानि प्रसिद्धानि शिवोक्तितः ॥ २६ ॥ श्रमस्थवच्जां कुर्योत् पादुकाऽज्जनदर्शिकाम् । पादुकाऽज्जनयोगेन सिडयोगा भवन्ति वै॥

"द्यों नमी भगवते रुट्राय उड्डामरेखराय शिल धमनेनालि वेतालि! स्वाहा"।

श्र<mark>नेन मन्त्रराजेन पादुकामभिमन्त्रयेत् ॥ २० ॥</mark>
श्रथ कुमाराञ्चनम् ।

पुष्यनचत्रयोगेन पिण्डोतगरमृलिकाम्।
पड़क्तुलिमतां कुर्य्याच्छलाकां रचयेत् ततः॥
स्नापयेच ग्रिलापष्ठे कुमारं वा कुमारिकाम्।
तिच्छला स्नानतीयेन रोचनं हेमगैरिकम्॥
निष्टष्टमञ्जयेनेत्रं मन्त्रमुक्तञ्च पूर्ववत्।
श्रलाकया रचितया तयैवाञ्जग्रानिधिं लभेत्॥१॥
तिलपर्ण्युद्भवं मूलं हस्तार्के विधिनोड्नतम्।
पाताले ॥ मधुना युक्तं जलष्टष्टं तदञ्जयेत्।
निधि पश्यत्यसौ सत्यमर्थिन सन्निधी सति॥ २॥

अव पाताली इति स्थाने पातालयन्ते पदम् अन्तये शान्दवीधावधारकम्

पृथ्वार्केऽगस्यहचस्य सूलमुडृत्य वारिणा।

पाताले मधुना पिष्टं संयुतं निधिदर्भकम् \*॥३॥

पिण्डोतगरजं सूलमुदीचीगतमुडरित्।

चन्द्रस्र्योपरागे तु पातालमधुसंयुतम्।

पेषयेचाञ्चयेन्नेत्रे सम्यक् पश्चित भूनिधिम्॥४॥

श्रथ पादाञ्जनम्।

तुलसीमृलिकां पुष्ये शनिवारे समुद्धरेत्।
निष्पिष्य काञ्चिकीनाय मधुना युतमञ्चयेत्॥
पादजाते कुमारं वा कन्यकां वा ततो निधिः।
दृष्यते नात्र सन्देहः पातालान्तर्गतस्त्रया॥ १॥
पायात्यं पिप्पलीमृलं पुष्यार्के विधिनोडृतम्।
पातालमधुना युक्तं पादजाताञ्चनं भवेत्॥ २॥
तिलपप्पुँद्धवं मूलं क्षण्पचे रवेदिने।
चतुर्दृश्यां समादाय जलेन सह घर्षयेत्।
पातालमधुना युक्तं पादजाताञ्चनं भवेत्॥ ३॥
मधुपृष्यं वचा चीद्रं रक्तागस्यय चन्दनम्।
गुञ्जा च तिलपणीं च पादजाताञ्चनं भवेत्॥ ४॥
सुग्वेतकरवीरस्य पुष्याके मूलमुद्धरेत्।
पातालमधुना युक्तं पादजाताञ्चनं भवेत्॥ ॥

अय लेपाञ्जनम्।

गोचीरेण तु सम्पिष्य तिसकोद्रवराजिका:।
कणावीजञ्च सम्पिष्य निशायाञ्च निधिस्यसम्।
भ्रष्टी सेपी भवेद यव प्रातस्तव निधि दिशेत्॥१॥
ग्रजुनस्य कदम्बस्य वकस्य खदिरस्य च।

<sup>।</sup>व दूरानिधिलिमिति पाताची पिष्टं मधुना म्रंयुतमेवमन्वययीजना कर्त्तव्या ।

ब्रह्म ब्रह्म प्रवाणि काकोल्या चैव पेषयेत्॥ निशायां लेपयेडूमी कल्कं मन्त्रेण मन्त्रयेत्। प्रातर्लेपो न यतास्ति तज्ञैव निधिमादिशेत्॥ २॥ उमादिमाद्यसंयुक्तं किरातं तत्र पूज्येत्। तत्र होमः प्रकर्त्तव्यो निशायां ष्टतगुग्गुलैः। प्रभाते तद्विवर्णञ्च निधिस्तत्र सुनिश्चितम्॥ "श्रीं नमी भगवते स्ट्राय कल्कलेपाञ्चनं दर्शय

ठः ठः खाहा"।

कल्कलेपाञ्चनञ्चेदमनेनैवाभिमन्वयेत्॥ ३॥

श्रय मावाञ्चनम्।

प्रवेशे नगरस्थान्तर्जचमेकं जपेसनुम्।
पठन् स्त्रैर्घृतीपेतैः क्वते होमे दशारंशतः।
पयच्छत्यञ्जनं हंसी येन पश्चिति सूनिधिम्॥
"श्रों नमो हंसि हंसजाते! क्षीं स्वाहा"॥१॥
मधुकस्य तले मन्त्रं चतुर्दशदिनं जपेत्।
नक्तभोजी चतुर्यामं तृष्टा यच्छिति मेखला।
ग्रञ्जनं विघ्वनिर्मुक्तं तेन पश्चिति सूनिधिम्॥
"श्रीं नमो मदनमेखले! ठः ठः क्रीं स्वाहा"॥२॥
एकलिङ्गं समभ्यच्चे षड्ङ्गेनाभिभावितः।
पूर्विसन्यां समारभ्य क्षण्णपचादितो जपेत्॥
सहस्राष्टमिदं नित्यं मासान्ते पूज्येत् पुनः।
मद्रक्तां \* देवतां लिङ्गे रात्री मन्त्रं पुनर्जपेत्॥
ग्रर्बरात्रे गते देवी दत्ते दिव्याञ्जनं ग्रमम्।
वस्त्रालङ्गरणं दिव्यं पर्यमासाचैव सिंहिदा॥

<sup>\*</sup> मद्रताम् इत्यनेन साधनः खानुकूलां तां चिन्तयेदिति भावार्थः।

"श्रों चर्क चर्क शाल्यलस्वर्णरेखे! स्वाहा"। इति मन्तः। ों क्रां हृदयाय नमः। श्रों क्रीं शिरसे स्वाहा। श्रीं क्रूं खायै। श्रों क्रें कवचाय। श्रीं क्रीं नेताभ्याम्। श्रीं क्रः स्वाय"। इति पड़क्षानि॥३॥

श्रवेराचे समुत्याय सहस्रोकं जपेचानुम्।

मासमेकं ततो देवी निधिं दर्भयति ध्रुवम् ॥

"श्रों च्लीं प्रमोदाये खाहा"॥ ॥

दिनत्रयं निराहारः सित सोमग्रहे जपेत्।

यावन्मृत्तिस्ततो देवी यच्छत्यञ्जनमुत्तमम्॥

"श्रों च्लीं यच्चिण भौमिनि रितिप्रिये! खाहा"॥ ॥ ॥

एक लिङ्गग्रहस्थाने चन्दनेन सुमण्डलम्।
कात्वा हस्तप्रमाणेन पूजयेदत्र पद्मिनीम्॥
धूपं सगुग्गुलुं कात्वा जपेन्मन्तं सहस्रकाम्।
मासमेकं ततः पूजां कात्वा रात्री पुनर्जपेत्।
श्रईरात्रे गते देवी दत्ते दिव्याञ्चनं श्रुभम्॥

"श्री क्री पद्मिन ! खादा" ॥ ६ ॥

वटवचतले कुर्याचन्दनेन समण्डलम् ।

यचिणीं अ पूजयेत् तत नैवेद्यसुपदर्भयेत् ॥

शश्मांसासवैः पद्मान्त्रमावर्त्तयेत् सुधीः ।

दिने दिने सद्द्येकं यावन्मासं प्रपूजयेत् ।

ततो देवी समागत्य दत्ते दिव्याञ्चनं परम् ॥

"श्री क्री क्रायान्य स्वास्त्र स्वास्त्र ॥ १०॥॥

"श्रीं च्ली समागत देता दिया जन परम् ॥

"श्रीं च्लीं ग्रागच्छ कनकावित ! खाहा"॥ ०॥

ग्रगालस्याचिकर्णेन ह्यञ्जयिक्षीचनदयम्।

भूतं पश्चत्यसी तस्मात् सम्प्राप्नोति महानिधिम्॥ ८॥

अत क्लोऽनुरोधात् कनकावतीम् इति स्थाने यचिणीमिति पाठः च्चेयः ।

देवदालोरसैयचुरञ्जियित्वापि तत्फलम्। "श्रो गणपतये नमः। श्रीं चासुग्डायै नमः। श्रीं । दर्भय दर्भय स्त्राहा"॥ ८॥

> उक्तयोगदयस्यास्य मन्तः स्थादयमेव हि । इति यौक्तिहनागार्जुनविर्विते कचपुटे सब्बोज्ञनादिनिधिदर्भनं नाम पजदशः पटनः।

## अय अज्ञातनिधानस्य ग्रहणम्।

ब्रह्मचारिसहस्रेण शिलामूलग्रतेन च।
रद्राणाञ्च सहस्रेण शिखावन्थो विधीयते॥
"श्री रच रच विचे खाहा"॥१॥
कुर्यात्सर्व्यसहायानां शिखावन्थमनेन वै।
गावरं धारयेद्रूपं मन्त्री सर्वार्धसिखये॥
गुणिनी या सता नारी तत्केग्रेरुपवीतकम्।
क्रत्वा तु धारयेत्तस्या भस्त्रना धूनयेत्तनुम्॥
नरमुण्डधरो नग्नः शिखिपच्छैः सुभूषितैः।
दत्येवं रूपपृग्वीरः पूजां कुर्य्यादिधिस्यले॥
चतुरसं चतुर्दारं तन्मध्येऽष्टदलास्वुजम्।
क्रत्वैतन्मण्डलं मन्त्री कुङ्गमागुरुचन्दनम्।
तन्मध्ये स्थापयेत् कुन्धं जलपूर्णं शिवान्वितम्॥

"श्रीं सोमाय विश्वाधिपतये श्रागच्छ, श्रागच्छ बलिं रट ह नमो विश्वे स्वाहा"। श्रीनाष्ट्रतकमले ब्राह्मग्रायण्यं प्रयोत्। " नमो ब्राह्मग्र श्रागच्छ श्रागच्छ वलिं रटहाण्"। एवं सर्वमा तद्रामयुतेन मलेण पूजां कुर्यात्। "श्रीं श्रक्षाय श्रागच्छ श्रागच्छ र रहाण्"। एवं सर्वे द्वारपालाः पूज्याः। नन्दिनञ्च त्रियं पूर्वहारदेशे प्रपूजयेत्। कौत्तिञ्चैव महाकालं दक्तिणे पश्चिमे पुनः॥ सगणेशं कुमारञ्च सङ्किद्गिष्डनमुत्तरे। द्येवं पूजनं क्रवा खल्पाहारः प्रक्रिस्पयेत्। विलं प्रदर्शयेनान्त्री सहायांश्वाभिषेचयेत्॥

"श्रों बिल सुबिल रूप्यन्तु सिडिमादिशन्तु श्रों नमी विश्वे स्वाहा"। इति बिलमन्तः।

मण्डलं दर्शयेचान्त्री महायाय समर्चितम्। शिवकुभाग्मसा सर्वाचान्त्रेणैवाभिषेचयेत्॥

"श्रीं नमी भगवते श्राभेटे पिङ्गलोदराय पापं नाशय नाशय दुराचारं हन हन श्रमिषिक्तानां रच रच श्रमिषेकं पदम् उपधारय उपधारय कुरु कुरु समरभीषणे नमी विचे वौषट्"। इति श्रमिषेक्षमन्तः ॥ २॥

निधेः खननकाले तु जपंस्तिष्ठेदघोरकम् । ध्यायेच गावरं रूपं सर्वभूतभयापचम् ॥ मयूरपचसंयुक्तं गुज्जाजालेन भूषितम् । दन्तुरोग्रमतिष्यामं रक्तोत्पलनिभेचणम् । किरातमीखरं ध्यात्वा सर्वभूतफलप्रदम ।

"श्रीं च्लां च्लीं च्लूं श्रघोर तर तर प्रस्तुर प्रस्तुर प्रकट प्रकट धनेशाय कह कह सम सम जात जात दह दह पातय पातय श्रीं च्लीं च्लूं श्रघोराय फट्"।

> दमञ्चाघोरमन्त्रं हि पूर्वमेवायुतं जपेत्। श्रीषधीश्चेन होमस्तु घतैः सिडो भवेदिति॥ खन्यमाने निधी सर्पा निःसरन्ति भयानकाः। श्रीषधेन विना तेभ्यो भयं स्थान्मन्त्रिणामपि। तस्मादीषधयोगेन पादलेपेन तान् जयेत्॥ ३॥

अर्कस्य करवीरस्य पनसस्य च मूलिकाम्।

पिट्टा पादप्रलेपातु दूरे गच्छन्ति पन्नगाः॥ ४॥ मिल्लिका गिरिकाणीं च खेतार्कः कण्टकारिका। वचा च मृलिकाशैषां पिष्टा पादं प्रलेपयेत्॥ सर्पा यचगणाः क्रूरा ये चान्ये विघ्नकारिणः। पलायन्ते निधिं त्यक्का यथा युडेषु कातराः ॥ ५ ॥ विक्तः कोषातको वजी खेतार्कः गिरिकर्णिका। वचा पाठा च निर्गुण्डी कट्तुम्बग्रास \* मूलकम्॥ निम्बकेशरवीजानि गोमूत्रैः पेषयेत् श्नैः। अनेन पादलेपेन विद्या यान्ति दिशो दश ॥ एतनाराचयोगेन याति पातालकां, धनम। ग्रह्णाति नात्र सन्देह: खयमुक्तं कपर्दिना॥ ६॥ कुषाग्डैरग्डधुस्तूर-वीजानि पनसस्य च। तालदाड़िमनुलानि गोमूबै: पेषयेत् समम्॥ अनेन पादलेपेन सर्पा यचाः पिशाचिकाः। पलायन्ते न सन्देहो निधीन् संग्राह्येत् ध्रवम्॥ ७॥ समन्वकीलकैर्देष्टं निधिं श्रैतैय कीलयेत्। पलाग्रप्मचलोध्रोत्य-कदम्बनिम्बजै: सुधी:। श्रम्बुस्बरकाखत्य-कीलकैः पञ्चसंयुतैः॥ "श्री पुनन्तु मां देवगणाः पुनन्तु गणकाधिपाः। पुनन्तु विश्वे देवास जातवेदाः पुनीहि माम्"॥ इति कीलकमनः। ''ग्रीं सर्वभूताधिपतये नसः"। भनेन मधुमांमास्य भृतविलं दद्यात्। "स्त्रीं क्तीं फट"। अनेन मन्त्रेण निधिस्थाने पुषं दद्यात्

अ चत चन्ते पष्टी विभक्तियोगी वर्त्तते इति पूर्विकीषधादी तयैवान्वयः ; ते।
 वक्त्रादीनां मूलकानि कटुतुन्द्राय मूलकम् इति ग्रहार्थवीधः।

'त्रीं नमो मगवते केतुमालिने गरुड़े ग्रुभे त्रीं क्रीं कपालिनि उद्वारय ग्रहाण निधिं स्वाहा"। अनेन केतुमालिनिमलेण निधिमुद्ध-ति॥ ८॥

चलारो निधयस्तव ग्रमुदेवेन कीर्त्तिताः।
कचपो मकरः ग्रङ्गः पद्म द्रत्यभिधानतः॥
कचपो मकरयैतौ स्थिरिचत्तौ स्वभावतः।
सुखसाध्यौ यथा पूर्वं विधानेन समाहरेत्॥
ग्रन्देन तु मनुष्याणां ग्रङ्गपद्मी रसातलम्।
गच्छन्तौ न तु दृश्येते तव मन्बद्दयं स्मरेत्।
गीवञ्च वैशावञ्चेय ततः सिद्दो भवेद् भ्रवम्॥

"श्रीं नमी भगवते रुद्राय निधिमुत्तिष्ठ माचलं स्वाहा"। यो नमो भगवते वासुदेवाय घर घर बन्ध श्रीपर्वतकुलपर्वते सुनिधिं साधयेत्"॥ ८॥

सकाष्ठलोह्माण्डेषु स्थितं द्रव्यन्तु सृतिकाम्। ग्रैवानं वा समायित्य तिष्ठेत् तञ्च विग्रोधयेत्॥ वालुकौर्नवणं पिष्टा तिस्मन् द्रव्ये विनिच्चिपेत्। यावद्यवणसंतुत्व्यं पाचयेन्मृदुविक्कना॥ स्वर्णञ्च सर्वेद्रतानि निर्मेनानि भवन्ति वै। ग्रजुनस्य विभीतस्य चित्रकस्य च पञ्चवान्॥ पिष्टा तु नवणं तुन्यमारनान्तेन लोड्येत्। तिक्षप्तद्विणं ह्यग्नी चार्पयेन्सन्त्रभान्तये॥ १०॥

इति यौसिडनागार्जुनविरचिते कचपुटे निधिवशौकरणं नाम थोडग्रः पटलः।

### अय अद्धायनग्णम्।

लचमेकं जपेक्मन्तं राजदारे ग्रुचि: स्थित: । चीरेण मालतीपुष्पैर्द्धुते सिध्यति यचिणी । ददाति गुटिकां सा तु मुखस्थाऽदृश्यकारिणी ॥ "ऐं मदने मदनविड्म्बने ! श्रात्मसङ्गं देहि मे देहि स्वाहा" ॥ १ ॥

चतुर्लेचं जपेनान्वं समशाने नियतः ग्रचिः। नग्नोव्रतं ततस्तुष्टा पटं यच्छति यचिणी॥ तेनावृतो नरोऽदृश्यो विचरेद्वसुधातले। निधि पश्यति ग्रह्णाति न विष्नै: परिभूयते ॥ "श्रों क्लीं शमशानवासिनी खाहा"॥ २॥ निशायाञ्च निधिं ध्याला जप्रन वामेन पाणिना। श्रदृश्यकारिणीं विद्यां लच्जापे \* प्रयच्छित ॥ "श्री नमो विखाचर महिखर । सम पर्याटतः" ॥ ३॥ श्रतिबल्यपहारेण कर्यादर्चनस्त्रमम्। ततो दीपाङ्कलीतैं लेवें किं: स्यादर्कतन्तु जै: ॥ प्रज्वाल्य नुकपाले त् तत्पात्रे घष्टकज्जलम् । श्रद्धयेनेत्रयुगलं देवैरिप न हुस्सते॥ ४॥ अर्कशाला विकापीस-पहस्त्वाञ्चतन्तुभिः। पञ्चभिवंत्तिकाभिञ्च नृकपालेष् पञ्चसु ॥ नरतैलेन दीपेषु कज्जलं नीरजैर्दलैः। याह्येत् पञ्चभिर्यक्षात् पूर्ववञ्च शिवालये॥ पञ्चस्थानेषु युज्जीत एकी कुर्याच तत्प्नः। मन्त्रयिलाऽच्चयेनेचे देवैरपि न दृश्यते॥

<sup>\*</sup> तसा श्रद्धावारिखा एव जनसंख्य जपसाधनये वर्षः।

"श्रीं क्रीं फट्कालि कालि मांसशीणितभोजने रत्तक्कण-मुखे देवि ! मा मे पथ्यति मनुष्येति हुं फट्खा हा"। भयं मनः भयतन्तरः सिडी भवति ।

> ब्रदृश्यकारिणो योगाः मन्त्राबाष्टोत्तरं ग्तम। अनेनेव प्रयोगेण ततः सिद्धाः भवन्ति हि ॥ ५ ॥ श्रङ्गोलतेलसंसिक्ता वचा सप्तदिनावधि। विलोच्चेष्टितां धातु-गुटिकां कारयेच्छ्भाम्। ग्रदृश्यकारिणी खाता मुखस्या नात संगयः॥६॥ तत्तेले \* मर्पपं खेतं तिलीहेन च वेष्टयेत। गुटिका मुखमध्यस्या खाताऽदृश्यत्वकारिणी॥ ७॥ काकीलुकस्य पचाय ग्रात्मकेशास्त्रयैव च। अन्तर्धमगतं दग्धं सूच्याचूर्णन्तु कारयेत्॥ अङ्गोलतेलगृटिकां क्रता शिरिस धारयेत। अदृश्यो जायते चिप्रं देवैरपि न दृश्यते ॥ ८॥ तालकं क्रण्यमिह्यी-चौरमङ्गीलतैलकम। तिमाङ्गो नरोऽहस्यो जायते सङ्गरोदितम् ॥ ८॥ श्रङ्गोलतेलसंसितां मलं पारावतोद्भवम्। ललाटे तिलकं तेन क्रत्वाऽदृश्यो भवेत्ररः॥

"श्रीं कचवी लालामूलं हुने सीरे जाने च्लीं च्लीं सिंहे स्वाहा"। उक्षयीगानामयमेव मन्तः॥ १०॥

• खेतापराजितासूलं ग्राह्यं चन्द्रग्रहे सित । वालाचीद्रेण संग्रुक्तां गुटिकां सूर्भि कारयेत्। वक्के हस्ते च सा ग्राह्या देवैरिप न दृश्यते॥ ११॥ • पुत्रजीवीत्यितं तैलं वर्त्तिं क्रत्वाऽक्रतन्तुजाम्। गोरोचनामधुभ्याञ्च वीरमुण्डे प्रलेपयेत्॥

अव तत्ते ती दित अङ्गीलते सम्यक् सेचियिला दल्यंबीध:।

दीएं प्रज्वाच्य चैकस्मिन्नपरे ग्राह्य \* जज्जलम्। तदञ्जनाञ्जितो मर्स्यो विखेनापि न दृश्यते ॥ १२ ॥ जरायुं खेतमार्जार्थाः क्षणाया वाऽय चूर्णयेत्। विलीइवेष्टितं क्यांनाखस्यादृश्यकारिणी 🕆 ॥ १३॥ भोजयेत् क्षरणकाकन्तु महिषीनवनीतकम्। तिद्वा रिवत्लेन नृजपालेषु पूर्ववत्। श्मगाने कज्जलं याद्यं तदत् फलमनुत्तमम्॥ १४॥ पारावतस्य कुचिस्थो पचः स्रोतोऽज्जनं हितम्। क्षणमाजीररक्तेन सिक्तमञ्जराददृश्यकत्॥ १५॥ क्षण्यार्जाररक्तेन भावितैः रक्ततन्त्रभः। वर्त्तिस्तत्कपिलाज्येन नृकपाले च पूर्ववत्। याच्येत् कज्जलं दिव्यमदृश्यकरणोदितम् ॥ १६ ॥ दारदो देवदार्थ चितामांसं नरस्य च। स्रोतोऽञ्जनयुतं कुर्यादञ्जनेऽदृश्यकारकम् ॥ १०॥ उन्वस्य युगानस्य गूकरस्याचिनासिकाम। नौलाञ्जनयुतां पिष्टा रुद्धा यावपुटे दहेत। तेनाञ्चितो नरोऽदृश्यो जायते नाच संगयः॥ १८॥ खन्तरीटं सजीवन्तु ग्टहीला फाल्गुने चिपेत्। पञ्जरे रच्चयेत् तावद् यावद्वाद्रपदं सभेत्। तदा स पञ्जरेऽदृश्यो जायते नात्र संगय: ॥ १८ ॥ खञ्जरीटशिखा याच्चा हस्तस्याऽदृश्यकारिणी। तिली इवेष्टितां रचे बारये सुधि सर्वदा ॥ २०॥ दश हेम दिषट् ताम्बं रीप्यं षोड्शभागिकम्। एषा मंख्या तिलौ हस्य ज्ञातव्या सर्वकर्मणि।

श्रव याद्येत्यार्षम्पदं, ग्रहीलास्थाने बीध्यम्।

<sup>†</sup> एषा गुटिका द्रति शेष:।

क्रमण वेष्टयेद् यद्वाद् गुटिकानामयं विधि:॥
"ग्रीं नमी भगवते उड्डामरेश्वराय, नमी क्ट्राय विलि
विलि व्याघ्रचमेपरिधान कमल कतुल चण्ड प्रचण्ड! किलि
किलि स्वाहा"। उक्षयीगानामयं मलः॥ २१॥

यजमोदस्य मूलन्तु तुरगीगर्भशयया।
सन्न तालकसम्पष्टं तिलकेऽदृश्यकार्कम्॥ २२॥
रात्री क्रण्यचतुर्दश्यां लाङ्गलीमूलमुद्धरेत्।
स्वेतच्छागलिकागर्भ-शय्यया नरतैलकम्।
एकोक्तत्याञ्चयेनेने ह्यदृश्य: स्वेचरो भवेत्॥

"ग्रीं ग्रः सखे ग्रः सकर्णे ग्ररिटुर्वल ग्रर्डाकोश दाटा कराले टकारावे फिकारिणि हुं हुं चण्डालिनि ! स्वाहा"। उत्तर्थागडये प्रयमेव मन्तः ॥ २३ ॥

श्रमावस्वाऽयवा पूर्णा पञ्चमी वा तयोदशी।
क्षेतपुष्पैगंन्धधूपैर्वलिदीपोपहारकैः।
रात्री \* पूच्या ततो याद्या देवदानी सुमन्त्रिता॥
"श्री असृतगण्परिविष्टित स्ट्रगणाय श्री नमः स्वाहा"।

भयं मनः । "श्रों नमो भगवते त्राय फट्" भनेन याचा पे । तर्रमेः पारदं मद्यं दिनमेनं ततोऽस्त्रयेत् । श्रद्धश्यो जायते सत्यं ख्यं प्रोक्तं कपदिना ॥ २४ ॥ तर्रसं देवदान्युत्यं केतकीस्तन्यसंयुतम् ६ । श्रस्त्रयेन्नेत्रयुगलम् अन्तर्द्धां नत्तरं परम् ॥ २५ ॥ रात्री क्षरण्चतुर्दश्यां चतुभिः सह साधकैः । एकान्ते च श्मशाने वा खड़हस्तैर्महावलैः ॥

श्रव रावौ दल्यनेन पृवींतामावस्थादितियिष्वन्दय: ज्ञेय: ।

भव यास्या दित पदाल्परं देवदानौमूलाऽ प्रेनिति श्रेष: समाकलनीय: ।

<sup>🙏</sup> भव नन्यगन्दः पुष्परस्वाचकः।

अर्चयेत् क्षणमार्जारं गन्धपुष्पाचतादिभिः। यजं क्षणां बलिं दयात् तस्य मेदः समाइरेत्॥ उपोषिताय तस्मै हि मेदो देयन्त भच्यो। त्ययन्तं तं तु मार्जारं ग्टहीत्वा पश्चिम पदे॥ चालनादामयेद्वाग्डे \* जलपूर्णे समर्चिते। तदान्तं पाचयेदग्नी दीपं तेनैव दापयेत्॥ वर्त्तिच ग्रभ्नतन्त्यां ज्वालयेनुकपालके। तत्पात्रे कज्जलं ग्राह्यं रात्री देवीं प्रपूजयेत्॥ परस्पराश्चिष्टकराश्वतारः खङ्गपाणयः। दीपमाद्यः रचेयुः पञ्चमस्तु जपेत् सदा ॥ महाकालीयमन्त्रेण पूर्वयोग उदाहृत:। तवत्यं कज्जलं यतात् पञ्चभिर्याच्येत् समम्। ग्रदृष्यकारकं राज्य-प्रदो योग उदाहृत: ॥ २६ ॥ ग्रनकस्यातिकषास्य गले सूतं विवन्धयेत्। "ग्रीं नमः श्रकान्ति नृकटयतु कुटकटिमेन"। यनेन मन्दराजेन क्षणाखानस्य दाचिणम। अधोदंदामूलमांसं याद्यं पञ्चोपचारकै:॥ पुजयित्वा विशुदातमा तं सयतं समाहरेत्। विलीइवेष्टितं क्रवा वक्कस्थोऽदृश्यकारकः ॥ २०॥ मयूरवानरास्थीनि पाचयेन्माहिषैर्घृतै:। पिष्टा तदञ्जयेनेचे च्यहस्यो जायते नरः॥ २८॥ उपवासत्रयं क्षत्वा ततः पुष्ये निवापयेत्। नृकपाले यवान् क्षणान् क्षणसत्प्रिते निशि॥ निशायां सेचयेनित्यं सुपक्षमाहरेनिशि। तैर्वीजैस्तु क्षता माला शिर:खाद्यकारिणी॥ २८॥

अत चालनादित्यनेन पारभामणादित्यधीऽवर्सयः।

श्रेण निइते मर्च्ये दम्धे तत्तीहमाहरेत्। नीलोलुकस्य काकस्य याद्ये एतस्य \* लोचने। तज्ञीहेनाञ्जयेचन्रदृश्यो भवति भ्वम् ॥ ३०॥ भजेहतुमतीं कन्यां श्मगाने मैयुनेन तु। तच्छ्क्रशोणितं याद्यं शिलाऽऽरकविमियितम्। नुनाटे तिनुकं तेन सुलाऽहुग्यो भवेनरः॥ ३१॥ मम्प्राप्ते लष्टमे मासे यदि गर्भं पतेत् स्तियः। तस्य नेत्रे च कर्णी च जिह्वाहृन्मांसनासिकाम्॥ गुद्मेद्रम्पादाय सन्धायां तत् प्रपेषयेत्। स्यीचन्द्रग्रहे चैवं गुटिकामभिमन्वयेत्॥ मङ्गाजालीयमन्त्रेण यावसीची भवेद गहः। गुटिकां धारविबस्ते ह्यदृश्यो जायते नरः॥ ३२॥ नृकपाले तु या लग्ना सीसकोइवसृत्तिका १। चाण्डालीस्तन्यसंमित्रा हस्तस्याऽदृश्यकारिणी॥ ३३॥ वापयत्त्वमीवीजं कर्माकारस्य मस्तके। रावी क्रण्चतुर्देश्यां जलेन परिषेच्येत्॥ तुलमीकाष्ठपृष्ठे वा दृश्यते सा न केनचित। तदर्थं वापिता वाच्चे त्लमी जायते मदा॥ तदा काकोइवा ग्राह्या विलं टच्वा तु कुक्कटम्। सुपक्षं सप्तधान्यञ्च वटपत्ने बलिं चिपेत। ममूनां तुलसीमञ्जाददृष्यो 🕸 जायते नरः ॥ ३४ ॥ क्रणाषाद्वतुर्देश्यां क्रणाधुस्त्रवीजकम्। वापयेत्ररमुग्डे तु नासारन्ये समांसके॥

अवैताने नेन अञ्चन यार्थ द्रत्यर्थवीधीऽवगन्तव्य:।

अव सीमजीइत्रसत्तिकया क्रणसत्तिका ग्राह्या।

<sup>💲</sup> अव तुलमोसत्रा।दियनेन तत्तुलसीक्षताञ्चनेन चत्तुवी अञ्चयदिव्यर्थः।

निखनेत कृष्णभूम्यन्तः सोच्छिष्टैः सेचयेत सदा। संक्रान्तिदर्शपूर्णीसु दीपं दयाद् ष्टतेन च॥ रत्तसुत्रोद्भवा वित्तर्यावत्तस्य फलोदयः। क्त णाष्टम्यां फलं याद्यं विलं दद्यात् कुक्टम्। तदोजैर्ग्टिका कार्या मुखस्थाऽदृश्यकारिणी॥ ३५॥ क्षणास्त्प्रिते चेत्रे वाष्या गुज्जा समुग्डके। राबी क्षणाचतुर्दश्यामतिबल्यपहारकैः॥ नित्यं कुर्याद्वलिं पूजां जलैः सिञ्चेत् सदा निश्चि। यावत फलित सा गुन्जा ततः क्रण्यमनं बलिम्॥ क्तता योगोश्वरांश्वेव भोजयेइ लिपूर्वकम्। तस्य चाष्टोत्तरशतं याद्यं गुञ्जाफलं क्रमात्॥ सूचा च प्रोतयेत् सूतैः सा मालाऽदृश्यकारिणी। धारयेन्स्भि कर्णे वा, स बचो न हि दृश्यते ॥ ३६ ॥ सुक्त ग्रामहिषीचीरै: पाचयेत् क्र गांजीरकम्। तद्भचणाददृश्यः स्थाद् यावद् जीर्णं न संग्रयः॥ ३०॥ हृदयं जनलासस्य ग्राह्येदिधिपूर्वेकम्। गोरोचनासमं पिष्टा तालपत्रेण वेष्टयेत्। समं वा गुटिका सा तु मुखस्थाऽदृश्यकारिणी॥ "श्रीं दुडापिङ्गलाय खाहा" ॥ ३८ ॥ कटतम्बी देवदानी पटीसी चेन्द्रवारुणी। तिक्ताकीषातकी तास्। ग्रष्कवीजानि चूर्णयेत्॥ अपामार्गकाकत्रहाः कषायेग विलोड्येत्। ग्रालिप्य कांस्यपावन्तु धारयेदार्तपे खरे॥

तं तप्तं खक्कवस्तेण पीड़येत् तैलमाहरेत्। तेन तैलेन संष्टष्टं देवदार च चन्दनम्। तेन वै तिलवं कुर्यात्तलाटेऽदृश्यकारकम्॥ ३८॥ अपामाग्वायाण पूर्वतेलं समाहरेत्। विषम्द्यत्यवीजानां चूर्णमाम्बातचूर्णकम्॥ दशांशं चित्रकं मूलं पिंचाज्ञाङ्गलिवारिभिः। एवं विधात क्रियायोगात् पूर्वतेलं समाहरेत्॥ विषमु ट्यु खवीजानि सर्वयोगेषु योजयेत्। म्रङ्गोलतेलनिर्देखं रजनोकुङ्मं निशि॥ रोचनासहदेखोय समभागानि पेषयेत्। विषम् द्यायतैलेन तिलकोऽदृश्यकारकः॥ ४०॥ कार्पामवीजचुर्णानि दिनमेकं विभावयेन्। समृतोत्तरवारुखाः कषायेण प्रयत्नतः। पूर्ववद् या इयेत्रैलं सर्वयोगेषु योजयेत्॥ बाम्बातवीजचुर्णान दशाऽंशं चित्रमूलकम्। नारिकेलाम्बना पिष्टा वर्त्ति कंत्वा प्रयत्नतः। ज्वलितां धार्ये इस्ते मीऽप्यदृश्यो भवेतरः ॥ ४१॥ पुचजीवो खवीजानां तैलसाम्बातवद्भवत्। दृश्यन्ते चान्त्रिताः सर्वे गोमूतैः चालनात् पुनः॥ ४२॥

इति श्रीसिद्धनागार्जुनिवरचिते कचपुटे श्रदृश्यकरणं

नाम सप्तदश: पटल:।

## अय पादकासाधनम्।

श्रय चाङ्गोलतैलेन पेषयेत् खेतमर्षपान्। तिल्लप्तहस्तपादस्तु योजनानां गतं व्रजेत्॥१॥ श्रङ्गोलतैलसम्पिष्ट-खेतमर्पपलेपिताम्। पादुकासुष्ट्रचर्मीत्यां समारुद्य गतं ॥ व्रजीत्॥ २॥

<sup>#</sup> अव शतमित्यनेन शतयोजनं ज्ञेयम।

काकजङ्घा सिता याद्या ग्टभ्रस्य च वसा तथा। ग्रखगन्धासमायुक्तासुष्ट्रीचीरेण पेषयेत्। ग्रनेन लिप्तपादस्तु योजनानां ग्रतं व्रजेत्॥

"श्रीं नमी भगवत रुद्राय भूतवेतालत्नासनाय शङ्कचन्न गढाधराय इन इन महते चन्द्रयुताय हुं फट् स्वाहा"।

श्रनेन साधकः पादः लेपनत्रयपूर्वकम्। धीरोऽभिमन्त्रयेचन्त्रं ततः सिडिः सुनिद्यिता॥३॥ श्रानमार्जारनकुल-पित्तं ग्राह्यं समं समम्। योजनानां ग्रतं गत्वा काकमांसं रसाञ्चनम्। पिष्टा पादप्रलेपेन पुनंरावर्त्तते चणात्॥

"श्रीं नमी भगवते रुद्राय मांसे संमले काले गलेखो प्रवर सर सर खाहा"॥४॥

दन्द्रगोपच सिन्दूरं हरिचन्दनवितसम्।
यजामांसं तथा रास्नामवीचीरेण भावयेत्॥
पिट्टा पादप्रसेपेन स गच्छेद् योजनायुतम्।
सुभगः स तु नारीणां ब्रह्मतुस्थो भवेन्नरः॥

"श्रीं नमी भगवते रुट्राय, नमी ब्रह्मणे, नम: सूर्य्याय, न यन्द्राय, नमी ग्रङ्कचक्रगदाधराय हिलि हिलि स्वाहा"॥ ॥

सुरभी क काञ्चनीमूलमजमारी च चन्द्रकम्। दारदं पारदच्चैव उट्टीचीरेण पेषयेत्॥ ज्ञनेन पादलेपेन नानारूपधरो भवेत्। योजनानां सहस्रौकं गत्वा प्रतिनिवर्त्तते। कामयेत् स्त्रीसहस्राणि रुद्रतुल्यो भवेत्ररः।

"श्रीं नमी भगवते रुद्राय, नमी दण्डिकपालाय मि

अव सुरभीपदेन नवमित्तकापुष्पाणि याद्यानि ।

प्तटं कटस्य यानप्रियाय बडे श्रीशूलिने भगवते तिनेत्राय चल इन स्वाहा"॥६॥

सारिकाया वसाने नमन्त्राणि रुधिरं तथा। काकि पत्तं तथा ने नं हिरचन्दनवेतसम्॥ ग्रुनोम ज्ञां वसां तुच्यमुष्ट्रीचीरेण भावयेत्। पाटलेपः प्रकर्त्तव्यो नमस्त्रत्य ग्रिवं ततः॥ योजनं लचमेकन्तु निमिषाईन गच्छित। गननाग्रेषचारी च कीड़त्येव यथा ग्रिवः॥ स्त्रीकोटिशतमंङ्वातं कामये निमिषान्तरे। वद्मत्त्व्यो भवेत सीऽपि लोयते परमे ग्रिवे॥

"श्रीं नमयन्द्रमणे चन्द्रशेखरे, नमो भगवते तिष्ठ, नमो भग-ति, नमः शिखरे, नमः शूलिने, नमः पादप्रचारिणे वेगिने, इं फट् खाद्या"॥ ७॥

प्रतीचीदिगातं मूलं देवदान्याः समाहरेत्। तत् पिष्टाऽङ्कोलतैलेन पादलेपाच्छतं व्रजेत्॥ द॥ काकतुच्डाय मूलानि तिलतैलेन पाचयेत्। पादान्तजानुपर्यन्तं लिखा दूराध्वगो भवेत्॥

"श्रीं न्नीं नमयण्डिकाये गगनं गमय गमय चालय चालय गिवाहिनि ! न्नीं खाहा"। उत्तयीगदयस्थायं मनः॥ ८॥

काकस्य हृदयं नेतं जिह्वाचैव मनःशिलाम्।
गैरिकचैव सिन्दूरमजमारी च मालती॥
समां क्द्रजटाचैव विदार्थ्या सह पेपयित्।
तिक्षप्रपादः सहमा सहस्रयोजनं व्रजेत्।
वलापिलतिनर्मुक्तो यावदाभूतसंभ्रवम्॥

"श्रीं नमी भगवते रुट्राय हरितगदाधराय त्रासय त्रासय गालय चालय खाहा"॥ १०॥ निर्मुण्डोसूलमादाय मलं पारावतोइवम्।
पलाश्वीजसंयुत्तं रत्तपाठाफलानि च॥
हृदयच उल्लूकस्य पेषयेच्छीतवारिणा।
श्रनेन पादलेपेन योजनानां ग्रतं व्रजेत्॥ ११॥
उल्लूकस्य तु पादानि दग्धानि चूर्णितानि च।
श्रक्कोलतैलिपष्टानि पादलेपेन योजयेत्।
योजनानां ग्रतं गत्वा पुनरागच्छिति ध्रुवम्॥
"श्रों क्लीं क्लूं ध्रुं हुं फट नमः"।
सिडिप्रदो भवेन्मन्तः प्रोत्तयोगदये द्ययम्॥ १२॥
विधिना क्लकलासस्य पुच्छमादाय दिच्णम्।
तिलीहवेष्टितं वत्ते धार्य्यमिच्छागितभवेत्॥
"श्रों सङ्गोचाय स्वाहा"॥ १३॥

त्रय गुटिकासाधनम्।

साधकिश्वालयं गला नित्यं तस्मै निवेदयेत् देवत बुद्यातिभक्त्या भचणार्थं किञ्चित् किञ्चिदासमासं निचिपेत् यावत् प्रस्ता भवित ततः पारदं रसं साईनिष्कचयं किस् श्वित्रालिकादये निचिपेत्। तस्याध कञ्चिक्कद्रं सिक्यकेन क्ष चिद्वालयं गला ग्राण्डदयस्थोपिर नालिकादयं निधाय लीक् ग्रालाक्तया नालिकासध्यसार्गेण तदण्डं लघुइस्तेन वेधयिल ग्रालाकामुद्धतेत्। तिनैव सार्गेण ग्राण्डसध्ये यथाऽसी गच्छि तथायत्नं कुर्य्यात्। ततिनैव सार्गेण ग्राण्डसध्ये यथाऽसी गच्छि तथायत्नं कुर्य्यात्। ततिनैव सार्गेण पूजां कुर्य्यात्। यावत् स्र मृद्याधी नित्यसितवाल्यपद्वारण पूजां कुर्य्यात्। यावत् स्र मेवाण्डानि स्फोटयन्ति तावित्रत्यसुपिर गत्वा वीचयेत् स्मृटिते सित गुटिकादयं ग्राह्यस्। ततो वृच्चादुत्तीर्थ्यं यो गिर्वा सनुष्यस्तस्मै एका देया। ग्रापरां स्वयं सुखे धारयेत्। योजनद्वादग्रं गत्वा पुनरेव निवर्त्तते। इति विद्वयोगः। "श्रों क्लीं क्लूं फट् चिह्नचक्रेखिर परात्-प्रदेखिरि ! पाटुकासाधनं देहि मे देहि स्वाहा" । अनेन मलेण पंपूजाच कुर्यात्॥ १४॥

लचत्रयं जपेनान्ती ध्यात्वा तां रक्तवर्णिकाम्।
करम्बवनमध्ये तु मद्यूर्णितनोचनाम्॥
कुग्डलैमीणिभिदिव्येर्वस्तालङ्कारभूषिताम्।
सामृतं कलसं वामे दिच्चणे मणिचारकम्॥
दधतीं चिन्तयेदीप्तां रक्तपद्मोपिर स्थिताम्।
प्रचमन्तीं चित्रलेखां प्रसन्तां नवयीवनाम्॥
ईदृशीं पूजयेन्नित्यं जपान्ते होमयेत् ततः।
यर्वरा छाग्रमांसन्तु गोचीरं ष्टतसंयुतम्॥
दशादंशेन ततस्तुष्टा खेचरत्वं प्रयच्छित।
विमानं खेचरत्वञ्च ददात्यमृतभोजनम्॥
ग्रायुर्लचायुतञ्चेव हारकेयूरमण्डलम्।
नानालोकगतञ्चेव यस्तानान्त्वी सुखी भवेत्॥

"ग्रीं इतीं चिवलेखें! श्रागच्छ त्रागच्छ तुतु तृतु इतीं स्वाहा"॥१५॥

> द्रति थीसिद्वनागार्जुनविरिचते कचपुटे पाटुकासाधनं नाम ऋषादशः पटलः ।

## अय स्तसञ्जीवनीविद्या।

मृतसञ्जीवनीं विद्यां प्रवच्चामि समासतः। निङ्गमङ्गोनञ्जाधः स्थापयित्वा प्रपूजयेत्॥ नवं घटञ्च तचैव पूजयेक्किङ्गसन्निधौ।

वृत्तं लिङ्गं घटचैव सूत्रेणैकेन वेष्टयेत्॥ चतुर्भिः साधकैः साद्वे प्रतियामं क्रमिण तु । एवं दिवानिशं कुर्यादघीरेण समर्चनम्॥ पुष्पादिफलपाकान्तं साधनं कारयेत् सुधीः। फलानि पक्षान्यादायपूर्वीत्तं पूर्येद् घटम्॥ तद्घटं पूजंयेडीमानर्घ्यपुष्पाचतादिभिः। तुषवर्जीन वै क्तत्वा वीजानि वापयेनाखे॥ तन्मुखं टङ्गणं चूर्णं किञ्चित् किञ्चित् प्रपूजयेत्। विस्तार्णमुखभाण्डान्तः कुभकारगणोड्नाम्॥ मृत्तिकां लिम्पयंस्तव तानि वीजानि लेपयेत्। कुण्डल्याकारयोगीन यताटूईमुखानि च॥ तच्छ्षां ताम्वपात्रीयं भाग्डं दद्यादधोमुखम्। त्रातपे धारयेत्तैलं ग्राह्येत्व रचयेत्॥ माषाईचीव तत्तीलं माषाई तिलतीलवाम। तस्य देयं खतस्यैतत् सस्यक् तस्याऽसितन \* तु॥ तत्च्णाज्जीवयेत् सत्यं गतं वाऽपि यमालयम्। रोगादिसपीदिस्ताः पुनर्जीवन्ति निश्चयम्॥१॥ पंगुक्रं पारदं तुल्यं तेन तैलेन मर्दयेत्। गाते देयं सतस्यैव कालदृष्टस्य वा च्लात्। जीव श्रायाति नी चित्रं महादेवेन भाषितम् ॥ २॥ पुष्यभास्त्ररयोगेन गुडूचीमूलमाइरेत्। कर्षमुखोदकैः पीतमपचल्युइरं परम्॥ "श्री अघीरेभ्योऽय घोरेभ्यो रुट्ररूपेभ्यः"। उक्तयोगद्वयस्यार्थ्वेरयमान्त्रः प्रकीर्त्तितः॥ ३॥

<sup>\*</sup> असितेन--निचित्रेन, सेवितेन इति यावत्।

## अय कालवचनम्।

गोचनै: कुङ्गमैर्लाचानामिकारत्तसंयुतै: । दादशारं लिखेत् पद्मं तद्दिश्चैव तत् समम् ॥ पोड़शारं तती वाद्ये मूलं वीजं ततो लिखेत् । प्रथमस्य दले वर्षं मासांश्चैव वहिर्दले ॥ घोड़शाराकार्णकायां माध्यनाम दिनानि च । पूजयेचक्रवर्त्तन्तु सयतं तदिरीचयेत् ॥ यद्दले वाच्चरं लुप्तं तदिने स्थियते ध्रवम् । वर्षमासदिनस्थैतत् तस्य नाम्नः परस्य वा ॥ यदा वर्णं न लुप्तं स्थात् तदा स्टब्य्ने विद्यते । वर्षदादशपर्थन्तं कालं च्रेयं श्विवोदितम् ॥

"श्रों धत्त कालपुरुषोत्तम मङ्घा विष्वमूर्त्ते कालचयं श्रन्त-गलं प्रदर्भय प्रधानकालं दर्भय स्वाहा"। श्रमुं मन्त्रं नित्य-ष्टोत्तरमहस्रं जप्तव्यं पञ्चोपचारै: सप्तदिनपर्य्यन्तमनेनैव प्रपू-।येत्। प्रत्ययो भवति॥ १॥

मार्गशोर्षे त, क्रणायां पश्चम्यां नीरजं श्रमम्।
भूर्ज्जपचं समानीय लाचाकुङ्गमरोचनाः॥
स्वतीयाऽनामिकारत्तै लिखेदिद्यां शिवोदिताम्।
क्रमपूजां विधायादौ पश्चादिद्यां समर्चयेत्॥
श्रावपुटमध्यस्यां जातीपुष्पैः सुविष्टिताम्।
श्रमपीठे विध्वाऽय तां विद्यां पूजयेत्विशि॥
प्रातः क्रवाऽर्चनं भूयः ध्यावा पूज्ये कुमारिका।
साधकस्वेकचित्तेन पश्चाद्यां विलोकयेत्॥
वर्णाधिको भवेद्राज्यं मात्राधिको च सम्पदः।
समृत्वे सुखमारोग्यं हानिर्विन्दुविलोपनात्।
मात्राहोने भवेद्याधिर्मरणं विन्दुनाशने॥

"श्रों क्रीं क्लों म्हों महापतये रच रच स्तास्तोइवे! स्लें क्लीं विचे स्वाहा"॥ २॥

च्युलचणज्ञानम्।

उत्तराभिमुख्यो यो यदि गच्छति दिच्णाम्। दिखुढ़ः स तदा ज्ञेयः सप्तमासान्न जीवति \* ॥ ३ ॥ गुडनिमेलमादित्यविवरं यदि पश्यति। तदर्षान्ते चयं याति नान्यया भैरवोदितम्॥ ४॥ सितं क्षणं हरिद्राभं समूलं भानुमण्डलम्। यः पश्यति सदाऽसी वै वर्षादूईं न जीवति॥ ५॥ रविविम्बे जले दृष्टे सम्पूर्णे न मृतिः क्वचित्। खण्डे दिचु क्रमान्मत्यस्तयैकदिविमासतः। मध्यच्छिद्रे दशाहेन तज्जले धूमसङ्ग्ले॥ ६॥ अरुस्तीं भ्रवं सोमं छायायां वा महापथम्। यो न पश्यति निस्तेजो वर्षान्ते स्वियते ध्रुवम् ॥ ७ ॥ सच्छिद्रो दृश्यते चन्द्रस्तददा दर्पणे रवि:। दृश्यते निस्पृत्तो वाऽपि येनाऽसी स्वियतेऽव्हतः ॥ ८ ॥ सूर्यो वहित सम्पूर्णे यस्य सोमो न दृश्यते। वर्षान्ते जायते सृखः कालज्ञानं शिवोदितम् ॥ ८ ॥ यस्य वा स्नानमाचेण हृदयं यदि गुष्यति। पश्चेडूमञ्च मर्वत्र सप्तमासान्तजीवनम् ॥ १०॥ श्रयतः पृष्ठतो वाऽपि यस्य स्यात् खिण्डतं पदम्। कर्दमे पांग्रपुच्चे वा सप्तमासान्तजीवनम् 🕆 ॥ ११ ॥ क्रजारकानि वस्त्राणि रक्तमाल्यान्लीपनम।

<sup>\*</sup> सप्तमासात् परं न जीवतीत्यर्थः।

<sup>+</sup> ज्ञोक इयेऽव तस्येति शेष: योजनीय:।

खन्ने यो लभतेऽलस्मात षणमासान्ते न जीवति॥ १२॥ भिक्तः शौलं स्मृतिस्थागो वुदेयञ्चलता तथा। यस्यैतानि निवर्त्तन्ते षरमासान्तं न जीवति ॥ १३ ॥ राचमैर्भतवेतालैः खानश्रवरगर्दभैः। ग्टभ्रेः काकौरलूकैय महिषैर्वा क्रमेलकैः। खप्ने विष्टितमात्मानं पर्यदच्दान जीवति ॥ १४ ॥ त्रासोरस्तां \* यदा पर्यदात्मच्छायामयापि वा। मुक्तप्णास्तारकाः पश्चेत् घरमासान्ते न जीवति ॥ १५ ॥ निशि चापं दिवा चोल्काममेवे राहिदर्शनम्। यः पश्चेत्म्यते सोऽपि षरमासाच्छक्करोदितम्॥१६॥ खप्ने देहं खवां स्यूलं तैलातां वाऽय पश्यति। भातः ऋबीऽयवा नित्यं मासादूईं न जीवति ॥ १७ ॥ ग्रङ्गावर्त्ते भ्ववोर्सध्ये गुल्फयोर्ममसिख्यु । स्यन्दनं यस्य नैवास्ति मासादृ ह्वं न जीवति ॥ १८॥ चत्तुषी यवती नित्यं न शृणोत्यपि निश्चितम्। दीपगलां न जानाति पचादूड्वें न जीवति ॥ १८ ॥ श्रीष्ठयोधसरलञ्च गुष्कं वा तालुदेशकम्। स्कन्धा अग्नवमायान्ती पर्णासान्ते न जीवति॥ २०॥ भुञ्जतो यस वा नित्यं युका वा मचिकादयः। त्यजन्ते वाऽय वैरस्यं षरमासान्ते न जीवति॥ २१॥ कालज्ञानिदं ज्ञात्वा तस्य जुर्वीत बस्पनमः। मन्दाभ्यामं कमारभ्य मन्त्रे तन्त्रे शिवोदितम्॥ वर्षा खेकाटम् ब्रह्मभ्रोरे व्याप्य तिष्ठति। विष्युस्ट्रण्रारिऽपि एवमावत्त्रयेत् क्रमात्॥

इति।दर्शने उर,पर्यलामेव तां प्रस्तेत् न समिर्कामिल्यं: ।

ब्रह्मकाले नाभिपद्मे विष्णुकाले हृदम्बुने।
काण्ठाके रुद्रकाले तुध्यात्वा कालस्य वञ्चनम्॥
कालसङ्कषेणीं विद्यां ज्योतीरूपां जपेत्ततः।
कालो विमुखतां याति लच्चजापे क्षते सित॥
"श्रीं क्षीं पं चौं ठौं ठां क्षौं सन्मोह्यिनचण्डे! कालसङ्कष्येग्नमः"। एवं जपेत्।

पश्चिमान्नायसक्तस्य प्रोक्तं कालस्य वश्चनम्।
नाभितो ब्रह्मराध्रान्तां सर्पाभां ज्योतिरूपिणीम्।
प्रोक्षमन्तीं जपेत्रित्यं मायां कालस्य वश्चनम्॥
"क्षी" इति माया।

स्वकीयं ग्रसते योऽसी चित्तं कालकुलाकुलम् ॥ ग्रासान्ते न स्मरत् किञ्चित् कालस्तस्य करोति किम्॥

द्रति श्रीसिद्धनागार्जुनविरचिते कचपुटे कालवंधनं नाम जनविंधतितमः पटलः।

## अय कीतुककलापाः।

श्रास्त्राहारमनाहारं प्रवदामि समासतः । योऽत्ति निःग्रेषलोकस्य जायते कौतुकं महत् ॥ १ ॥ व्रभ्नकेनाचवृचस्य पीठं कत्वाऽऽसने स्थितः । योऽसी भुङ्के वृतैः साईं भोजनं भीमसेनवत् ॥ २ ॥ सस्यायामचवृचस्य कर्त्तव्यमभिमन्वण्म् । प्रातः पुष्पाणि संग्रह्य मालां शिरिस धारयत् ॥ "श्रो नमः सर्व्वाधिपतये यस यस शोषय भैरवी श्राह्म

पयति स्वाहा"। उक्तयं।गानामयं मन्तः॥ २॥

श्रधरं क्षकलामस्य शिखास्थानं निवस्थयेत्। वायुपुच द्वाय्यं स तु भुङ्क्तेऽचपर्वतम्॥ "श्रीं नाड़ीवेगेन उवेशी खाहा"॥ ४॥ ग्रखानि क्वतलासस्य मञ्जां कारञ्जवीजजाम्। पिष्टा त गृटिकां कला विकी हेन तु वेष्टयेत्। तद्वो धारयेटु योऽसी चुत् पिपासा न बाधते \*॥ "ग्रों वासं ग्रीरम् ग्रमृतमाकर्षया हा" । ५ ॥ • पद्मवीजमहाशालीन् छागीदुग्धेत्र पाचयेत्। साज्यं तत्पायसं भुतां दादशा हं चुधापहम् ॥ ६॥ उडुम्बरफलं पक्तमङ्गुलीतैलपाचितम्। भुंबा मासं चुधां हन्ति पिपासां नात्र संगय:॥ ७॥ उडम्बरं शालिवीजं शैरीषवीजसंयुतम्। पक्षं भुका समार्शिन साच्यं मासं चुधापहम्॥ ८॥ चक्रमदेख मूलन्तु दूर्वोङ्ग्करीर्वम्। नीलोत्पलोत्यमूलानि चीरेणापि च कोद्रवै:। पचेत् तत् पयसा साज्यं भुक्ता मासं जुधापहम्॥ ८॥ श्रपामार्गस्य वीजानि सप्ततानि प्रपाचयेत्। पायमं चाविकै: चीरैभ्ङ्के मामं चुधापहम् ॥ १० ॥ दुग्धसिद्धं फलं धालगा दिनेकां पेषयेत् ततः। सिताज्यसिहतं पाच्यं मोदकं भच्येत् ततः। दशरातं चुभां इन्ति पिपासां नात संशय: ॥ ११ ॥ उड्खरग्रसीवोजं वीजपूरिशरीपजै:। च्णेयित्वा वृतेभ्कां मामार्ड तत् चुधापहम्॥

শ্বর রদিরি গীঘীওবন-ল-আ:, तथा च तं चुत् न वाधते पिपासाऽपि न इन्यर्थः।

"श्रों नमी भगवते रुद्राय श्रम्तार्णवमध्यसंस्थिताय मम शरीरे श्रम्दतं कुरु कुरु सह स्वाहा"। उक्तयीगानामयं मन्तः॥१२॥

> भागाः षोडग चाज्यस्य सहदेव्यास्त्रयस्त्या। त्रयोदग्रिलाभागाः पुच्चजीवी दिभागिका॥ हस्तापेटारिका सप्त-भागा गौराश्चतुर्दश । एकादश तु दन्यास्तु बन्याकर्कोटिकाऽष्टकाः॥ दशभागा रुट्रजटा विष्णुक्रान्ता तदर्डिका। खेतार्कस्य चतुभीगाः लज्जा च नवभागिका॥ षड्भागा लच्णा च्रेया दिषट्का मेषशृङ्गिका। चाण्डालीभाग एकः स्वात् विभागा चेन्द्रवार्णी॥ एतत् षोड़शकं योगं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। प्रतियोगं चतुष्कोष्ठे चतुस्तिंशतु भागिकाः॥ या ह्येद्र तथोगिन यथा यत तथोचिताः। एतेषां परिभाषा तु चांप्तहेतोर्निगदाते॥ भूर्जपत्ने पटे वाऽय चतुरसं समालिखेत्। रोचनाकुङ्गमाभ्यान्तु कुर्य्यात् षोड्यकोष्ठकम्॥ हां हीं इं ह: चतुर्दिन्नु एकैंकां वीजमानिखेत्। माताष्टकं लिखेदिचु मम रचतु मंयुगे॥ सन्त्रेग हं फड़न्तेन सवाद्येन तु तत्क्रमात्। ल्डा पाशाङ्शाभ्यान्तु रेखाग्रे वजमानि देत्॥ बोड्गानान्तु कोष्ठानां सध्ये त्वेकैकसीषधम्। खापयेत पुत्रयेडीसांबग्डमन्तेण भक्तितः॥ ऐशान्वादिलमेगीव जुग्डलाकारती भवेत्। खायनं पूजनचैव मजेकासार्यमि ये॥

"ग्रीं क्रीं रक्तवामुण्डे ! तुक तुक सर्विप्तिं कुर कुर स्वाह

भवान्धे नमः"।

पूर्वमेवायुतं जष्ठा सर्वसिंडिकरो भवेत्। कलागुणसारैर्दाभ्यामङ्गलेपे जगदशम्॥ तैलेन वापि चान्येन कज्जली राजपूर्विका। तियीन्दुस्य्वेच्हतुभिरङ्गलेपे जगद्दशम्॥ षोड्शाद्यास्तु धूपेन नविद्वत्तेनेन च। चतुर्ही चाञ्जन योज्यं पश्चाच स्नानकर्मणि॥ पचं कलादिरन्यान्तमेतत् सर्ववशङ्करम्। स्नाने वाणादिपचान्तं सवेलोकवशङ्करम ॥ खरैनवजलायोगात्तिलकं सर्ववश्यक्रत । मन्वर्कस्परपचैः सा योनिलेपे पतिर्वशः॥ दिग्वाणतिथिवेदैस गुटिका च वशक्री। धारयेनास्तके भाले भोजने वाऽथ पाचयेत ॥ गुणदिग्वसुकामै: स्यादङ्गलेपो भयङ्गर:। वसुपच्यारे रुट्रेन्यस्तं योनी प्रस्तिकत ॥ दिगष्टमप्तनविभः पाणी लीपे क्रते सति। योदा विजयमाप्नोति यथा दुर्खोधने भवम ॥ मनुष्परिविधिवेदै: क्रत्वा तु गुटिकां करे। वाही शिर्मि कर्षे च धला चौर्न वाध्यते॥ सारम्यंन्द्वसिम् ग्रं कला जले चिपेत्। तत् पीला परसन्यन्तु दर्पहीनं प्रजायते॥ त्रेन्द्वर्जलाय्तां जले न्यस्त् प्रवंवत । तिल्ल वाह्मूलेन धारयेदाय सुर्वनि॥ योग्भनाः पनायन्ते नात्र कायः विचारणा। कलावहयुई वीतीः पिष्टा पादं प्रकेपयेत्॥ यंघष्टं जलसध्ये तु गच्छतो वा यदा खले। चन्द्रार्डमप्तभवने पादलेपाच पूर्वात ॥

वेददिज्ञनिकामैय नाक्रामित् वक्षगैर्विषम्। सारार्कस्य गुणैर्युत्तं तिलकं शत्रुजिङ्गवेत्॥ वाणर्त्तीभय रुट्रार्कः तिलकां चाङ्गलेपनम्। क्तता सर्पेर्गजैः क्रूरैर्व्याघेर्ष्टैर्न बाध्यते ॥ सप्तषड्नवकर्चौ तु पुष्पार्के मूलसंयुतः। दत्तं धूपं नरस्तीणां सर्वलोकवशङ्करम्॥ युगेन्दुमुनितिष्यङ्गैः पेषयित्वा रवेर्दिने। पुष्यार्के लेपयेत् खाङ्गं सर्वत्र विजयी भवेत्॥ सार्यमाचे न सन्देहः शतुवादे जयद्भरः। नगदिग्भिर्गुणैः षड्भिः युक्तं पञ्चमलैः सह ॥ दशार्श्यपलेपोऽयं धनधान्यकरो ग्रहे। कलार्द्रेन्दुऋतुभिर्लेपनाद्वारणादपि॥ युडे वारणविख्यातं तथा लोकवगङ्करम्। कलाषड्नवरद्रेन्द्र गव्याच्येमीहिषैर्घतै:॥ भूता हे कज्जलं क्रवा चाञ्चनं चातिमो हक्तत्। दृष्टिस्तभञ्ज क्षरते नराणां नाव मंगयः॥ नागेन्द्दिनदिङ्नागगुरुपुषे दिने सतम्। तैलीनागुरुधूपेन सर्ववश्यकरं परम्॥ सारार्की दिगुणैर्युतां योगादी योग उत्तमः। क्तत्वा तत्तिलकं भाले सर्ववध्यकरं परम्॥ तिल्कां नात्र सन्देही नानावादे जयी भवेत्। दिग्वाणतिथिवेदैश पूर्णिमायां गुरोदिने॥ स्त्रती पञ्चयुतं चिश्वा वापीकूपतड़ामके। पिजलित तज्जलं ये तु ते च वध्या अवन्ति वै॥ नवषड्भिः पिवेद् यैथ दर्शसोमदिने क्रते। देयं पच सन्। पेतं भोजन सर्ववश्यसत्॥

दिनेन्द्रस्थिऋतुभिग्रुष्ये तु मेलितम्। इस्तार्के वाऽय पूर्णायां धूपो वश्यकरो नृणाम्॥ कलासप्तद्विनवकीर्धुस्तुररसपेषितैः। स्रदेइसेपनं कुर्यात् रती रामा वशा भवेत्॥ पञ्चगव्येन सह तैर्भनुसप्तयुगैर्यहै:। कुमुदैः कमलैर्धूपो ज्वरभूतविषापहः॥ मनुरुद्रयुगैर्बाणैभीनुपत्रद्रवस्तैः। विषं चतुर्विधं हन्ति तस्य पानप्रधूपतः॥ कर्णाञ्चत्वारकाञ्चेव एकवर्णागवां पयः। पिष्टा पिवेहती बन्धा न्युक् पुचं प्रस्यते॥ वसुरुद्रसारेड्रीभ्यां पूर्ववर्यभते सुतम्। दिगुणैय सारैयुणं मूर्शीचाटसदीरितम्॥ रुट्राष्टसारपचैस्तु शिवामध्वाज्यसंयुतै:। 🥨 श्रालिप्ताङ्गो विवादे तु जयमाप्नोति नान्यया॥ तिथिपच्यतैः कामैदिनैदिनचतुष्टयम्। नरतेलेन तद्वर्त्तिर्दिवा पर्यात भूनिधिम्॥ नवषड्नागर्द्रेश मुख्डितो निधिमग्रतः। शिलागुणसारैर्धन्यां हरिद्राष्ट्रतपानत:॥ विषं नानाविधं इन्ति कालदृष्टीऽपि जीवति। दिक्कलागुणवागैश्व चूर्णं भच्चे प्रदापयेत्॥ सर्वेषां पश्चजीवानां नानावश्यकरं परम। कलाकामगुणैदीभ्यां क्रत्वा रचां विधारयेत्॥ मुच्यते बन्धनाच्छीषं क्ततदोषः चयं लभेत्। कलागुणयुगै रुद्रैः शतधा चाज्यपीड़ितैः॥ कर्षमात्रं सदा खाने दयात्र पलितं व्रजेत्। वच्चनायो भवेद्दर्षाच्चीवेद्वह्मदिनत्यम्॥

कलाषण्मुनिवाद्यालैः चाङ्गुलीतेलकेन च।

हस्ती लिखा भजेज्ञस्मी पादयोवींजधारणम्॥

प्रतयोजनगामी च भवत्येव न संप्रयः।

क्ट्रेन्दुमनुनागाश्च नवनीतयुतेन च॥

रिवपचेण लेपेन नेत्रयोरस्त्रनेन च।

पुक्षो जायते रामा यथा रक्षा गुणान्विता॥

कलाक्द्रगुणैवेंदैर्धपीऽयं मधुमिश्चितः।

प्रपस्मारं निहन्त्याग्र यस्माण्च महोत्कटम्॥

गुणः कामैः सरै के लिपेषितैः।

ान्न ।: खचरत्वं स्थात् या

इति श्रीसिडनागाजुनिवरिचते कचपुटे सर्वसंस्थासाधनं

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

दिनेन्दुस्थिऋतुभिग्रुष्ये तु मिलतम्। हस्तार्के वाऽय पूर्णायां धूपो वश्यकरो तृणाम्॥ कलासप्तदिनवकीर्धुस्तूररसपेषितैः। खदेहलीपनं कुर्यात् रती रामा वशा भवेत्॥ पञ्चगव्येन सह तैर्मनुसप्तयुगैर्यहै:। कुमुदैः कमलैर्धूपो ज्वरभूतविषापह मनुरूद्युगंबार्णभानुपत्रद्वसुते विषं चतुर्विधं इन्ति तस्य पानप्रधूपते कर्णायत्वारकायैव एकवर्णागवां पयः। पिष्टा पिवंहती वस्था सम्यक् पुचं प्रस्यते॥ वसुरुद्रसरेद्दीभ्यां पूर्ववस्मतं सुतम्। दिगुणैय सारैयूणं मूर्जीचाटकदीरितम्॥ र्द्राष्टसारपचैस्तु शिवामध्वाज्यसंयुतैः। त्रालिप्ताङ्गो विवादे तु जयमाप्नोति नान्यया॥ तिथिपच्यतैः कामैदिनैदिनचतुष्टयम्। नरतेलेन तद्वतिदिवा पश्चति भूनिधिम्॥ नवषड् नागर्द्रेश्च मुण्डितो निधिमग्रतः। शिलागुणसारैर्धेन्यां हरिद्राष्ट्रतपानतः॥ विषं नानाविधं इन्ति कालदष्टीऽपि जीवति। दिक्क नागुणवाणैश्व चूर्णं भच्चे प्रदापथेत्॥ सर्वेषां पश्जीवानां नानावश्यकरं परम्। कलाकामगुणैद्दीभ्यां कत्वा रचां विधारयेत्॥ मुच्यते वन्धनाच्छीषं क्षतदोषः चयं लभेत्। कलाग्णयुगै रुद्रैः यतधा चाच्यपीड़ितैः॥ कर्षमात्रं सदा खाने दद्यान पिलतं वजेत्। वज्रकायो भवेदर्षाज्ञीवेद्वस्यदिनत्रयम्॥

कलाषणमुनिवाद्यालै: चाङ्गुलीतैलकेन च।

हस्ती लिखा भजेक्क्सीं पादयोवींजधारणम् ॥

श्रतयोजनगामी च भवत्येव न संश्रयः।

रहेन्दुमनुनागाञ्च नवनीतयुतेन च॥

रविपचेता लिपेन नित्रयोरज्जनेन च।

व्याप्ता प्राप्ता यथा रमा गुणान्विता॥

कार्मारं विक्रियोरज्जनेन च।

श्रप्तारं विक्रियेरज्जनेतिलपेषितै:।

श्रप्तारं विक्रियेरज्जनेतिलपेषितै:॥

श्रप्तार्मास्तरयोगेण तिलीहेन च वेष्टयेत्।

मूर्भिक्षै: खेचरत्वं स्थात् योजनानां श्रताविध ॥

स्र्र्भिक्षै: खेचरत्वं स्थात् योजनानां श्रताविध ॥

द्रति योसिद्धनागार्जुनविरचिते कचपुटे सर्वसंख्यासाधनं नाम विश: पटल:।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

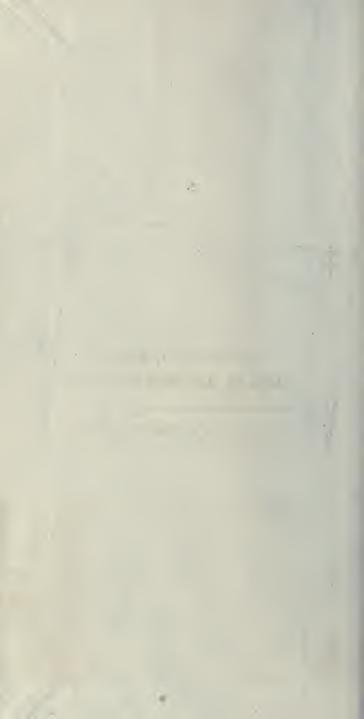












BINDING SECT. JAN 9 1976

PLEASE DO NOT REMOVE

CARDS OR SLIPS FROM THIS POCKET

UNIVERSITY OF TORONTO LIBRARY

BF 1608 H5154 1915 Indrajala Indrajalavidyasangrahah

